

THE
DAŚARŪPAKA
OF
DHANANJAYA

WITH

The Commentary of Dhanika and Daśarūpa
from Bhāratīya Nāṭyasāstra



EDITED BY
KĀS'INĀTH PĀNDURANG PARAB

Fifth Edition

REVISED WITH THE APPENDIX BY
NĀRĀYAṆ RĀM ĀCHĀRYA "KĀVYATĪRTH"

PUBLISHED BY
SATYABHĀMĀBĀI PĀNDURANG,

FOR THE 'NIRNAYA-SĀGAR' PRESS,

BOMBAY

1941

Price 1. Rupee

[All rights reserved by the publisher]

Publisher:-Satyabhamabai Pandurang, } 'Nirnaya Sagar' Press,
Printer:-Ramchandra Yesu Shedge, } 26-28. Kolbhat Street, Bombay

॥ श्रीः ॥

श्रीधनंजयविरचितं दशरूपकम् ।

धनिककृतयावलोकाख्यया व्याख्यया,
भारतीयनाट्यशास्त्रगतदशरूपनिरूपणेन च समेतम् ।

काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब इत्यनेन

पूर्वसंस्कृतस्यास्य

पञ्चमं संस्करणं

श्रीमदिन्दिराकान्तचरणान्तेवासिना

नारायण राम आचार्य “काव्यतीर्थ” इत्यनेन

परिशिष्टेन समलङ्कृत्य संशोधितम् ।

तच्च

मुम्बय्यां

सत्यभामाबाई पाण्डुरङ्ग इत्येताभिः

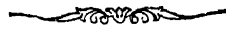
निर्णयसागराख्यमुद्रणयन्त्रालयकृते तत्रैव

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

शकः १८६३, सन १९४१.

मूल्यं १ रूप्यकम् ।

दशरूपकविषयानुक्रमणिका ।



प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे ।

प्रथमः प्रकाशः ।

| | | | |
|-----------------------------------|---|-----|---|
| मङ्गलाचरणम् | १ | १-२ | १ |
| श्रोतृप्रवृत्तिनिमित्तम् | १ | ३ | १ |
| ग्रन्थकर्तृप्रवृत्तिनिमित्तम् ... | १ | ४ | १ |
| पौनरुक्त्यपरिहारः | १ | ५ | २ |
| दशरूपज्ञानफलम् | १ | ६ | २ |
| नाट्यलक्षणम् ... | १ | ७ | २ |
| रूपलक्षणम् ... | १ | ७ | २ |
| रूपकलक्षणम् ... | १ | ७ | २ |
| भेदसंख्यानियमनम् | १ | ७ | २ |
| दशभेदनामकथनम् | १ | ८ | २ |
| वृत्तलक्षणम् ... | १ | ९ | ३ |
| वृत्तलक्षणम् ... | १ | ९ | ३ |
| वृत्तवृत्तयोर्द्वैविध्यम् | १ | १० | ३ |
| रूपाणां भेदक- | | | |
| निरूपणम् ... | १ | ११ | ३ |
| वस्तुनो द्वैविध्यम् ... | १ | ११ | ३ |
| आधिकारिकनिरूपणम् | १ | १२ | ४ |
| प्रासज्जिकनिरूपणम् | १ | १३ | ४ |
| प्रासज्जिकस्य द्वैविध्यम् | १ | १३ | ४ |
| पताकास्थानकम् | १ | १४ | ४ |
| आधिकारिकपताकाप्र- | | | |
| करीणां त्रिविधत्वम् | १ | १५ | ४ |
| इतिवृत्तफलम् ... | १ | १६ | ५ |
| इतिवृत्तसाधनम् ... | १ | १७ | ५ |
| अवान्तरबीजसंज्ञा- | | | |
| न्तरम् ... | १ | १७ | ५ |
| प्रयोजनसिद्धिहेतवः | १ | १८ | ५ |
| अवस्थापञ्चकम् ... | १ | १९ | ५ |
| आरम्भलक्षणम् ... | १ | २० | ५ |
| प्रयत्नलक्षणम् ... | १ | २० | ५ |

प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे ।

| | | | |
|------------------------|---|-------|----|
| प्राप्त्याशालक्षणम्... | १ | २१ | ६ |
| नियतासिलक्षणम् | १ | २१ | ६ |
| फलयोगलक्षणम्... | १ | २२ | ६ |
| संधिलक्षणम् ... | १ | २३ | ६ |
| संधिभेदनामानि ... | १ | २४ | ६ |
| मुखलक्षणम् ... | १ | २४ | ६ |
| मुखभेदकथनम् ... | १ | २५ | ६ |
| मुखभेदनामानि ... | १ | २५-२६ | ७ |
| उपक्षेपलक्षणम् ... | १ | २७ | ७ |
| परिकरलक्षणम् ... | १ | २७ | ७ |
| परिन्यासलक्षणम् ... | १ | २७ | ७ |
| विलोभनलक्षणम्... | १ | २७ | ७ |
| युक्तिलक्षणम् ... | १ | २८ | ८ |
| प्राप्तिलक्षणम् ... | १ | २८ | ८ |
| समाधानलक्षणम्... | १ | २८ | ८ |
| विधानलक्षणम् ... | १ | २८ | ९ |
| परिभावनालक्षणम् | १ | २९ | १० |
| उद्भेदलक्षणम् ... | १ | २९ | १० |
| करणलक्षणम् ... | १ | २९ | १० |
| भेदलक्षणम् ... | १ | २९ | ११ |
| प्रतिमुखलक्षणम्... | १ | ३० | ११ |
| प्रतिमुखाङ्गसन्धि- | | | |
| संख्याकथनम् | १ | ३० | ११ |
| प्रतिमुखाङ्गनामानि | १ | ३१ | १२ |
| विलासलक्षणम् ... | १ | ३२ | १२ |
| परिसर्पलक्षणम् ... | १ | ३२-३३ | १२ |
| विधूतलक्षणम् ... | १ | ३३ | १३ |
| शमलक्षणम् ... | १ | ३३ | १३ |
| नर्मलक्षणम् ... | १ | ३३ | १३ |
| नर्मद्युतिलक्षणम्... | १ | ३३ | १३ |
| प्रगमनलक्षणम् ... | १ | ३४ | १४ |
| निरोधलक्षणम् ... | १ | ३४ | १४ |

| प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे । | | |
|--------------------------------|---|----|
| पर्युपासनलक्षणम् | १ | ३४ |
| पुष्पलक्षणम् ... | १ | ३४ |
| उपन्यासलक्षणम् ... | १ | ३५ |
| वज्रलक्षणम् ... | १ | ३५ |
| वर्णसंहारलक्षणम् | १ | ३५ |
| गर्भसंधिलक्षणम् | १ | ३६ |
| गर्भसंध्यङ्गनामानि | १ | ३७ |
| अभूताहरणलक्षणम् | १ | ३८ |
| मार्गलक्षणम् ... | १ | ३८ |
| रूपलक्षणम् ... | १ | ३९ |
| उदाहरणलक्षणम् ... | १ | ३९ |
| क्रमलक्षणम् ... | १ | ३९ |
| संग्रहलक्षणम् ... | १ | ४० |
| अनुमानलक्षणम् ... | १ | ४० |
| अधिबललक्षणम् ... | १ | ४० |
| तोटकलक्षणम् ... | १ | ४० |
| तोटकलक्षणान्तरे | १ | ४१ |
| उद्वेगलक्षणम् ... | १ | ४२ |
| संग्रमलक्षणम् ... | १ | ४२ |
| आक्षेपलक्षणम् ... | १ | ४२ |
| अवमर्शसन्धिलक्षणम् | १ | ४३ |
| अवमर्शसन्ध्यङ्ग- नामानि ... | १ | ४४ |
| अपवादलक्षणम् ... | १ | ४५ |
| संफेटलक्षणम् ... | १ | ४५ |
| विद्रवलक्षणम् ... | १ | ४५ |
| द्रवलक्षणम् ... | १ | ४५ |
| शक्तिलक्षणम् ... | १ | ४६ |
| द्युतिलक्षणम् ... | १ | ४६ |
| प्रसङ्गलक्षणम् ... | १ | ४६ |
| छलनलक्षणम् ... | १ | ४६ |
| व्यवसायलक्षणम् ... | १ | ४७ |
| विरोधनलक्षणम् ... | १ | ४७ |
| प्ररोचनलक्षणम् ... | १ | ४७ |
| विचलनलक्षणम् ... | १ | ४८ |
| आदानलक्षणम् ... | १ | ४८ |

| प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे । | | |
|------------------------------------|----|-------|
| निर्वहणसंधिलक्षणम् | १ | ४८ |
| निर्वहणसन्ध्यङ्ग- नामानि ... | १ | ४९-५० |
| संधिलक्षणम् ... | १ | ५१ |
| विवोधलक्षणम् ... | १ | ५१ |
| ग्रथनलक्षणम् ... | १ | ५१ |
| निर्णयलक्षणम् ... | १ | ५१ |
| परिभाषणम् ... | १ | ५२ |
| प्रसादलक्षणम् ... | १ | ५२ |
| आनन्दलक्षणम् ... | १ | ५२ |
| समयलक्षणम् ... | १ | ५२ |
| कृतिलक्षणम् ... | १ | ५३ |
| भाषणलक्षणम् ... | १ | ५३ |
| पूर्वभावलक्षणम् ... | १ | ५३ |
| उपगूहनलक्षणम् ... | १ | ५३ |
| काव्यसंहारलक्षणम् | १ | ५४ |
| प्रशस्तिलक्षणम् ... | १ | ५४ |
| अङ्गप्रयोजनमेद- कथनम् ... | १ | ५४ |
| षट्प्रयोजननामानि | १ | ५५ |
| पुनर्वस्तुविभागकथनम् | ५६ | ३१ |
| सूच्यलक्षणम् ... | १ | ५७ |
| दृश्यव्यलक्षणम् | १ | ५७ |
| सूच्यप्रतिपादनप्रकार- कथनम् ... | १ | ५८ |
| विष्कम्भलक्षणम् ... | १ | ५९ |
| विष्कम्भद्वैविध्यम् | १ | ६० |
| प्रवेशकलक्षणम् ... | १ | ६० |
| चूलिकालक्षणम् ... | १ | ६१ |
| अङ्कास्यलक्षणम् ... | १ | ६२ |
| अङ्कावतारलक्षणम् | १ | ६२ |
| पुनर्वस्तुत्रैविध्य- कथनम् ... | १ | ६३ |
| सर्वश्राव्यलक्षणम् | १ | ६३ |
| खगतलक्षणम् ... | १ | ६४ |
| नियतश्राव्यमेद- कथनम् ... | १ | ६५ |

प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे ।

प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे ।

| | | | |
|------------------|-------|----|----|
| जनान्तिकलक्षणम् | १ | ६६ | ३३ |
| अपवारितलक्षणम् | १ | ६६ | ३४ |
| आकाशभाषित- | | | |
| लक्षणम् | ... १ | ६७ | ३३ |
| वस्तुभेदोपसंहार- | | | |
| कथनम् | ... १ | ६८ | ३४ |

द्वितीयः प्रकाशः ।

| | | | |
|----------------------|-------|-----|----|
| नायकभेदकथनम् | २ | १-२ | ३५ |
| विनीतः ... | ... २ | २ | ३५ |
| मधुरः ... | ... २ | २ | ३५ |
| ल्यागी ... | ... २ | २ | ३५ |
| दक्षः ... | ... २ | २ | ३५ |
| प्रियंवदः... | ... २ | २ | ३५ |
| रक्तलोकः | ... २ | २ | ३५ |
| वाग्मी ... | ... २ | २ | ३५ |
| रुढवंशः... | ... २ | २ | ३६ |
| स्थिरः ... | ... २ | २ | ३६ |
| युवा ... | ... २ | २ | ३६ |
| नेतृविशेषकथनम् | २ | ३ | ३६ |
| ललितः ... | ... २ | ३ | ३६ |
| शान्तः ... | ... २ | ४ | ३६ |
| धीरोदात्तः | ... २ | ५ | ३७ |
| धीरोद्धतः | ... २ | ६ | ३८ |
| शृङ्गारनायकभेदाः | २ | ६ | ३९ |
| दक्षिणः ... | ... २ | ७ | ३९ |
| शठः ... | ... २ | ७ | ३९ |
| धृष्टः ... | ... २ | ७ | ३९ |
| अनुकूलः | ... २ | ७ | ३९ |
| सहायाः ... | ... २ | ८ | ४० |
| सहायान्तरम् | ... २ | ९ | ४० |
| प्रतिनायकः | ... २ | ९ | ४० |
| सात्त्विका नायकगुणाः | २ | १० | ४१ |
| नीचे घृणा | ... २ | ११ | ४१ |
| घृणाधिके स्पर्धा... | २ | ११ | ४१ |
| शौर्यशोभा | ... २ | ११ | ४१ |
| दक्षशोभा | ... २ | ११ | ४१ |

| | | | |
|----------------------|-------|----|----|
| विलासः ... | ... २ | ११ | ४१ |
| माधुर्यम् ... | ... २ | १२ | ४१ |
| गाम्भीर्यम् | ... २ | १२ | ४२ |
| स्थैर्यम् | ... २ | १३ | ४२ |
| तेजः ... | ... २ | १३ | ४२ |
| ललितम्... | ... २ | १४ | ४२ |
| औदार्यम् | ... २ | १४ | ४२ |
| नायिकाभेदाः | ... २ | १५ | ४२ |
| स्त्रीयालक्षणभेदाः | २ | १५ | ४३ |
| शीलवती | ... २ | १५ | ४३ |
| आर्जवादियोगिनी | २ | १५ | ४३ |
| लजावती | ... २ | १५ | ४३ |
| मुग्धा ... | ... २ | १६ | ४३ |
| वयोमुग्धा | ... २ | १६ | ४३ |
| काममुग्धा | ... २ | १६ | ४३ |
| रतवामा ... | ... २ | १६ | ४४ |
| कोपे मृदु | ... २ | १६ | ४४ |
| मध्या ... | ... २ | १६ | ४४ |
| यौवनवती | ... २ | १६ | ४४ |
| कामवती | ... २ | १६ | ४४ |
| मध्यासंभोगः | ... २ | १६ | ४४ |
| मध्यामानवृत्तिः | ... २ | १७ | ४५ |
| धीरामध्यामानवृत्तिः | २ | १७ | ४५ |
| धीराधीरामध्यामान- | | | |
| वृत्तिः | ... २ | १७ | ४५ |
| अधीरामध्यामानवृत्तिः | २ | १७ | ४५ |
| प्रगल्भा ... | ... २ | १८ | ४५ |
| गाढयौवना | ... २ | १८ | ४५ |
| भावप्रगल्भा | ... २ | १८ | ४६ |
| रतप्रगल्भा | ... २ | १८ | ४६ |
| प्रगल्भाकोपचेष्टा... | २ | १९ | ४६ |
| सावहित्थादरा | ... २ | १९ | ४६ |
| रतावुदासीना | ... २ | १९ | ४६ |
| अधीरप्रगल्भा | ... २ | १९ | ४६ |
| धीराधीरप्रगल्भा | २ | १९ | ४६ |

| प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे । | प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे । |
|------------------------------|----------------------------------|
| मध्याप्रगल्भयो- | विच्छित्तिः ... २ ३८ ५४ |
| द्वादशविधत्वम् २ २० ४७ | विभ्रमः ... २ ३९ ५४ |
| परकीया ... २ २० ४७ | किलकिञ्चित् २ ... २ ३९ ५५ |
| साधारणस्त्री ... २ २१ ४७ | मोहयितम् ... २ ४० ५५ |
| साधारणस्त्रीव्यवहारः २ २२ ४७ | कुट्टमितम् ... २ ४० ५५ |
| अस्या निवन्धनियमः २ २३ ४८ | विव्वोकः ... २ ४१ ५५ |
| नायिकाभेदान्तराणि २ २३ ४८ | ललितम् ... २ ४१ ५६ |
| स्वाधीनपतिका ... २ २४ ४८ | विहृतम् ... २ ४२ ५६ |
| वासकसज्जा ... २ २४ ४९ | नायकसहायाः ... २ ४२ ५६ |
| विरहोत्कण्ठिता ... २ २५ ४९ | सहायविभागः ... २ ४३ ५६ |
| खण्डिता ... २ २५ ४९ | धर्मसहायाः ... २ ४३ ५६ |
| कलहान्तरिता ... २ २६ ४९ | दण्डसहायाः ... २ ४४ ५६ |
| विप्रलब्धा ... २ २६ ४९ | अन्तःपुरसहायाः २ ४४ ५६ |
| प्रोषितप्रिया ... २ २७ ४९ | नायकादीनां विशेषः २ ४५ ५७ |
| अभिसारिका ... २ २७ ४९ | नायकव्यापारः ... २ ४७ ५७ |
| खण्डितादीनां चिन्ता- | नर्माष्टादशभेदाः २ ४८-५० ५७ |
| दियुक्तत्वम् ... २ २८ ५० | वचोहास्यनर्म ... २ ५० ५७ |
| स्वाधीनपतिका-वास- | वेषनर्म ... २ ५० ५७ |
| कसज्जयोः क्रीडादि- | क्रियानर्म ... २ ५० ५७ |
| युक्तत्वम् ... २ २८ ५० | शृङ्गारवदात्मोपक्षेपनर्म २ ५० ५७ |
| नायिकासहायिन्यः २ २९ ५० | संभोगनर्म ... २ ५० ५८ |
| योषिदलंकाराः ... २ ३० ५१ | माननर्म ... २ ५० ५८ |
| शरीरजालंकाराः ... २ ३० ५१ | भयनर्म ... २ ५० ५८ |
| सप्त भावा अयत्नजाः २ ३१ ५१ | नर्मस्फिजः ... २ ५१ ५८ |
| दश भावाः स्वभावजाः २ ३२ ५१ | नर्मस्फोटः ... २ ५१ ५८ |
| हावः ... २ ३४ ५२ | नर्मगर्भः ... २ ५२ ५९ |
| हेला ... २ ३४ ५२ | सात्वती ... २ ५३ ५९ |
| शोभा ... २ ३५ ५२ | सात्वत्यङ्गानि ... २ ५३ ५९ |
| क्रान्तिः ... २ ३५ ५३ | संलापकः ... २ ५४ ५९ |
| माधुर्यम् ... २ ३६ ५३ | उत्थापकः ... २ ५४ ५९ |
| दीप्तिः ... २ ३६ ५३ | साङ्ख्यः ... २ ५५ ५९ |
| प्रागल्भ्यम् ... २ ३६ ५३ | परिवर्तकः ... २ ५५ ६० |
| औदार्यम् ... २ ३६ ५३ | आरभटीलक्षणम् २ ५६ ६० |
| वैर्यम् ... २ ३७ ५४ | आरभत्यङ्गानि ... २ ५६ ६० |
| लीला ... २ ३७ ५४ | संक्षिप्तिका ... २ ५७ ६० |
| विलासः ... २ ३८ ५४ | |

प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे ।

| | | | |
|------------------------|---|-------|----|
| संफेदः ... | २ | ५८ | ६० |
| वस्तुस्थापनम् ... | २ | ५९ | ६० |
| अवपातः ... | २ | ५९ | ६१ |
| वृत्त्युपसंहारः ... | २ | ६०-६१ | ६१ |
| वृत्तिनियमः ... | २ | ६२-६३ | ६१ |
| संस्कृतादिपाठ्यं प्रति | | | |
| विशेषः ... | २ | ६४-६६ | ६१ |
| आमन्त्रणप्रकारः ... | २ | ६७-७२ | ६२ |

तृतीयः प्रकाशः ।

नाटकस्यैव पूर्वोक्तौ

| | | | |
|-----------------------|---|-----|----|
| हेतुः ... | ३ | १ | ६३ |
| नटस्य पूर्वकर्तव्यता | ३ | २ | ६३ |
| सूचननियमः ... | ३ | ३ | ६३ |
| रङ्गं प्रसाद्य भारती- | | | |
| वृत्त्याश्रयणम् | ३ | ४ | ६३ |
| भारतीभेदनामानि | ३ | ५ | ६४ |
| प्ररोचना ... | ३ | ६ | ६४ |
| वीथ्यङ्गानि ... | ३ | ७-८ | ६४ |
| कथोद्धातः ... | ३ | ९ | ६४ |
| प्रवृत्तकम् ... | ३ | १० | ६५ |
| प्रयोगातिशयः ... | ३ | ११ | ६५ |
| वीथ्यङ्गनामानि ... | ३ | १२ | ६५ |
| उद्धात्यलक्षणभेदाः | ३ | १३ | ६५ |
| अवलगितम् ... | ३ | १४ | ६६ |
| प्रपञ्चः ... | ३ | १५ | ६६ |
| त्रिगतम् ... | ३ | १६ | ६६ |
| छलनम् ... | ३ | १७ | ६६ |
| वाक्केली ... | ३ | १७ | ६७ |
| अधिवलम् ... | ३ | १८ | ६७ |
| गण्डः ... | ३ | १८ | ६७ |
| अवस्यन्दितम् ... | ३ | १९ | ६८ |
| नालिका ... | ३ | १९ | ६८ |
| असत्प्रलापः ... | ३ | २० | ६८ |
| व्याहारः ... | ३ | २० | ६९ |
| सुदवम् ... | ३ | २१ | ६९ |

प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे ।

| | | | |
|--------------------------|----|-------|----|
| प्रस्तावनोत्तरं सूत्रधा- | | | |
| रव्यापारः ... | ३ | २२ | ६९ |
| नायकविशेषे विधेय- | | | |
| विशेषः ... | ३ | २३ | ७० |
| नायकरसानुचितं | | | |
| त्याज्यम् ... | ३ | २४ | ७० |
| संधिविभागकरणम् | ३ | २५ | ७० |
| अङ्गसंख्यान्यासौ ... | ३ | २६ | ७० |
| विष्कम्भकादिकरणम् | ३ | २८ | ७० |
| विष्कम्भकनियमाः | ३ | २९ | ७० |
| अङ्करचनानियमाः | ३ | ३० | ७० |
| अङ्कलक्षणम् ... | ३ | ३१ | ७१ |
| अङ्गिपरिपोषणप्रकारः | ३ | ३१ | ७१ |
| वस्तुविच्छेदननिषेधः | ३ | ३२ | ७१ |
| रसतिरोधाननिषेधः | ३ | ३३ | ७१ |
| मुख्यतया वीरशृङ्गा- | | | |
| रान्यतररसाश्रयणम् | ३ | ३३ | ७१ |
| अन्यरसानामङ्गत्वेव | ३ | ३४ | ७१ |
| प्रत्यक्षमनिर्देश्यानि | ३ | ३४-३५ | ७१ |
| नायकवधसूचननिषेधः | ३ | ३६ | ७१ |
| आवश्यकं न त्याज्यम् | ३ | ३६ | ७१ |
| अङ्के पात्रसंख्या ... | ३ | ३६ | ७१ |
| अङ्कान्ते पात्रनिर्गमः | ३ | ३७ | ७२ |
| अङ्करचनाप्रकारः ... | ३ | ३८ | ७२ |
| नाटकेऽङ्कसंख्या ... | ३ | ३८ | ७२ |
| प्रकरणे विषयाः ... | ३ | ३९-४० | ७२ |
| प्रकरणे वर्णनीय- | | | |
| नायिका ... | ३ | ४१-४२ | ७३ |
| नाटिकाविषयनिर्णयः | ३ | ४३ | ७३ |
| नाटिकायां विशेषः | ३ | ४३-४५ | ७३ |
| नाटिकायां प्राप्य- | | | |
| नायिका ... | ३ | ४६ | ७३ |
| नाटिकायां नायकः | ३ | ४७ | ७३ |
| नाटिकायां वृत्तिनियमः | ४८ | ७३ | |
| भागविषयाः ... | ३ | ४९-५१ | ७३ |

प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे ।

| | | |
|-----------------------|-------|------|
| लास्याज्ञानि ... ३ | ५२-५३ | ७३ |
| प्रहसनं तद्भेदाश्च ३ | ५४ | ७४ |
| शुद्धप्रहसनम् ... ३ | ५४ | ७४ |
| विकृतसंकीर्णप्रहसने ३ | ५५ | ७४ |
| प्रहसने हास्यरसः ३ | ५६ | ७४ |
| डिम्बे विषयनियमाः ३ | ५७-५९ | ७४ |
| व्यायोगे विषयनियमाः ३ | ६०-६१ | ७५ |
| समवकारे विषयनियमाः ३ | ६२-६७ | ७५ |
| वीथ्या विषयनियमाः ३ | ६८-६९ | ७५-६ |
| अङ्के विषयनियमाः ३ | ७०-७१ | ७६ |
| ईहामृगे विषयनियमाः ३ | ७२-७५ | ७६ |

चतुर्थः प्रकाशः ।

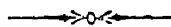
| | | |
|--------------------------------------------|-----|----|
| रसानिरूपणम् ... ४ | १ | ७७ |
| विभावलक्षणभेदौ ४ | २ | ७७ |
| आलम्बनविभावः ... ४ | २ | ७७ |
| उद्दीपनविभावः ... ४ | २ | ७७ |
| अनुभावः ... ४ | ३ | ७७ |
| भावः ... ४ | ४ | ७८ |
| सात्त्विकभावलक्षणम् ४ | ४ | ७८ |
| स्तम्भादिसात्त्विकभा- वानां नामलक्षणे ४ | ५-६ | ७८ |
| व्यभिचारिभावलक्षणम् ४ | ७ | ७९ |
| व्यभिचारिभावनामानि ४ | ८ | ७९ |
| निर्वेदः ... ४ | ९ | ७९ |
| ग्लानिः ... ४ | १० | ८० |
| शङ्का ... ४ | ११ | ८० |
| श्रमः ... ४ | १२ | ८० |
| धृतिः ... ४ | १२ | ८१ |
| जडता ... ४ | १३ | ८१ |
| हर्षः ... ४ | १४ | ८१ |
| दैन्यम् ... ४ | १४ | ८२ |
| औश्याम् ... ४ | १५ | ८२ |
| चिन्ता ... ४ | १६ | ८२ |
| त्रासः ... ४ | १६ | ८२ |
| असूया ... ४ | १७ | ८३ |
| अमर्षः ... ४ | १८ | ८३ |
| गर्वः ... ४ | १९ | ८४ |

प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे ।

| | | |
|-----------------------------------------------|----|------|
| स्मृतिः ... ४ | २० | ८४ |
| मरणम् ... ४ | २१ | ८४ |
| मदः ... ४ | २१ | ८५ |
| सुप्तम् ... ४ | २२ | ८५ |
| निद्रा ... ४ | २३ | ८५ |
| विवोधः ... ४ | २४ | ८५ |
| व्रीडा ... ४ | २४ | ८५ |
| अपस्मारः ... ४ | २५ | ८६ |
| मोहः ... ४ | २६ | ८६ |
| मतिः ... ४ | २७ | ८६ |
| आलस्यम् ... ४ | २७ | ८६ |
| आवेगः समेदः ... ४ | २८ | ८६-७ |
| वितर्कः ... ४ | २८ | ८८ |
| अवहित्यम् ... ४ | २९ | ८८ |
| व्याधिः ... ४ | २९ | ८९ |
| उन्मादः ... ४ | ३० | ८९ |
| विषादः ... ४ | ३१ | ८९ |
| औत्सुक्यम् ... ४ | ३२ | ८९ |
| चापलम् ... ४ | ३३ | ९० |
| स्थायी ... ४ | ३४ | ९० |
| स्थायिनामानि ... ४ | ३४ | ९० |
| शान्तरसे शमस्था- यिनि-विप्रतिपत्तिः ४ | ३५ | ९२ |
| स्थायिभावोपसंहारः ४ | ३६ | ९३ |
| काव्येषु स्थायिभाव- स्यैव वाक्यार्थत्वम् ४ | ३७ | ९५ |
| रसिकमात्रवृत्तित्वं रसस्य ४ | ३८ | ९६ |
| धीरोदात्ताद्यवस्था- प्रतिपादकाः ४ | ४० | ९७ |
| धीरोदात्ताद्यवस्थाना- मेव रसहेतुत्वम् ४ | ४१ | ९७ |
| श्रोतृणामास्वादहेतुत्वम् ४ | ४२ | ९७ |
| नर्तकेऽप्यास्वादः ४ | ४२ | ९७ |
| आस्वादस्य लक्षणं भेदाश्च ४ | ४३ | ९७ |

| प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे । | प्रकाशः । श्लोकः । पृष्ठे । |
|------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------|
| शमस्यानिर्वचनीयता ४ ४५ ९८ | उत्का ... ४ ६८ १०५ |
| विभावाद्युपसंहारः ४ ४६ ९८ | प्रोषितप्रिया ... ४ ६८ १०५ |
| रसभावयोर्लक्षणैक्य- प्रतिज्ञा ४ ४७ ९८ | कलहान्तरिता ... ४ ६८ १०५ |
| शृङ्गारः ... ४ ४८ ९९ | खण्डिता ... ४ ६८ १०५ |
| भावसंख्या ... ४ ४९ १०० | संभोगः ... ४ ६९ १०५ |
| शृङ्गारस्य भेदाः ४ ५० १०० | संभोगे लीलाद्या दश चेष्टाः ४ ७० १०६ |
| अयोगः ... ४ ५० १०० | नायककर्तव्यम् ४ ७१ १०६ |
| तस्य दशावस्थाः ४ ५१ १०१ | वीरस्त्रिधा ... ४ ७२ १०६ |
| अभिलाषः ... ४ ५३ १०१ | वीभत्सस्त्रिधा ... ४ ७३ १०७ |
| दर्शनश्रवणे ... ४ ५४ १०१ | रौद्रस्त्रिधा ... ४ ७४ १०७ |
| वृत्तीनां दशावस्थाना- मपि महाकविनिब- न्धेष्वनेकविधत्वम् ४ ५५ १०१ | हास्यस्त्रिधा ... ४ ७५ १०८ |
| दिङ्मात्रम् ... ४ ५६ १०१ | स्मितम् ... ४ ७६ १०८ |
| विप्रयोगद्वैविध्यम् ४ ५७ १०२ | हसितम् ... ४ ७६ १०८ |
| मानद्वैविध्यम् ४ ५८ १०२ | विहसितम् ... ४ ७६ १०८ |
| प्रणयमानः ४ ५८ १०२ | उपहसितम् ... ४ ७६ १०८ |
| ईर्ष्यामानत्रैविध्यम् ४ ५९ १०२ | अपहसितम् ... ४ ७७ १०८ |
| श्रुतिः ... ४ ५९ १०२ | अतिहसितम् ... ४ ७७ १०८ |
| आनुमानिकस्त्रिविधः ४ ६० १०२ | उत्तममध्यमाधम- भेदेन हसितभेदाः ४ ७७ १०८ |
| दृष्टः ... ४ ६० १०२ | हासव्यभिचारिणः ४ ७८ १०८ |
| मनोपचारः ... ४ ६१ १०३ | अद्भुतः ... ४ ७८ १०८ |
| साम ... ४ ६२ १०४ | अद्भुतानुभावव्यभि- चारिणः ४ ७९ १०८ |
| भेदः ... ४ ६२ १०४ | भयानकः ... ४ ८० १०९ |
| दानम् ... ४ ६२ १०४ | भयानकानुभाव- व्यभिचारिणः ४ ८० १०९ |
| सामादीनां कार्यासा- धकत्वे उपेक्षा ४ ६३ १०४ | करुणः ... ४ ८१ १०९ |
| रभसादिना कोपनाशे रसान्तरत्वम् ४ ६३ १०४ | करुणानुभावव्य- भिचारिणः ४ ८२ १०९ |
| कार्यजप्रवासविप्रयोग- स्त्रिधा ४ ६४ १०५ | प्रीतिभक्त्यादीना- मन्तर्भावः ४ ८३ ११० |
| संभ्रमजप्रवासविप्र- योगः ४ ६६ १०५ | भूषणादीनामन्तर्भावः ४ ८४ ११० |
| शापजप्रवासः ४ ६६ १०५ | सर्वस्यापि रसभावो- पादानम् ४ ८५ ११० |
| मृते तु शोक एव न शृङ्गारः ४ ६७ १०५ | ग्रन्थसमाप्तिः ... ४ ८६ ११० |

टीकोद्धृतग्रन्थस्यलनिर्देशार्थमवलम्बितग्रन्थानां संस्करणादिसूचिः ॥



| ग्रन्थः | संस्करणाङ्कः | निर्णयसागरीयः |
|----------------|--------------|----------------|
| उत्तररामचरितम् | ९ | ” |
| किरातम् | १३ | ” |
| अमरुशतकम् | २ | ” |
| कादम्बरी | ८ | ” |
| कुमारसंभवम् | १२ | ” |
| गाथासप्तशती | ३ | ” |
| भर्तृहरिशतकम् | ७ | ” |
| मालतीमाधवम् | ५ | ” |
| मुद्राराक्षसम् | ८ | ” |
| मृच्छकटिका | ७ | ” |
| मेघदूतम् | १४ | ” |
| रघुः | ४ | ” |
| रत्नावली | ४ | ” |
| रामायणम् | ४ | ” |
| वीरचरितम् | ४ | ” |
| वेणीसंहारम् | ६ | ” |
| शाकुन्तलम् | १० | ” |
| नागानन्दम् | २ | चौखंबा० |
| हनूमन्नाटकम् | १ | वेङ्कटेशमुद्र० |



॥ श्रीः ॥

श्रीधनंजयविरचितं

दशरूपकम् ।

धनिककृतयावलोकाख्यया व्याख्यया समेतम् ।

प्रथमः प्रकाशः ।

इह सदाचारं प्रमाणयद्भिरविघ्नेन प्रकरणस्य समाप्त्यर्थमिष्टयोः प्रकृताभि-
मतदेवतयोर्नमस्कारः क्रियते श्लोकद्वयेन—

नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्ठः पुष्करायते ।

मदाभोगधनध्वानो नीलकण्ठस्य ताण्डवे ॥ १ ॥

यस्य कण्ठः पुष्करायते मृदङ्गयदाचरति । मदाभोगेन धनध्वानो निबिड-
ध्वनिः । नीलकण्ठस्य शिवस्य ताण्डव उद्धते वृत्ते । तस्मै गणेशाय नमः ।
अत्र खण्डश्रेष्ठाक्षिप्यमाणोपमाच्छायालंकारः । नीलकण्ठस्य मयूरस्य ताण्डवे
यथा मेघध्वनिः पुष्करायत इति प्रतीतेः ॥

दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति भावकाः ।

नमः सर्वविदे तस्मै विष्णवे भरताय च ॥ २ ॥

एकत्र मन्थकूर्मादिप्रतिमानामुद्देशेन, अन्यत्रानुकृतिरूपनाटकादिना यस्य
भावका ध्यातारो रसिकाश्च माद्यन्ति हृष्यन्ति तस्मै विष्णवेऽभिमताय प्रकृताय
भरताय च नमः ॥

श्रोतुः प्रवृत्तिनिमित्तं प्रदर्शयते—

कस्यचिदेव कदाचिद्द्वयया विषयं सरस्वती विदुषः ।

घटयति कमपि तमन्यो व्रजति जनो येन वैदग्धीम् ॥ ३ ॥

तं कंचिद्विषयं प्रकरणादिरूपं कदाचिदेव कस्यचिदेव कवेः सरस्वती योज-
यति । येन प्रकरणादिना विषयेणान्यो जनो विदग्धो भवति ॥

स्वप्रवृत्तिविषयं दर्शयति—

उद्धृत्योद्धृत्य सारं यमखिलनिगमाश्चाख्यवेदं विरिञ्चि-

श्चक्रे यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठः ।

शर्वाणी लास्यमस्य प्रतिपदमपरं लक्ष्म कः कर्तुमीष्टे

नाट्यानां किंतु किञ्चित्प्रगुणरचनया लक्षणं संक्षिपामि॥४॥

यं नाट्यवेदं वेदेभ्यः सारमादाय ब्रह्मा कृतवान्, यत्संबद्धमभिनयं भरतश्चकार
करणाङ्गहारानकरोत्, हरस्ताण्डवमुद्धतं नृत्तं कृतवान्, लास्यं सुकुमारं नृत्तं

पार्वती कृतवती, तस्य सामस्येन लक्षणं कर्तुं शक्तः । तदेकदेशस्य तु दशरूपस्य संक्षेपः कियत इत्यर्थः ॥

विषयैक्यप्रसक्तं पौनरुक्त्यं परिहरति—

व्याक्रीर्णे मन्दबुद्धीनां जायते मतिविभ्रमः ।

तस्यार्थस्तत्पदैस्तेन संक्षिप्य क्रियतेऽञ्जसा ॥ ५ ॥

व्याक्रीर्णे विक्षिप्ते विस्तीर्णे च रसशास्त्रे मन्दबुद्धीनां पुंसां मतिमोहो भवति, तेन तस्य नाट्यवेदस्यार्थस्तत्पदैरेव संक्षिप्य ऋजुवृत्त्या क्रियत इति ॥

इदं प्रकरणं दशरूपज्ञानफलम् । दशरूपं किंफलमित्याह—

आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः ।

योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराड्युखाय ॥ ६ ॥

तत्र केचित् 'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलामु च । करोति क्रीतिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥' (भामहः) इत्यादिना त्रिवर्गादिव्युत्पत्तिं काव्यफलत्वे-
नेच्छन्ति तन्निरासेन स्वसंवेद्यः परमानन्दरूपो रसास्वादो दशरूपाणां फलम् ,
न पुनरितिहासादिवत्त्रिवर्गादिव्युत्पत्तिमात्रमिति दर्शितम् । नम इति सोऽलुण्ठम् ॥

'नाट्यानां लक्षणं संक्षिपामि' (११४) इत्युक्तम्, किं पुनस्तन्नाट्यमित्याह—

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं

काव्योपनिबद्धधीरोदात्ताद्यवस्थानुकारश्चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यापत्तिर्ना-
ट्यम् ॥

रूपं दृश्यतयोच्यते ।

तदेव नाट्यं दृश्यमानतया रूपमित्युच्यते, नीलादिरूपवत् ॥

रूपकं तत्समारोपाद्

नटे रामाद्यवस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्व्यपकम् । मुखचन्द्रादिवदिलोकस्मिन्नर्थे प्रवर्त-
मानस्य शब्दत्रयस्य 'इन्द्रः पुरन्दरः शक्रः' इतिवत्प्रवृत्तिनिमित्तभेदो दर्शितः ॥

दशधैव रसाश्रयम् ॥ ७ ॥

रमानाश्रित्य वर्तमानं दशप्रकारकम् । एवेलवधारणं शुद्धाभिप्रायेण, नाटिकायाः
संकीर्णत्वेन वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तानेव दशभेदानुद्दिशति—

नाटकं सप्रकरणं भाणः ग्रहसनं डिमः ।

व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति ॥ ८ ॥

ननु, 'डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणीप्रस्थानरासकाः । काव्यं च सप्त नृत्यस्य
भेदाः स्युस्तेऽपि भाणवत् ॥' इति रूपकान्तराणामपि भावादवधारणानुपप-
त्तिरित्याशङ्क्याह—

अन्यद्वावाश्रयं नृत्यं

रसाश्रयान्नाख्याद्वावाश्रयं नृत्यमन्यदेव । तत्र भावाश्रयमिति विषयभेदाच्च नृत्यमिति नृतेर्गात्रविक्षेपार्थत्वेनाङ्गिकबाहुल्यात्तत्कारिषु च नर्तकव्यपदेशाल्लोकेऽपि चात्र प्रेक्षणीयकमिति व्यवहाराच्चाटकादेरन्यन्नृत्यम् । तद्वेदत्वाच्छ्रीगदितादेरवधारणोपपत्तिः । नाटकादि च रसविषयम् । रसस्य च पदार्थाभूतविभावादिकसंसर्गात्मकवाक्यार्थहेतुकत्वाद्वाक्यार्थाभिनयात्मकत्वं रसाश्रयमित्यनेन दर्शितम् । नाख्यमिति च 'नट अवस्पन्दने' इति नटेः किञ्चिच्चलनार्थत्वात्सात्त्विकबाहुल्यम् । अत एव तत्कारिषु नटव्यपदेशः । यथा च गात्रविक्षेपार्थत्वे समानेऽप्यनुकारात्मकत्वेन नृत्तादन्यन्नृत्यं तथा वाक्यार्थाभिनयात्मकान्नाख्यात्पदार्थाभिनयात्मकमन्यदेव नृत्यमिति ॥

प्रसङ्गाच्च तत् व्युत्पादयति—

नृत्तं ताललयाश्रयम् ।

तालः=चञ्चत्पुटोदिः, लयः=ड्रुतादिः, तन्मात्रापेक्षोऽङ्गविक्षेपोऽभिनयशून्यो नृत्तमिति ॥

अनन्तरोक्तं द्वितयं व्याचष्टे—

आद्यं पदार्थाभिनयो मार्गो देशी तथा परम् ॥ ९ ॥

नृत्यं पदार्थाभिनयात्मकं मार्ग इति प्रसिद्धम् । नृत्तं च देशीति ॥

द्विविधस्यापि द्वैविध्यं दर्शयति—

मधुरोद्धतभेदेन तद्वयं द्विविधं पुनः ।

लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम् ॥ १० ॥

सुकुमारं द्वयमपि लास्यम्, उद्धतं द्वितयमपि ताण्डवमिति । प्रसङ्गोक्तस्योपयोगं दर्शयति—तच्च नाटकाद्युपकारकमिति । नृत्यस्य क्वचिदवान्तरपदार्थाभिनयेन नृत्तस्य च शोभाहेतुत्वेन नाटकादावुपयोग इति ॥

अनुकारात्मकत्वेन रूपाणामभेदात्किञ्चित्तो भेद इत्याशङ्क्याह—

वस्तु नेता रसस्तेषां भेदको

वस्तुभेदाच्चायकभेदाद्रसभेदाद्रूपाणामन्योन्यं भेद इति ॥

वस्तुभेदमाह—

वस्तु च द्विधा ।

कथमित्याह—

तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः ॥ ११ ॥

प्रधानभूतमाधिकारिकम् । यथा रामायणे रामसीतावृत्तान्तः । तदङ्गभूतं प्रासङ्गिकम् । यथा तत्रैव विभीषणसुग्रीवादिवृत्तान्त इति ॥

निस्त्याधिकारिकं लक्षयति—

अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ।

तन्निर्वैर्त्यमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ॥ १२ ॥

फलेन स्वस्वामिसंबन्धोऽधिकारः, फलस्वामी चाधिकारी, तेनाधिकारेणाधिकारिणा वा निर्वृत्तं फलपर्यन्ततां नीयमानमिति वृत्तमाधिकारिकम् ॥

प्रासङ्गिकं व्याचष्टे—

प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः ।

यस्येति वृत्तस्य परप्रयोजनस्य सतस्तत्प्रसङ्गात्स्वप्रयोजनसिद्धिस्तत्प्रासङ्गिकमिति वृत्तं प्रसङ्गनिर्वृतेः ॥

प्रासङ्गिकमपि पताका-प्रकरीभेदाद्विविधमित्याह—

सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ॥ १३ ॥

दूरं यदनुवर्तते प्रासङ्गिकं सा पताका, सुग्रीवादिवृत्तान्तवत् । पताकेवासाधारणनायकचिह्नवत्तदुपकारित्वात् । यदल्पं सा प्रकरी, श्रावणादिवृत्तान्तवत् ॥

पताकाप्रसङ्गेन पताकास्थानकं व्युत्पादयति—

प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुतोऽन्योक्तिसूचकम् ।

पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम् ॥ १४ ॥

प्राकरणिकस्य भाविनोऽर्थस्य सूचकं रूपं पताकावद्भवतीति पताकास्थानकम् । तच्च तुल्येति वृत्ततया तुल्यविशेषणतया च द्विप्रकारम्,—अन्योक्तिसमाप्तोक्तिभेदात् । यथा रत्नावल्याम् (३।६)—

‘यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।

प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ॥’

यथा च तुल्यविशेषणतया,—

‘उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-

दायासं श्वसनोद्गमैरैविरलैरातन्वतीमात्मनः ।

अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं

पश्यन्कोपविपाटलद्युतिं मुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ॥’ (रत्ना० २।४)

एवमाधिकारिकद्विविधप्रासङ्गिकभेदाद्विविधस्यापि त्रैविध्यमाह—

प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्रेधापि तन्निधा ।

प्रख्यातमिति हासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम् ॥ १५ ॥

मिश्रं च संकरात्ताभ्यां दिव्यमर्त्यादिभेदतः ।

इति निगदव्याख्यातम् ॥

१ ‘अतिव्यापि’ इति पाठः. २ ‘अविरतैः’ इति पाठः । ३ ‘नान्तो’, ‘त्रेधा’ इति पाठौ.

तस्येतिवृत्तस्य किं फलमित्याह—

कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च ॥ १६ ॥

धर्मार्थकामाः फलम् । तच्च शुद्धमेकैकमेकानुबन्धं द्वित्र्यनुबन्धं वा ॥

तत्साधनं व्युत्पादयति—

स्वलोहिष्टस्तु तद्धेतुर्वीजं विस्तार्यनेकधा ।

स्तोकोहिष्टः कार्यसाधकः पुरस्तादनेकप्रकारं विस्तारी हेतुविशेषो बीजवद्बीजम् । यथा रत्नावल्यां वत्सराजस्य रत्नावलीप्राप्तिहेतुरनुकूलदैवो यौगंधरायणव्यापारो विष्कम्भके न्यस्तः—**यौगंधरायणः—**कः संदेहः । (‘द्वीपादन्यस्माद्’ (११६) इति पठति ।)’ इत्यादिना ‘प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ’ (११७) इत्यन्तेन ।

यथा च वेणीसंहारे द्रौपदीकेशसंयमनहेतुर्भामिकोधोपचितयुधिष्ठिरोत्साहो बीजमिति । तच्च महाकार्यावान्तरकार्यहेतुभेदादनेकप्रकारमिति ॥

अवान्तरबीजस्य संज्ञान्तरमाह—

अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम् ॥ १७ ॥

यथा रत्नावल्यामवान्तरप्रयोजनानङ्गपूजापरिसमाप्तौ कथार्थविच्छेदे सत्यनन्तरकार्यहेतुः—‘उदयनस्येन्दोरिवोद्गीक्षते । **सागरिका—**(श्रुत्वा ।) कैहं एसो सो उदयणणरिंदो जस्स अहं तादेण दिण्णा ।’ (रत्ना० ११२३) इत्यादि । विन्दुर्जले तैलविन्दुवत्प्रसारित्वात् ॥

इदानीं पताकार्यं प्रसङ्गाद्भुत्क्रमोक्तं क्रमार्थमुपसंहरन्नाह—

बीजविन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः ।

अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः ॥ १८ ॥

अर्थप्रकृतयः=प्रयोजनसिद्धिहेतवः ॥

अन्यदवस्थापञ्चकमाह—

अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।

आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ॥ १९ ॥

यथोद्देशं लक्षणमाह—

औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे ।

‘इदमहं संपादयामि’ इत्यध्यवसायमात्रमारम्भ इत्युच्यते । यथा रत्नावल्याम् (११७)—‘प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्यं दत्तहस्तावलम्बे ।’ इत्यादिना सचिवायत्तसिद्धेर्वत्सराजस्य कार्यारम्भो यौगंधरायणमुखेन दर्शितः ॥

अथ प्रयत्नः—

प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ॥ २० ॥

तस्य फलस्याप्राप्त्यनुपाययोजनादिरूपश्रेष्ठाविशेषः प्रयत्नः । यथा रत्नावल्यामालेख्याभिलेखनादिवत्सराजसमागमोपायः—‘तैहावि णत्थि अण्णो दंसण्ण-

१ ‘कथमेप स उदयननरेन्द्रो यस्याहं तातेन दत्ता ।’ इति च्छाया. २ ‘दैवेनेत्थं’ इति पाठः । ३ ‘तथापि नास्त्यन्यो दर्शनोपाय इति यथातथालिख्य यथा समीहितं करिष्यामि ।’ इति च्छाया.

वाओ ति जहा तहा आलिहिअ जधासमीहिअं करिस्सं ।' (रत्ना० पृ० ५४)
इत्यादिना प्रतिपादितः ॥

प्राप्त्याशामाह—

उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिर्संभवः ।

उपायस्यापायशङ्कायाश्च भावादनिर्धारितैकान्ता फलप्राप्तिः प्राप्त्याशा । यथा रत्नावल्यां तृतीयेऽङ्के (पृ० १४४) वेपपरिवर्ताभिसरणादौ समागमोपाये सति वासवदत्तालक्षणापायशङ्कायाः—'एवं यदि अआलवादाली विअ आअच्छिअ अण्णदो ण णइंस्सदि वासवदत्ता ।' इत्यादिना दर्शितत्वादनिर्धारितैकान्ता ममागमप्राप्तिरुक्ता ॥

नियताप्तिमाह—

अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता ॥ २१ ॥

अपायाभावादवधारितैकान्ता फलप्राप्तिर्नियताप्तिरिति । यथा रत्नावल्याम्—
'विदूषकः—मोगरिका दुक्करं जीविस्सदि ।' (पृ० १३८) इत्युपक्रम्य,—'किं ण उपायं चित्तेसि ।' (पृ० १३९) इत्यनन्तरम्,—'राजा—वयस्य, देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्यमनोपायं पश्यामि ।' (पृ० १३९) इत्यनन्तराङ्गार्थविन्दुनानेन देवी-लक्षणापायस्य प्रसादनेन निवारणान्विता फलप्राप्तिः सूचिता ॥

फलयोगमाह—

समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः ।

यथा रत्नावल्यां रत्नावलीलामचक्रवर्तितावाप्तिरिति ॥

संधिलक्षणमाह—

अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः ॥ २२ ॥

यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च संधयः ।

अर्थप्रकृतीनां पञ्चानां यथासंख्येनावस्थाभिः पञ्चभिर्योगाद्यथासंख्येनैव वक्ष्यमाणा मुखाद्याः पञ्च संधयो जायन्ते ॥

संधिसामान्यलक्षणमाह—

अन्तरैकार्थसंबन्धः संधिरेकान्वये सति ॥ २३ ॥

एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथांशानामवान्तरैकप्रयोजनसंबन्धः संधिः ॥

के पुनस्ते संधयः—

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमशौपसंहतिः ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नार्थरससंभवा ॥ २४ ॥

अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ।

१ 'एवं यदि अकालवातालीवागत्यान्यतो न नेष्यति वासवदत्ता ।' इति च्छाया.

२ 'सागरिका दुक्करं जीविष्यति ।' इति च्छाया. ३ 'किं नोपायं चिन्तयसि ।' इति च्छाया. ४ 'संश्रया' इति पाठः.

बीजानामुत्पत्तिरनेकप्रकारप्रयोजनस्य रसस्य च हेतुर्मुखसंघिरिति व्याख्ये-
यम् । तेनात्रिवर्गफले प्रहसनादौ रसोत्पत्तिहेतोरेव बीजत्वमिति । अस्य च
बीजारम्भार्थयुक्तानि द्वादशाङ्गानि भवन्ति ॥

तान्याह—

उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम् ॥ २५ ॥

युक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभाषना ।

उद्भेदभेदकरणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम् ॥ २६ ॥

एतेषां स्वसंज्ञाव्याख्यातानामपि सुखार्थं लक्षणं क्रियते—

बीजन्यास उपक्षेपः

यथा रत्नावल्याम् (११६)—‘(नेपथ्ये ।)

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।

आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥’

इत्यादिना यौगंधरायणो वत्सराजस्य रत्नावलीप्राप्तिहेतुभूतमनुकूलदैवं स्वव्यापारं
बीजत्वेनोपक्षिप्तवानित्युपक्षेपः ॥

परिकरमाह—

तद्वाहुल्यं परिक्रिया ।

यथा तत्रैव—‘अन्यथा क सिद्धादेशप्रत्ययप्रार्थितायाः सिंहलेश्वरदुहितुः
समुद्रे प्रवहणभङ्गमग्नौत्थितायाः फलकासादनम् ।’ (रत्ना० पृ० १३) इत्यादिना
‘सर्वथा स्पृशन्ति स्वामिनमभ्युदयाः’ इत्यन्तेन बीजोत्पत्तेरेव बहुकरणात्परिकरः ॥

परिन्यासमाह—

तन्निष्पत्तिः परिन्यासो

यथा तत्रैव (रत्ना० ११७)—

‘प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्थं दत्तहस्तावलम्बे ।

सिद्धेर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाकारी भीत एवासि भर्तुः ॥’

इत्यनेन यौगंधरायणः स्वव्यापारदैवयोर्निष्पत्तिमुक्तवानिति परिन्यासः ॥

विलोभनमाह—

गुणाख्यानं विलोभनम् ॥ २७ ॥

यथा रत्नावल्याम् (११२३)—

‘अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवा-

वास्थानीं समये समं नृपजनः सायंतने संपतत् ।

संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादांस्तवासेषितुं

प्रीत्युत्कर्षकृतो दशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ॥’

इति वैतालिकमुखेन चन्द्रतुल्यवत्सराजगुणवर्णनया सागरिकायाः समागम-
हेत्वनुरागबीजानुगुण्येनैव विलोभनाद्विलोभनमिति ॥

यथा च वेणीसंहारे (१।२२)—

‘मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरवलन्मन्दरध्वानधीरः

कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः ।

कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः

केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम् ॥’

इत्यादिना ‘यशोदुन्दुभिः’ (१।२५) इत्यन्तेन द्रौपद्या विलोभनाद्विलोभनमिति ॥

अथ युक्तिः—

संप्रधारणमर्थानां युक्तिः

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १५)—‘मयापि चैनां देवीहस्ते सबहुमानं निक्षिपता युक्तमेवानुष्ठितम् । कथितं च मया यथा वाभ्रव्यः कञ्जुकी सिंहलेश्वरामाल्येन वसुभूतिना सह कथंकथमपि समुद्रादुत्तीर्य कोशलोच्छित्तये गतस्य रुमण्वतो घटितः ।’ इत्यनेन सागरिकाया अन्तःपुरस्थाया वत्सराजस्य सुखेन दर्शनादि-प्रयोजनावधारणाद्वाभ्रव्यसिंहलेश्वरामाल्ययोः स्वनायकसमागमहेतुप्रयोजनत्वेनावधारणाद्युक्तिरिति ॥

अथ प्राप्तिः—

प्राप्तिः सुखागमः ।

यथा वेणीसंहारे (पृ० १९)—‘चेटी—भट्टिणि, परिकुविदो विअ कुमारो लक्खीअदि ।’ इत्युपक्रमे,—‘भीमः—

मभ्रामि कौरवरातं समरे न कोपाहुःशासनस्य रुधिरं न पिवाम्युरस्तः ।

संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू संधिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥ (१।१५)

द्रौपदी—(श्रुत्वा सहर्षम्) नाथ, अस्सुदपुष्वं खु एदं वअणं । ता पुणो पुणो भण ।’ (वे० सं० १९) इत्यनेन भीमकोधवीजान्वयेनैव सुखप्राप्त्या द्रौपद्याः प्राप्तिरिति । यथा च रत्नावल्याम् (पृ० ४६)—‘**सागरिका**—(श्रुत्वा सहर्षं परिवृत्य सस्पृहं पश्यन्ती ।) कैधं अअं सो राआ उदयणो जस्स अहं तादेण दिण्णा । ता परप्पेसण दूसिदं मे जीविदं एदस्स दंसणेण बहुमदं संजादं ।’ इति सागरिकायाः सुखागमात्प्राप्तिरिति ॥

अथ समाधानम्—

बीजागमः समाधानं

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ३८)—‘**घासवदत्ता**—तेणं हि उअणेहि मे

१ ‘भक्तिं, परिकुपित इव कुमारो लक्ष्यते ।’ इति च्छाया. २ ‘नाथ अश्रुतपूर्वं खल्वेतद्वचनम् । तत्पुनः पुनर्भण ।’ इति च्छाया. ३ ‘कथमयं स राजोदयनो यस्याहं तातेन दत्ता । तत्परप्रेषणदूषितं मे जीवितमेतस्य दर्शनेन बहुमतं संजातम् ।’ इति च्छाया. ४ ‘तेन ह्यपनय मे उपकरणानि ।’ इति च्छाया.

उवअरणाइं । सागरिका—भट्टिणि, एदं सव्वं सज्जं । वासवदत्ता—
(निष्क्यात्मगतम्) । अहो पमादो परिअणस्स । जस्स एव्व दंसणपहादो पअत्तेण
रक्खीअदि तस्स जेव कहं दिट्ठिगोअरं आअदा । भोदु । एव्वं दाव । (प्रकाशम् ।)
हज्जे सागरिए, कीस तुमं अज्ज पराहीणे परिअणे मअणूसवे सारिअं मोत्तूण
इहागदा । ता तहिं जेव गच्छ ।' इत्युपक्रमे,—‘सागरिका—(खगतम् ।)
सारिआ दाव मए सुसंगदाए हत्थे समप्पिदा । पेक्खिहुं च मे कुतूहलं । ता
अलक्खिआ पेक्खिस्सं ।' (रत्ना० पृ० ३९) इत्यनेन वासवदत्ताया रत्नावलीवत्स-
राजयोर्दर्शनप्रतीकारात्सारिकायाः सुसंगतार्पणेनालक्षितप्रेक्षणेन च वत्सराजसमा-
गमहेतोर्वाजस्योपादानात्समाधानमिति ।

यथा च वेणीसंहारे (११२१)—‘भीमः—भवतु । पाञ्चालराजतनये,
श्रूयतामचिरेणैव कालेन,—

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसंचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।

स्थानावनद्धघनशोणितशोणपाणिरुतंसयिष्यति कवांस्तव देवि भीमः ॥’

इत्यनेन वेणीसंहारहेतोः क्रोधवीजस्य पुनरुपादानात्समाधानम् ॥

अथ विधानम्—

विधानं सुखदुःखकृत् ॥ २८ ॥

यथा मालतीमाधवे प्रथमेऽङ्के (११३२) ‘माधवः—

यान्त्या मुहुर्वलितकन्धरमाननं तदावृत्तवृत्तशतपत्रनिभं वहन्त्या ।

दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः ॥

यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्यभावमानन्दमन्दममृतप्लवनादिवाभूत् ।

तत्संनिधौ तदधुना हृदयं मदीयमङ्गारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते ॥’

(मालती० ११२२)

इत्यनेन मालत्यवलोकनस्यानुरागस्य समागमहेतोर्वाजानुगुण्येनैव माधवस्य सुख-
दुःखकारित्वाद्विधानमिति ।

यथा च वेणीसंहारे (११२६)—‘द्रौपदी—‘गोध, पुणोवि तुम्मेहिं अहं
आअच्छिअ समासासिदव्वा । भीमः—ननु पाञ्चालराजतनये, किमद्याप्यलीका-
श्वासनया ।

भूयः परिभवक्लान्तिलजाविधुरिताननम् ।

अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम् ॥’

इति संग्रामस्य सुखदुःखहेतुत्वाद्विधानमिति ॥

१ ‘भक्तिं, एतत्सर्वं सज्जम् ।’ इति च्छाया. २ ‘अहो प्रमादः परिजनस्य । यस्यैव
दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्षते तस्यैव कथं दृष्टिगोचरमागता । भवतु । एवं तावत् । चेदि
सागरिके, कथं त्वमथ पराधीने परिजने मदनोत्सवे सागरिकां मुक्तेवेहागता । तस्मा-
त्तत्रैव गच्छ ।’ इति च्छाया. ३ ‘सारिका तावन्मया सुसंगताया हस्ते समर्पिता ।
प्रेक्षितुं च मे कुतूहलम् । तदलक्षिता प्रेक्षिष्ये ।’ इति च्छाया. ४ ‘नाथ, पुनरपि
त्वयाहमागत्य समाश्वासयितव्या ।’ इति च्छाया.

अथ परिभावना—

परिभावोऽद्भुतावेशः

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ४४)—‘सागरिका—(दृष्ट्वा सविस्मयम् ।) कथं पञ्चवस्रो जेव अणंगो पूअं पडिच्छेदिता । अहंपि इध ठिढा जेव णं पूजइस्सं ।’ इत्यनेन वत्सराजस्यानङ्गरूपतयापह्नवादनङ्गस्य च प्रत्यक्षस्य पूजाग्रहणस्य लोकोत्तरत्वादद्भुतरसावेशः परिभावना ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० ३०)—‘द्रौपदी—किं^१ दाणिं एसो पलअजलध-
रत्थणिदमंसलो खणे खणे समरदुंदुमी ताडीअदि ति ।’ इति लोकोत्तरसमरदुन्दु-
भिध्वनेर्विस्मयरसावेशाद्रौपद्याः परिभावना ॥

अथोद्भेदः—

उद्भेदो गूढभेदनम् ।

यथा रत्नावल्यां वत्सराजस्य कुसुमायुधव्यपदेशगूढस्य वैतालिकवचसा ‘अस्ता-
पास्त—’ (१।२३) इत्यादिना ‘उदयनस्य—’ इत्यन्तेन बीजानुगुण्येनैवोद्भेदना-
दुद्भेदः ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० २९)—‘आर्य, किमिदानीमभ्यवस्यति गुरुः ।’
इत्युपक्रमे ‘(नेपथ्ये ।)

यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं

यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता ।

तद्व्यतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः

क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ॥ (१।२४)

भीमः—(सहर्षम् ।) जृम्भतां जृम्भतां संप्रत्यप्रतिहतमार्यस्य क्रोधज्योतिः ।
इत्यनेन छन्नस्य द्रौपदीकेशसंयमनहेतोर्यौधिष्ठिरक्रोधस्योद्भेदः ॥

अथ करणम्—

करणं प्रकृतारम्भो

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ४४)—‘गैमो दे कुसुमाउह, ता अमोहदंसणो मे
भविस्सति ति दिट्ठं जं पेक्खिदव्वं । ता जाव ण को वि मं पेक्खइ ता
गमिस्सं ।’ इत्यनेनान्तराङ्कप्रकृतनिर्विघ्नदर्शनारम्भणात्करणम् ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० ३१)—‘तत्पात्रालि, गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुल-
क्षयाय’ । सहदेवः—‘आर्य, गच्छाम इदानीं गुरुजनानुज्ञाता विक्रमानुरूपमा-
चरितुम् ।’ इत्यनेनान्तराङ्कप्रस्तूयमानसंप्रामारम्भणात्करणमिति । सर्वत्र चेहो-
द्देशप्रतिनिर्देशवैषम्यं क्रियाक्रमस्याविवक्षितत्वादिति ॥

१ ‘कथं प्रत्यक्ष एवानङ्गः पूजां प्रतिच्छेदिता । अहमपीहास्थितैवैनं पूजयिष्यामि ।’
इति च्छाया. २ ‘किमिदानीमेष प्रलयजलधरस्तनितमांसलः क्षणे क्षणे समरदुन्दुभि-
स्ताड्यते ।’ इति च्छाया. ३ ‘नमस्ते कुसुमायुध, तदमोघदर्शनो मे भविष्यतीति ।
दृष्टं यत्प्रेक्षितव्यम् । तथावत्र कोऽपि मां प्रेक्षते तद्गमिष्यामि ।’ इति च्छाया.

अथ भेदः—

भेदः प्रोत्साहना मता ॥ २९ ॥

यथा वेणीसंहारे (१।२७)—‘नाथ, मा खलु जण्णसेणीपरिभवोद्दीपितकोवा अनवेक्षितदशरीरा परिक्रमिस्सथ । जदो अप्पमत्तसंचरणीयाइं सुणीयंति रिउबलाइं । भीमः—अयि सुक्षत्रिये,

अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरधिरवसासान्द्रमस्तिष्कपङ्के

मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ ।

स्फीतासूत्रपानगोष्ठीरसदशिवशिवातुर्यचतुत्कचन्धे

संप्रामैकार्णवान्तःपयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ॥’

इत्यनेन विषण्णाया द्रौपद्याः क्रोधोत्साहवीजानुगुण्येनैव प्रोत्साहनाद्भेद इति ॥

एतानि च द्वादश मुखाङ्गानि बीजारम्भद्योतकानि साक्षात्पारम्पर्येण वा विधेयानि । एतेषामुपक्षेपपरिकरपरिन्यासयुक्त्युद्भेदसमाधानानामवश्यंभाविता इति ॥

अथ साङ्गं प्रतिमुखसंधिमाह—

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् ।

विन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश ॥ ३० ॥

तस्य बीजस्य किञ्चिदलक्ष्यः किञ्चिदलक्ष्य इवोद्भेदः प्रकाशनं तत्प्रतिमुखम् । यथा रत्नावल्यां द्वितीयेऽङ्के वत्सराजसागरिकासमागमहेतोरनुरागबीजस्य प्रथमाङ्कोपक्षितस्य सुसङ्गताविदूषकाभ्यां ज्ञायमानतया किञ्चिदलक्ष्यस्य वासवदत्तया च चित्रफलकवृत्तान्तेन किञ्चिदुज्जयमानस्य दृश्यादृश्यरूपतयोद्भेदः प्रतिमुखसंधिरिति ।

वेणीसंहारेऽपि द्वितीयेऽङ्के (२।५) भीष्मादिवधेन किञ्चिदलक्ष्यस्य कर्णाद्यवधाच्चालक्ष्यस्य क्रोधबीजस्योद्भेदः ।

‘सहस्रत्यगणं सवान्धवं सहमित्रं समुतं सहानुजम् ।

स्वबलेन निहन्ति संयुगे नचिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम् ॥’

श्लादिभिः

‘दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे ।

तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां ह्येया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ॥’

(वे. सं. २।२८)

इत्येवमादिभिश्चोद्भेदः प्रतिमुखसंधिरिति ॥

अस्य च पूर्वाङ्कोपक्षितविन्दुरूपबीजप्रयत्नार्थानुगतानि त्रयोदशाङ्गानि भवन्ति । तान्याह—

१ ‘नाथ, मा खलु यादृसेनीपरिभवोद्दीपितकोपा अनवेक्षितदशरीराः परिक्रमिष्यथ । यतोऽप्रमत्तसंचरणीयानि श्रूयन्ते रिपुबलानि ।’ इति च्छाया. २ ‘लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदः’ इति पाठः.

विलासः परिसर्पश्च विधूतं शमनर्मणी ।
नर्मद्युतिः प्रगमनं निरोधः पर्युपासनम् ॥ ३१ ॥
वज्रं पुष्पमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यपि ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

रैत्यर्थेहा विलासः स्याद्

यथा रत्नावल्याम्—‘सागरिका—हिअँअ, पसीद पसीद । किं इमिणा आआसमेत्तफलेण दुल्लहजणप्पत्थणाणुवन्धेण ।’ इत्युपक्रमे,—‘तँहावि आलेक्खगदं नं जणं कटुअ जथासमीहिदं करिस्सं । तँहावि तस्स णत्थि अण्णो दंसणोवा-
उ त्ति ।’ इत्येतैर्वत्सराजसमागमरतिं चित्रादिजन्यामभ्युद्दिश्य सागरिकायाश्चेष्टा-
प्रयत्नोऽनुरागवीजानुगतो विलास इति ॥

अथ परिसर्पः—

दृष्टानष्टानुसर्पणम् ॥ ३२ ॥

परिसर्पो

यथा वेणीसंहारे (२।२)—‘कञ्चुकी—योऽयमुद्यतेषु बलवत्सु, अथवा किं बलवत्सु, वासुदेवसहायेष्वरिष्वद्याप्यन्तःपुरसुखमनुभवति । इदमपरमयथातथं स्वामिनः,—

आशस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने-

स्तापायास्य न पाण्डुसूनुभिरयं भीष्मः शरैः शायितः ।

प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो

बालस्यायमरातिल्लनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्विधात् ॥’

इत्यनेन भीष्मादिवधे दृष्टस्याभिमन्युवधाञ्छस्य बलवतां पाण्डवानां वासुदेवस-
हायानां सङ्ग्रामलक्षणविन्दुवीजप्रयत्नान्वयेन कञ्चुकिमुखे वीजानुसर्पणं परि-
सर्प इति ।

यथा च रत्नावल्यां सागरिकावचनचित्रदर्शनाभ्यां सागरिकानुरागवीजस्य
दृष्टनष्टस्य ‘क्कासौ क्कासौ’ इत्यादिना वत्सराजेनानुमरणात्परिसर्प इति ॥

अथ विधूतम्—

विधूतं स्यादरतिस्र

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ६२)—‘सागरिका—सँहि, अहिअं मे संतावो बाधेदि ।
(सुसङ्गता दीर्घिकातो नलिनीदलानि मृणालिकाश्चानीयास्या अङ्गे ददाति ।) साग-

१ ‘प्रगयणम्’ इति पाठः. २ ‘रत्युत्थेहा’ इति पाठः. ३ ‘हृदय, प्रसीद
प्रसीद । किमनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेन ।’ इति च्छाया. ४ ‘तथा-
प्यालेख्यगतं तं जनं कृत्वा यथासमीहितं करिष्यामि । तथापि तस्य नास्त्यन्यो दर्शनो-
पाय इति ।’ इति च्छाया. ५ ‘सखि, अधिकं मे संतापो बाधते ।’ इति च्छाया.

रिका—(तानि क्षिपन्ती ।) संहि, अवणेहि एदाइं । किं अआरणे अत्ताणं आयासेसि ? णं भणामि,—

दुल्लहजणाणुराओ लज्जा गरुई परव्वसो अप्पा ।

पिअसहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवर एकं ॥' (रत्ना० २।१)

इत्यनेन सागरिकाया बीजान्वयेन शीतोपचारविधूननात् विधूतम् ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० ४१-५१) भानुमत्या दुःखप्रदर्शनेन दुर्योधनस्या-
निष्टशङ्कया पाण्डवविजयशङ्कया वा रतेः विधूननमिति ॥

अथ शमः—

तच्छमः शमः ।

तस्या अरतेरुपशमः शमः । यथा रत्नावल्याम् (पृ० ८७)—‘राजा—वयस्य, अनया लिखितोऽहमिति यत्सत्यमात्मन्यपि मे बहुमानस्तत्कथं न पश्यामि ।’ इति प्रक्रमे ‘सागरिका—(आत्मगतम् ।) हिअंअ, समस्सस । मणोरहो वि दे एत्तिअं भूमिं ण गदो ।’ (रत्ना० पृ० ८६) इति किंचिदरत्युपशमात् शम इति ॥

अथ नर्म—

परिहासवचो नर्म

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ९०)—‘सुसङ्गता—संहि, जस्स कए तुमं आअदा सो अजं पुरदो चिट्ठदि । सागरिका—(सासूयम् ।) सुंसंगदे, कस्स कए अहं आअदा ? सुसङ्गता—अइ अप्पसंकिदे, णं चित्तफलअस्स । ता गेण्ह एदं ।’ इत्यनेन बीजान्वितं परिहासवचनं नर्म ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० ४९)—‘(दुर्योधनश्चेटीहस्तादर्घपात्रमादाय देव्याः सैमर्पयति । पुनः) भानुमती—(अर्घ दत्त्वा ।) हँला, उवणेहि मे कुसुमाइं जाव अवराणं पि देवाणं सवरिअं णिवत्तेमि (हस्तौ प्रसारयति । दुर्योधनः पुष्पाण्युपनयति । भानुमत्यास्तस्पर्शजातकम्पाया हस्तापुष्पाणि पतन्ति ।)’ इत्यनेन नर्मणा दुःखप्रदर्शनोपशमार्थं देवतापूजाविघ्नकारिणा बीजोद्धाटनात्परिहासस्य प्रतिमुखाङ्गलं युक्तमिति ॥

अथ नर्मद्युतिः—

द्युतिस्तज्जा द्युतिर्मता ॥ ३३ ॥

१ ‘सखि, अपनयैतानि । किमकारण आत्मानमायासयसि ? ननु भणामि,—
दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा ।

प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं केवलमेकम् ॥’ इति च्छाया.

२ ‘हृदय, समाश्वसिहि । मनोरथोऽपि त एतावतीं भूमिं न गतः ।’ इति च्छाया.

३ ‘सखि, यस्य कृते त्वमागता सोऽयं पुरतस्तिष्ठति ।’ इति च्छाया. ४ ‘सुसङ्गते, कस्य कृतेऽहमागता ?’ इति च्छाया. ५ ‘अयि आत्मशङ्किते, ननु चित्रफलकस्य । तद्गृहाणैतत् ।’ इति च्छाया. ६ ‘हला, उपनय मे कुसुमानि यावदपरेषामपि देवानां सपर्यां निवर्तयामि ।’ इति च्छाया.

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ९७)—**सुसङ्गता**—संहि, अदिणिट्टुरा, दाणिं सि तुमं । जा एवं पि भट्टिणा हत्थावलंबिदा कोवं ण मुंचसि । **सागरिका**—(सभू-भङ्गमीपद्विहस्य ।) सुसंगदे, दाणिं पि ण विरमसि ।' इत्यनेनानुरागवीजोद्घाटनान्वयेन धृतिर्नर्मजा द्युतिरिति दर्शितमिति ॥

अथ प्रैगमनम्—

उत्तरा वाक्प्रैगमनं

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ८१)—**विदूषकः**—'भो वअस्स, दिट्ठिआ वड्ढसे । **राजा**—(सकौतुकम् ।) वयस्य, किमेतत् । **विदूषकः**—'भो, एदं क्खु तं जं मए भणिदं तुमं एव्व आलिहिदो । को अण्णो कुसुमाजहव्ववदेसेण णिण्हवीअदि ।' इत्यादिना ।

'परिच्युतस्तत्कुचकुम्भमध्यात्किं शोषमायासि मृणालहार ।

न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात् ॥' (रत्ना० २।१५) इत्यनेन राजविदूषकसागरिकासुसङ्गतानामन्योन्यवचनेनोत्तरोत्तरानुरागवीजोद्घाटनात् प्रैगमनमिति ॥

अथ निरोधः—

हितरोधो निरोधनम् ।

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ९९)—**राजा**—धिङ् मूर्ख,—

प्राप्ता कथमपि दैवात्कण्ठमनीतैव सा प्रकटरागा ।

रत्नावलीव कान्ता मम हस्ताङ्गशिता भवता ॥'

इत्यनेन वत्सराजस्य सागरिकासमागमरूपहितस्य वासवदत्ताप्रवेशसूचकेन विदूषकवचसा निरोधात् निरोधनमिति ॥

अथ पर्युपासनम्—

पर्युपास्तिरनुनयः

यथा रत्नावल्याम् (२।२०)—**राजा**—

प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते

करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युपगमः ।

न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि हि ज्ञास्यसि मृषा

किमेतस्मिन्वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ॥'

इत्यनेन चित्रगतयोर्नायकयोर्दर्शनात्कुपिताया वासवदत्ताया अनुनयनं नायकयोरनुरागोद्घाटनान्वयेन पर्युपासनमिति ॥

१ 'सखि, अतिनिषुरेदानीमसि त्वम् । यैवमपि भर्त्रा हस्तावलम्बिता कोपं न मुञ्चसि ।' इति च्छाया. २ 'सुसङ्गते, इदानीमपि न विरमसि ।' इति च्छाया. ३ 'प्रगयणम्' इति पाठः. ४ 'भो वयस्य, दिष्ट्या वर्धसे ।' इति च्छाया. ५ 'भोः, एतत्खलु तथन्मया भणितं त्वमेवालिखितम् । कोऽन्यः कुसुमायुधव्यपदेशेन निहूयते ।' इति च्छाया.

अथ पुष्पम्—

पुष्पं वाक्यं विशेषवत् ॥ ३४ ॥

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ९७)—‘(राजा सागरिकां हस्ते गृहीत्वा स्पर्शं नाटयति ।) विदूषकः—भो एसा अपुव्वा तिरि तुए समासादिदा ।

राजा—वयस्य, सत्यम्,—

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।

कुतोऽन्यथा सवलेष खेदच्छद्मामृतद्रवः ॥’ (२।१८)

इत्यनेन नायकयोः साक्षादन्योन्यदर्शनादिना सविशेषानुगोद्धाटनात् पुष्पम् ॥

अथोपन्यासः—

उपन्यासस्तु सोपायं

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ९३)—‘सुसङ्गता—मैट्टा, अलं संकाए । मए वि भट्टिणो पसाएण कीलिदं एव्व । ता किं कण्णाभरणेण । अदो वि मे गरुओ पसाओ, जं कीस तए अहं एत्थ आलिहिअ त्ति कुविआ मे पिअसही साअरिआ । ता पसादीअदु ।’ इत्यनेन सुसङ्गतावचसा सागरिका मया लिखिता सागरिकया च त्वमिति सूचयता प्रसादोपन्यासेन बीजोद्भेदात् उपन्यास इति ॥

अथ वज्रम्—

वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम् ।

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १०३)—‘वासवदत्ता—(फलकं निर्दिश्य ।) अञ्जउत्त, एसावि जा तुह समीवे, एदं किं वसंतअस्स विण्णाणं ।’ पुनः ‘अञ्जउत्त, ममावि एदं चित्तकम्म पेक्खंतीए सीसवेअणा समुप्पण्णा ।’ इत्यनेन वासवदत्तया वत्सराजस्य सागरिकानुरागोद्भेदनात्प्रत्यक्षनिष्ठुराभिधानं वज्रमिति ॥

अथ वर्णसंहारः—

चातुर्वर्ण्योपगमनं वर्णसंहार इष्यते ॥ ३५ ॥

यथा वीरचरिते तृतीयेऽङ्के (३।५)—

‘परिपदियमृषीणामेष वृद्धो युवाजित्सह नृपतिरमालैल्लोमपादश्च वृद्धः ।

अयमविरतयज्ञो ब्रह्मवादी पुराणः प्रभुरपि जनकानामद्बुहो याचकास्ते ॥’

इत्यनेन ऋषिक्षत्रियामाल्यादीनां संगतानां वर्णानां वचसा रामविजयाशंसिनः परशुरामदुर्नयस्याद्रोह्याच्चाद्वारेणोद्भेदनात् वर्णसंहार इति ॥

- १ ‘भोः, एषाऽपूर्वा श्रीस्त्वया समासादिता ।’ इति च्छाया. २ ‘प्रसादनमुपन्यासः’ इति पाठः. ३ ‘भर्तुः, अलं शङ्कया । मयापि भर्तुः प्रसादेन क्रीडितमेव तत्किं कर्णाभरणेन । असावपि मे गुरुः प्रसादः, यत्कथं त्वयाहमत्रालिखितेऽपि कुपिता मे प्रियसखी सागरिका । तत्प्रसाद्यताम् ।’ इति च्छाया. ४ ‘आर्यपुत्र, एषापि वा तव समीपे, एतत्किं वसन्तकस्य विज्ञानम् ।’ इति च्छाया. ५ ‘आर्यपुत्र, ममाप्येतच्चित्रकर्म पश्यन्त्याः शीर्षवेदना समुत्पन्ना ।’ इति च्छाया. ६ ‘चातुर्वर्ण्यो’ इति पाठः.

एतानि च त्रयोदश प्रतिमुखाङ्गानि मुखसंध्युपक्षितविन्दुलक्षणावान्तरबीज-
महाबीजप्रयत्नानुगतानि विधेयानि । एतेषां च मध्ये परिसर्पप्रशमवज्रोपन्यास-
पुष्पाणां प्राधान्यम् । इतरेषां यथासंभवं प्रयोग इति ॥

अथ गर्भसंधिमाह—

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः ।

द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसंभवः ॥ ३६ ॥

प्रतिमुखसंधौ लक्ष्यालक्ष्यरूपतया स्तोकोद्भिन्नस्य बीजस्य सविशेषोद्भेदपूर्वकः
सान्तरायो लाभः पुनर्विच्छेदः पुनः प्राप्तिः पुनर्विच्छेदः पुनश्च तस्यैवान्वेषणं
वारंवारं रोऽनिर्धारितैकान्तफलप्राप्त्याशात्मको गर्भसंधिरिति । तत्र चोत्सर्गि-
कत्वेन प्राप्तायाः पताकाया अनियमं दर्शयति—‘पताका स्यान्न वा’ इत्यनेन ।
प्राप्तिसंभवस्तु स्यादेवेति दर्शयति—‘स्यात्’ इति । यथा रत्नावल्यां तृतीयेऽङ्के
वत्सराजस्य वासवदत्तालक्षणापायेन तद्वेषपरिग्रहसागरिकाभिसरणोपायेन च
विदूषकवचसा सागरिकाप्राप्त्याशा प्रथमं पुनर्वासवदत्तया विच्छेदः पुनः प्राप्तिः
पुनर्विच्छेदः पुनरपायनिवारणोपायान्वेषणं (रत्ना० पृ० १३९) ‘नास्ति देवी-
प्रसादनं सुक्त्वान्य उपायः’ इत्यनेन दर्शितमिति ॥

स च द्वादशाङ्गो भवति, तान्युद्दिशति—

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः ।

संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिवले तथा ॥ ३७ ॥

उद्वेगसंभ्रमाक्षेपा लक्षणं च प्रणीयते ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

अभूताहरणं छद्म

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १०९)—‘साधु रे अमच्च वसंतअ, साधु । अदिमइदो
नुए अमच्चो जोगंधराअणो इमाए संधिविग्गहचिंताए ।’ इत्यादिना प्रवेशकेन
गृहीतवासवदत्तावेषायाः सागरिकाया वत्सराजाभिसरणं छद्म विदूषकसुसङ्गता-
क्लृप्तकान्धनमालानुवादद्वारेण दर्शितमिति अभूताहरणम् ॥

अथ मार्गः—

मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम् ॥ ३८ ॥

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ११६)—‘विदूषकः—दिट्ठिआ वड्डसि समीहिदम्भ-
धिकाए कज्जसिद्धीए । राजा—वयस्य, कुशलं प्रियायाः ? विदूषकः—अइरेण
सअं जेव्व पेक्खिअ जाणिहिसि । राजा—दर्शनमपि भविष्यति ? विदूषकः—

१ ‘साधु रे अमात्य वसन्तक, साधु । अतिशयितस्त्वयामात्यो यौगंधरायणो-
ऽनया संधिविग्रहचिन्तया ।’ इति च्छाया. २ ‘दिट्ठ्या वर्धसे समीहिताभ्यधिकया
कार्यसिद्ध्या ।’ इति च्छाया. ३ ‘अचिरेण स्वयमेव प्रेष्य ज्ञास्यसि ।’ इति च्छाया.

(सर्वम् ।) कीस ण भविस्सदि, जस्स दे उवहसिदविहफदिवुद्धिविहवो अहं अमच्चो । **राजा**—तथापि कथमिति श्रोतुमिच्छामि । **विदूषकः**—(कर्णे कथयति ।) एव्वं ।' इत्यनेन यथा विदूषकेण सागरिकासमागमः सूचितः, तथैव निश्चितरूपो राज्ञे निवेदित इति तत्त्वार्थकथनात् मार्ग इति ॥

अथ रूपम्—

रूपं वितर्कवद्वाक्यं

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १२४)—**‘राजा**—अहो किमपि कामिजनस्य खगृहिणीसमागमपरिभाविनोऽभिनवं जनं प्रति पक्षपातः । तथा हि,—

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता

घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।

वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नश्रुताप्यहो

रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ॥ (३१९)

कथं चिरयति वसन्तकः ? किं नु खलु विदितः स्यादयं वृत्तान्तो देव्याः ।'

इत्यनेन रत्नावलीसमागमप्राप्त्याशानुगुण्येनैव देवीशङ्कायाश्च वितर्कात् रूपमिति ॥

अथोदाहरणम्—

सोत्कर्षं स्यादुदाहृतिः ।

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ११५)—**‘विदूषकः**—(सहर्षम् ।) हौं ही भोः, कोसंबीरज्जलाहेणावि ण तादिसो वअस्सस्स परित्तोसो आसि, यादिसो मम सआसादो पिअवअणं सुणिअ भविस्सदि ति तक्केमि ।' इत्यनेन रत्नावलीप्राप्तिवार्तापि कौशाम्बीराज्यलाभादतिरिच्यत इत्युत्कर्षाभिधानात् उदाहृतिरिति ॥

—अथ क्रमः—

क्रमः संचिन्त्यमानासिद्

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १२८)—**‘राजा**—उपनतप्रियासमागमोत्सवस्यापि मे किमिदमत्यर्थमुत्ताम्यति चेतः । अथवा,—

तीव्रः स्मरसंतापो न तथादौ बाधते यथासन्ने ।

तपति प्रावृषि सुतरामभ्यर्णजलागमो दिवसः-॥ (३१९०)

विदूषकः—(आकर्ष्य ।) भोदि सागरिए, एसो पिअवअस्सो तुमं जेव उद्दिस्सिअ उक्कं ठाणिअमरं मंतेदि । ता निवेदेमि से तुहागमणं ।' इत्यनेन वत्सराजस्य सागरिकासमागममभिलषत एव भ्रान्तसागरिकाप्राप्तिरिति क्रमः ॥

१ 'कथं ण भविष्यति, यस्य त उपहसितवृहस्पतिबुद्धिविभवोऽहममालः ।' इति च्छाया. २ 'एवम्' इति च्छाया. ३ 'ही ही भोः, कौशाम्बीराज्यलाभेनापि न तादृशो वयस्यस्य परितोष आसीत्, यादृशो मम सकाशात्प्रियवचनं श्रुत्वा भविष्यतीति तर्कयामि ।' इति च्छाया. ४ 'भवति सागरिके, एष प्रियवयसस्त्वामेवोद्दिश्योत्कण्ठानिर्भरं मन्त्रयति । तन्निवेदयामि तस्मै तवागमनम् ।' इति च्छाया.

अथ क्रमान्तरं मतभेदेन—

भावज्ञानमथापरे ॥ ३९ ॥

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १२९)—‘राजा—(उपसृत्य ।) प्रिये सागरिके,—

शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ

रम्भागर्भनिभं तवोरुयुगलं बाहू मृणालोपमौ ।

इत्याह्लादकराखिलाङ्गि रभसाग्निःशङ्कमालिङ्ग्य मा-

मङ्गानि त्वमनङ्गतापविधुराण्येहैहि निर्वापय ॥’ (३१११)

इत्यादिना ‘इह तदप्यस्त्येव बिम्बाधरे ।’ (३११३) इत्यन्तेन वासवदत्तया वत्सराजभावस्य ज्ञातत्वात् क्रमान्तरमिति ॥

अथ संग्रहः—

संग्रहः सामदानोक्तिः

यथा रत्नावल्याम् (पृ० ११७)—‘साधु वयस्य, साधु । इदं ते पारितोषिकं कटकं ददामि ।’ इत्याभ्यां सामदानाभ्यां विदूषकस्य सागरिकासमागमकारिणः संग्रहात् संग्रह इति ॥

अथानुमानम्—

अभ्यूहो लिङ्गतोऽनुमा ।

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १३७)—‘राजा—धिष् मूर्ख, लङ्कृत एवायमा-
पतितोऽस्माकमनर्थः । कुतः,—

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानात्प्रतिदिनं

व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया ।

प्रिया मुञ्चत्यथ स्फुटमसहना जीवितमसौ

प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्वलितमविषह्यं हि भवति ॥ (३१५५)

विदूषकः—‘भो वयस्स, वासवदत्ता किं करिस्सदि त्ति ण जाणामि । साग-
रिआ उण दुक्करं जीविस्सदि त्ति तक्केमि ।’ इत्यत्र प्रकृष्टप्रेमस्खलनेन सागरिका-
नुरागजन्येन वासवदत्ताया मरणाभ्यूहनं अनुमानमिति ॥

अथाधिबलम्—

अधिबलमभिसंधिः

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १२६)—‘काञ्चनमाला—भैट्टिणि, इअं सा
चित्तसालिआ । ता वसंतअस्स सण्णं करेमि । (छोटिकां ददाति ।)’ इत्यादिना
वासवदत्ताकाञ्चनमालाभ्यां सागरिकासुसङ्गतावेषाभ्यां राजविदूषकयोरभिसंधी-
यमानत्वादधिबलमिति ॥

१ ‘भो वयस्य, वासवदत्ता किं करिष्यतीति न जानामि । सागरिका पुनर्दुष्करं
जीविष्यतीति तर्कयामि ।’ इति च्छाया. २ ‘भक्ति, इयं सा चित्रशालिका । तद्वसन्त-
कस्य संज्ञां करोमि ।’ इति च्छाया.

अथ तोटकम्—

संरब्धं तोटकं वचः ॥ ४० ॥

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १४७)—वासवदत्ता—(उपसृत्य ।) अज्जउत्त, जुत्तमिणं सरिसमिणं । (पुनः सरोषम् ।) अज्जउत्त, उट्ठेहि । किं अज्जवि आहिजाईए सेवादुक्खमणुभवीअदि । कंचणमाले, एदेण जेव पासेण बंधिअ आपेहि एणं दुट्ठवम्हणं । एदं पि दुट्ठकण्णअं अग्गदो करेहि । इत्यनेन वासवदत्तासंरब्धवचसा सागरिकासमागमान्तरायभूतेनानियतप्राप्तिकारणं तोटकमुक्तम् ॥ यथा च वेणीसंहारे (३।३४)—

‘प्रयत्नपरिवोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशाम् ।’

इत्यादिना,

‘धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ।’ (३।४६)

इत्यन्तेनान्योन्यं कर्णाश्वत्थान्नोः संरब्धवचसा सेनाभेदकारिणा पाण्डवविजय-प्राप्त्याशान्वितं तोटकमिति ॥

ग्रन्थान्तरे तु—

तोटकस्यान्यथाभावं ब्रुवतेऽधिबलं बुधाः ।

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १३५)—‘राजा—देवि, एवमपि प्रत्यक्षदृष्ट्यलीकः किं विज्ञापयामि,—

आताम्रतामपनयामि विलक्ष एव लाक्षाकृतां चरणयोस्तव देवि मूर्ध्ना ।

कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे हर्तुं क्षमो यदि परं करुणा मयि स्यात् ॥’

(३।१४)

संरब्धवचनं यत्तु तोटकं तदुदाहृतम् ॥ ४१ ॥

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १३४)—‘राजा—प्रिये वासवदत्ते, प्रसीद प्रसीद । वासवदत्ता—(अश्रूणि धारयन्ती ।) अज्जउत्त, मा एवं भण । अण्णसं-कंताईं खु एदाईं अक्खराईं ति ।’

यथा च वेणीसंहारे (पृ० १०५)—‘राजा—अये सुन्दरक, कच्चित्कुशलमङ्ग-राजस्य ? पुरुषः—कुसलं सरीरमेतत्केण । राजा—किं तस्य किरीटिना हता धौरेयाः, क्षत्तः सारथिः, भग्नो वा रथः ? पुरुषः—देवै, ण भग्गो रहो । भग्गो से मणोरहो । राजा—(ससंभ्रमम् ।) कथम् ?’ इत्येवमादिना संरब्धवचसा तोटकमिति ॥

१ ‘आर्यपुत्र, युक्तमिदं सदृशमिदम् । आर्यपुत्र, उत्तिष्ठ । किमद्याप्याभिजात्याः सेवा-दुःखमनुभूयते । काञ्चनमाले, एतेनैव पाशेन बद्धानयैनं दुष्टनाह्वणम् । एतामपि दुष्टक-न्यकामयतः कुरु ।’ इति च्छाया. २ ‘आर्यपुत्र, मैवं भण । अन्यसंक्रान्तानि खल्वे-तान्यक्षराणीति ।’ इति च्छाया. ३ ‘कुशलं शरीरमात्रकेण ।’ इति च्छाया. ४ ‘देव, न भग्नो रथः । भग्नोऽस्य मनोरथः ।’ इति च्छाया.

अथोद्वेगः—

उद्वेगोऽरिकृता भीतिः

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १४९)—‘सागरिका—(आत्मगतम् ।) केहं अकिदपुण्णेहिं अत्तणो इच्छाए मरिउं पि ण पारीअदि ।’ इत्यनेन वासवदत्तानः सागरिकाया भयमिति उद्वेगः । यो हि यस्यापकारी स तस्यारिः ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० ९६)—‘सूतः—(श्रुत्वा सभयम् ।) कथमासन्न एवासौ कौरवराजपुत्रमहावनोत्पातमारुतो मारुतिरनुपलब्धसंज्ञश्च महाराजः । भवतु । दूरमपहरामि स्यन्दनम् । कदाचिदयमनार्यो दुःशासन इवास्मिन्नप्यनार्यमाचरिष्यति ।’ इत्यरिकृता भीतिरुद्वेगः ॥

अथ संभ्रमः—

शङ्कात्रासौ च संभ्रमः ।

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १४१)—‘विदूषकः—(पश्यन् ।) कौ उण एसा । (संसंभ्रमम् ।) कथं देवी वासवदत्ता अत्ताणं वावादेदि । राजा—(संसंभ्रममुपसर्पन् ।) कासौ कासौ ।’ इत्यनेन वासवदत्ताबुद्धिगृहीतायाः सागरिकाया मरणाशङ्कया संभ्रम इति ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० ९३)—‘(नेपथ्ये कलकलः ।) अश्वत्थामा—(संसंभ्रमम् ।) मातुल मातुल, कष्टम् । एष भ्रातुः प्रतिज्ञाभङ्गभीरुः किरीटी समं शरवर्षैर्दुर्योधनराधेयावभिद्रवति । सर्वथा पीतं शोणितं दुःशासनस्य भीमेन ।’ इति शङ्का । तथा ‘(प्रविश्य संभ्रान्तः सप्रहारः) सूतः—त्रायतां त्रायतां कुमारः ।’ इति त्रासः । इत्येताभ्यां त्रासशङ्काभ्यां दुःशासनेनोपवधसूचकाभ्यां पाण्डवविजयप्राप्त्याशान्वितः संभ्रम इति ॥

अथाक्षेपः—

गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः ॥ ४२ ॥

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १३९)—‘राजा—वयस्य, देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि ।’ पुनः क्रमान्तरे (पृ० १४८) ‘सर्वथा देवीप्रसादनं प्रति निष्प्रत्याशीभूताः स्मः ।’ पुनः (पृ० १५०) ‘तत्किमिह स्थितेन देवीमेव गत्वा प्रसादयामि ।’ इत्यनेन देवीप्रसादायत्ता सागरिकासमागमसिद्धिरिति गर्भबीजोद्भेदादाक्षेपः ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० १०३)—‘सुन्दरकः—अहवा किमेत्थ देव्वं उआलहामि । तस्स कखु एदं णिब्भच्छिदविदुरवअणवीअस्स परिभूदपिदामहहिदोवदेस-

१ ‘कथमकृतपुण्यैरात्मन इच्छया मर्तुमपि न पार्यते ।’ इति च्छाया. २ ‘का पुनरेषा । कथं देवी वासवदत्तात्मानं व्यापादयति ।’ इति च्छाया. ३ ‘अथवा किमत्र दैवमुपालभामि । तस्य खल्वेतन्निर्मित्सितविदुरवचनबीजस्य परिभूतपितामहहितोपदेशाङ्कुरस्य शकुनिप्रोत्साहनारूढमूलस्य कूटविषशाखिनः प्राञ्चालीकेशग्रहणकुसुमस्य फलं परिणमति ।’ इति च्छाया.

कुरस्स सडणिप्पोच्छाहणारूढमूलस्स कूडविससाहिणो पंचालीकेसग्गहणकुसु-
मस्स फलं परिणमेदि ।' इत्यनेन बीजमेव फलोन्मुखतयाक्षिप्यत इत्याक्षेपः ।

एतानि द्वादश गर्भाङ्गानि प्राप्त्याशाप्रदर्शकत्वेनोपनिबन्धनीयानि । एषां च
मध्येऽभूताहरणमार्गतोटकधिवलाक्षेपाणां प्राधान्यम् । इतरेषां यथासंभवं प्रयोग
इति साङ्गो गर्भसंधिरुक्तः ।

अथावमर्शः—

क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् ।

गर्भनिर्मिन्नबीजार्थः सोऽवमर्शोऽङ्गसंग्रहः ॥ ४३ ॥

अवमर्शनमवमर्शः पर्यालोचनम् । तच्च क्रोधेन वा व्यसनाद्वा विलोभनेन वा
भवितव्यम् । अनेनार्थेनेत्यवधारितैकान्तफलप्राप्त्यवसायात्मा गर्भसंध्युद्भिन्नबीजार्थ-
संबन्धो विमर्शोऽवमर्शः । यथा रत्नावल्यां चतुर्थेऽङ्के (पृ० १८६) अभिविद्रव-
पर्यन्तो वासवदत्ताप्रसक्त्या निरपायरत्नावलीप्राप्त्यवसायात्मा विमर्शो दर्शितः ।

यथा च वेणीसंहारे (६।१) दुर्योधनरुधिराक्तभीमसेनागमपर्यन्तः—

‘तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते

कर्णाशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्येऽपि याते दिवम् ।

भीमेन प्रियसाहसेन रभसादल्पावशेषे जये

सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः ॥’

इत्यत्र ‘स्वल्पावशेषे जये’ इत्यादिभिर्विजयप्रत्यर्थिसमस्तभीष्मादिमहारथिवधा-
वधारितैकान्तविजयावमर्शनादवमर्शनं दर्शितमित्यवमर्शसंधिः ।

तस्याङ्गसंग्रहमाह—

— तत्रापवादसंफेटौ विद्रवद्रवशक्तयः ।

द्युतिः प्रसङ्गश्छलनं व्यवसायो विरोधनम् ॥ ४४ ॥

प्ररोचना विचलनमादानं च त्रयोदश ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

दोषप्रख्यापवादः स्यात्

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १५३)—‘सुसङ्गता—सा खु तवस्सिणी भट्टिणीए
उज्जङ्गिणी अदित्ति पवादं करिअ उवत्थिदे अद्धरत्ते ण जाणीअदि कहिं पि
णीदेत्ति । विद्रूपकः—(सोद्देगम्) अदिणिग्घिणं कखु किदं देवीए ।’ पुनः ।
(पृ० १६२) ‘भो वअस्स, मा खु अण्णधा संभावेहि । सा खु देवीए उज्जङ्गिणीए
पेसिदा । अदो अप्पिअं ति कहिदं । राजा—अहो निरनुरोधा मयि
देवी ।’ इत्यनेन वासवदत्तादोषप्रख्यापनादपवादः ।

१ ‘सोऽवमर्श इति स्मृतः’ इति पाठः. २ ‘सा खलु तपस्विनी भट्टिन्योज्ज-
यिनीं नीयत इति प्रवादं कृत्वोपस्थितेऽर्धरात्रे न ज्ञायते कुत्रापि नीतेति ।’ इति च्छाया.
३ ‘अतिनिर्घृणं खलु कृतं देव्या ।’ इति च्छाया. ४ ‘भो वयस्य, मा खल्वन्यथा
संभावय । सा खलु देव्योज्जयिन्यां प्रेषिता । अतोऽप्रियमिति कथितम् ।’ इति च्छाया.

यथा च वेणीसंहारे (पृ० १५७)—‘युधिष्ठिरः—पाञ्चालक, कच्चिदासादिता तस्य दुरात्मनः कौरवापसदस्य पदवी? पाञ्चालकः—न केवलं पदवी । स एव दुरात्मा देवीकेशपाशस्पर्शपातकप्रधानहेतुरूपलब्धः ।’ इति दुर्योधनस्य दोषप्रख्यापनादपवाद इति ।

अथ संफेदः—

संफेटो रोषभाषणम् ।

यथा वेणीसंहारे (पृ० १६५)—‘भो कौरवराज, कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना । मैवं विषादं कृथाः । पर्याप्ताः पाण्डवाः समरायाहमसहाय इति ।

पद्मानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन ।

दंशितस्यात्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥ (६१०)

इत्थं श्रुत्वाऽसूयात्मिकां निक्षिप्य कुमारयोर्दिष्टमुक्तवान्धार्तराष्ट्रः—

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम ।

अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥ (६११)

इत्युत्थाय च परस्परक्रोधाधिक्येपरुषवाक्कलहप्रस्तावितघोरसंग्रामौ—’ इत्यनेन भीमदुर्योधनयोरन्योन्यरोषसंभाषणाद्विजयवीजान्वयेन संफेद इति ।

अथ विद्रवः—

विद्रवो वधबन्धादिर्

यथा छलितरामे—

येनावृत्य मुखानि साम पठतामत्यन्तमायासितं

बाल्ये येन हृताक्षसूत्रवलयप्रत्यर्पणैः क्रीडितम् ।

युष्माकं हृदयं स एष विशिखैरापूरितांसस्थलो

मूर्च्छाघोरतमःप्रवेशविवशो बद्धा लवो नीयते ॥’

यथा च रत्नावल्याम् (४११४)—

‘हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव शिखरैरर्विषामादधानः

सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।

कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै-

रेष श्लोषार्थयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तःपुरेऽग्निः ॥’

इत्यादि । पुनः (पृ० १८४) ‘वासवदत्ता—अज्जउत्त, ण क्खु अहं अत्तणो कारणादो भणामि । एसा मए णिग्घिण्हिअआए संजदा सागरिआ विवज्जदि ।’ इत्यनेन सागरिकावधबन्धाग्निभिर्विद्रव इति ।

अथ द्रवः—

द्रवो गुरुतिरस्कृतिः ॥ ४५ ॥

१ ‘आर्यपुत्र, न खल्वहमात्मनः कारणाङ्गणामि । एषा मया निर्घृणहृदयया संयता सागरिका विपद्यते ।’ इति च्छाया.

यथोत्तरचरिते (५१३४)—

‘वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तते
सुन्दर्यादमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते ।
यानि त्रीण्यकुतोमुखान्यपि पदान्यासन्वरायोधने
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥’

इत्यनेन लवो रामस्य गुरोस्तिरस्कारं कृतवानिति द्रवः ।

यथा च वेणीसंहारे (६१२०)—‘युधिष्ठिरः—भगवन् कृष्णाग्रज सुभद्राभ्रातः,

ज्ञातिप्रीतिर्मेनसि न कृता क्षत्रियाणां न धर्मो
रूढं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यार्जुनेन ।
तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः
कोऽयं पन्था यदसि विगुणो मन्दभाग्ये मयीत्थम् ॥’

इत्यादिना बलभद्रं गुरुं युधिष्ठिरस्तिरस्कृतवानिति द्रवः ।

अथ शक्तिः—

विरोधशमनं शक्तिसू

यथा रत्नावल्याम् (४११)—‘राजा—

सव्याजैः शपथैः प्रियेण वचसा चित्तानुवृत्त्याधिकं
वैलक्ष्येण परेण पादपतनैर्वाक्यैः सखीनां मुहुः ।
प्रत्यासत्तिमुपागता न हि तथा देवी रुदत्या यथा
प्रक्षाल्येव तथैव बाष्पसलिलैः कोपोऽपनीतः स्वयम् ॥’

इत्यनेन सागरिकालाभविरोधिवासवदत्ताकोपोपशमनात् शक्तिः ।

यथा चोत्तरचरिते (६१११) लवः प्राह—

‘विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृतिघन-
स्तदौद्धत्यं कापि व्रजति विनयः प्रह्वयति माम् ।
झटित्यस्मिन्दृष्टे किमपि परवानस्मि यदि वा
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ॥’

अथ द्युतिः—

तर्जनोद्वेजने द्युतिः ।

यथा वेणीसंहारे (पृ० १६१)—‘एतच्च वचनमुपश्रुत्य रामानुजस्य सकलनिकुञ्ज-
पूरिताशातिरिक्तमुद्भ्रान्तसलिलचरशतसंकुलं त्रासोद्वृत्तनक्राहमालोद्भ्य सरःसलिलं
भैरवं च गर्जित्वा कुमारवृकोदरेणाभिहितम्,—

जन्मेन्दोरमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां

मां दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबं रिपुं भाषसे ।

दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे

मन्नासान्नपशो विहाय समरं पङ्केऽधुना लीयसे ॥’ (६१७)

इत्यादिना 'त्यक्त्वोत्थितः सरभसम्' इत्यनेन दुर्वचनजलावलोडनाभ्यां दुर्यो-
धनतर्जनोद्वेजनकारिभ्यां पाण्डवविजयानुकूलदुर्योधनोत्थापनहेतुभ्यां भीमस्य
द्युतिरुक्ता ।

अथ प्रसङ्गः—

गुरुकीर्तनं प्रसङ्गश्च

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १८०)—'देव, यासौ सिंहलेश्वरेण खडुहिता रत्नावली
नामायुष्मती वासवदत्तां दग्धामुपश्रुत्य देवाय पूर्वप्रार्थिता सती प्रतिदत्ता ।'
इत्यनेन रत्नावल्या लाभानुकूलाभिजनप्रकाशिना प्रसङ्गाद्गुरुकीर्तनेन प्रसङ्गः ।

तथा मृच्छकटिकायाम् (पृ० २२९)—'चाण्डालकः—'एष सागरदत्तस्स
सुओ अजविणअदत्तस्स णत्तू चालुदत्तो वावादिदुं वज्झट्ठाणं णीअदि । एदेण
किल गणिआ वसंतसेणा सुवण्णलोभेण वावादित्ति । चारुदत्तः—

मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं यत्सदसि निबिडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।

मम निधनदशायां वर्तमानस्य पापैस्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम् ॥'

(मृच्छ० १०।१२)

इत्यनेन चारुदत्तवधाभ्युदयानुकूलं प्रसङ्गाद्गुरुकीर्तनमिति प्रसङ्गः ।

अथ छलनम्—

छलनं चावमाननम् ॥ ४६ ॥

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १६२)—'राजा—अहो निरनुरोधा मयि देवी ।'
इत्यनेन वासवदत्तयेष्टासंपादनाद्वत्सराजस्यावमाननात् छलनम् ।

यथा च रामाभ्युदये सीतायाः परित्यागेनावमाननात् छलनमिति ।

अथ व्यवसायः—

व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः

यथा रत्नावल्याम् (४।८)—'ऐन्द्रजालिकः—

किं धरणीए मिअंको आआसे महिहरो जले जलणो ।

मज्झण्हंमि पओसो दाविज्जउ जेहि आणत्ति ॥

अह्वा किं बहुणा जंपिण्ण,—

मज्झ पइण्णा एसा भणामि हिअएण जं महसि दहुं ।

तं वे दावेमि फुडं गुरुणो मंतप्पहावेण ॥' ((रत्ना० ४।९)

इत्यनेनैन्द्रजालिको मिथ्यामिसंभ्रमोत्थापनेन वत्सराजस्य हृदयस्थसागरिकादर्शना-
नुकूलं स्वशक्तिमाविष्कृतवान् ।

१ 'एष सागरदत्तस्य सुत आर्यविनयदत्तस्य नप्ता चारुदत्तो व्यापादयितुं वध्य-
स्थानं नीयते । एनेन किल गणिका वसन्तसेना सुवर्णलोभेन व्यापादितेति ।' इति
च्छाया. २ 'किं धरण्यां मृगाङ्ग आकाशे महीधरो जले ज्वलनः । मध्याह्ने प्रदोषो
दर्शयतां देह्नाशसिम् ॥ अथवा किं बहुना जल्पितेन । मम प्रतिज्ञैषा भणामि हृदयेन
यद्वाञ्छसि द्रष्टुम् । तत्ते दर्शयामि स्फुटं गुरोर्मन्त्रप्रभावेण ॥' इति च्छाया.

यथा च वेणीसंहारे (६।६)—

‘नूनं तेनाद्य वीरेण प्रतिज्ञामङ्गभीरुणा ।

वध्यते केशपाशस्ते स चास्याकर्पणे क्षमः ॥’

इत्यनेन युधिष्ठिरः स्वदण्डशक्तिमाविष्करोति ।

अथ विरोधनम्—

संरब्धानां विरोधनम् ।

यथा वेणीसंहारे—(पृ० १४७) ‘राजा—रे रे मरुत्तनय, किमेवं वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निन्दितव्यमात्मकर्म श्लाघसे ? अपि च,—

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा

प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी ।

अस्मिन्वैरानुबन्धे तव किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा

बाहोर्वीर्यातिसारद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः ॥ (वे० सं० ५।३०)

(सीमः क्रोधं नाटयति ।) अर्जुनः—आर्य, प्रसीद । किमत्र क्रोधेन ।

अग्निघ्राणि करोत्येव वाचा शक्तो न कर्मणा ।

हतभ्रातृघातो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥ (वे० सं० ५।३१)

भीमः—अरे भरतकुलकलङ्क,—

अद्यैव किं न विसृजेयमहं भवन्तं दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन् ।

विघ्नं गुरु न कुरुतो यदि मत्कराग्रनिर्भिद्यमानरणितास्थनि ते शरीरे ॥

(वे० सं० ५।३२)

अन्यच्च मूढ,—

शोकं स्त्रीवन्नयनसलिलैर्यत्परित्याजितोऽसि

भ्रातुर्वक्षःस्थलविदलने यच्च साक्षीकृतोऽसि ।

आसीदेतत्तव कुट्टपतेः कारणं जीवितस्य

क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने ॥ (वे० सं० ५।३३)

राजा—दुरात्मन् भरतकुलापसद पाण्डवपशो, नाहं भवानिव विकत्थनाप्रगल्भः ।

किंतु,—

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।

मद्रदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभङ्गभीषणम् ॥’ (वे० सं० ५।३४)

इत्यादिना संरब्धयोर्भीमदुर्योधनयोः स्वशक्तयुक्तिर्विरोधनमिति ।

अथ प्ररोचना—

सिद्धामन्त्रणतो भाविदर्शिका स्यात्प्ररोचना ॥ ४७ ॥

यथा वेणीसंहारे (पृ० १६५)—‘पाञ्चालकः—अहं च देवेन चक्र-
पाणिना’ इत्युपक्रम्य ‘कृतं संदेहेन,—

१ ‘संरम्भोक्तिः’ इति पाठः. २ ‘अत्रैव’ इति पाठः.

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते
 कृष्णाल्यन्तचिरोज्झिते च कवरीबन्धे करोतु क्षणम् ।
 रामे शातकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि
 क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतलाजौ कुतः संशयः ॥

(वे० सं० ६।१२)

इत्यादिना 'मङ्गलानि कर्तुमाज्ञापयति देवो मुधिष्ठिरः ।' (पृ० १६७) इत्यन्तेन
 द्रौपदीकेशसंयमनमुधिष्ठिरराज्याभिषेकयोर्भावनोरपि सिद्धत्वेन दर्शिका प्ररोचनेति ।

अथ विचलनम्—

विकथना विचलनम्

यथा वेणीसंहारे (५।२७)—'भीमः—तात, अम्ब,—
 सकलरिपुजयाशा यत्र वद्धा सुतैस्ते तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।
 रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य प्रणमति पितरौ वां मय्यमः पाण्डवोऽयम् ॥
 अपि च । तात,—

चूणिताशेषकौरव्यः क्षीवो दुःशासनासृजा ।

भङ्गा सुयोधनस्योर्वोर्भीमोऽयं शिरसाञ्चति ॥' (वे० सं० ५।२८)

इत्यनेन विजयवीजानुगतस्वगुणाविष्करणाद्विचलनमिति ।

यथा च रत्नावल्याम् (४।१९)—'यौगंधरायणः—

देव्या मद्वचनाद्यथाभ्युपगतः पत्युर्वियोगस्तदा

सा देवस्य कलत्रसंघटनया दुःखं मया स्थापिता ।

तस्याः प्रीतिमयं करिष्यति जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः

सत्वं दर्शयितुं तथापि वदनं शक्नोमि नो लज्जया ॥'

इत्यनेनान्यपरेणापि यौगंधरायणेन मया जगत्स्वामित्वानुबन्धी कन्यालाभो वत्स-
 राजस्य कृतः । इति स्वगुणानुकीर्तनाद्विचलनमिति ।

अथादानम्—

आदानं कार्यसंग्रहः ।

यथा वेणीसंहारे—'भीमः—ननु भोः समन्तपञ्चकसंचारिणः,—

रक्षो नाहं न भूतं रिपुरुधिरजलाप्लाविताङ्गः प्रकामं

निस्तीर्णोऽप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि ।

भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतं व-

स्नात्तेनानेन लीनेर्हृतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ॥' (वे० सं० ६।३७)

इत्यनेन समस्तरिपुवधकार्यस्य संगृहीतत्वादादानम् ।

यथा च रत्नावल्याम् (पृ० १८७)—'सागरिका—(दिशोऽवलोक्य ।)

दिट्ठिआ समंतादो पज्जलिदो भअवं हुअवहो, अज्ज करिस्सदि दुक्खावसाणं ।' इत्य-

१ 'दिष्ट्या समन्तात्प्रज्वलितो भगवान्दुतवहोऽद्य करिष्यति दुःखावसानम् ।' इति
 च्छाया.

नेनान्यपरेणापि दुःखावसानकार्यस्य संग्रहादादानम् । यथा च 'जगत्स्वामिखलाभः प्रभोः' (४१९) इति दर्शितमेवम् । इत्येतानि त्रयोदशावमर्शाङ्गानि । तत्रैतेषामपवादशक्तिव्यवसायप्ररोचनादानानि प्रधानानीति ।

अथ निर्वहणसंधिः—

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ॥ ४८ ॥

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ।

यथा वेणीसंहारे (पृ० १९७)—'कञ्जुकी—(उपमूल सहर्षम् ।) महा-
राज, वर्धसे वर्धसे । अयं खलु कुमारमीमसेनः सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीरो
दुर्लक्षव्यक्तिः ।' इत्यादिना द्रौपदीकेशसंयमनादिमुखसंख्यादिबीजानां निजनिजस्था-
नोपक्षिप्तानानेकार्थतया योजनम् ।

यथा च रत्नावल्यां (पृ० १७७) सागरिकरत्नावलीवसुभूतिवाभ्रव्यादीनामर्थानां
मुखसंख्यादिषु प्रकीर्णानां वत्सराजैककार्यार्थत्वम् । 'वसुभूतिः—(सागरिकां निर्वे-
र्ण्यपवार्य ।) वाभ्रव्य, सुसदृशीयं राजपुत्र्या ।' इत्यादिना दर्शितमिति निर्वहणसंधिः ।

अथ तदङ्गानि—

संधिर्विवोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणम् ॥ ४९ ॥

प्रसादानन्दसमयाः कृतिभाषोपगूहनाः ।

पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश ॥ ५० ॥

यथोद्देशं लक्षणमाह—

संधिर्वीजोपगमनं

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १७७)—'वसुभूतिः—वाभ्रव्य, सुसदृशीयं
राजपुत्र्या । वाभ्रव्यः—ममाय्वमेव प्रतिभाति ।' इत्यनेन नायिकाबीजोपगमात्
संधिरिति ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० २०१)—'भीमः—भवति यज्ञवेदिसंभवे, स्मरति
भवती यत्तन्मयोक्तम्,—

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसंचूर्णितोर्युगलस्य सुयोधनस्य ।

स्त्यानाववद्वघ्नशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥'

(वे० सं० १।२१)

इत्यनेन मुखोपक्षितस्य बीजस्य पुनरुपगमात् संधिरिति ।

अथ विवोधः—

विवोधः कार्यमार्गणम् ।

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १९०)—'वसुभूतिः (निरूप्य ।) देव, कुत इयं
कन्यका ? राजा—देवी जानाति । वासवदत्ता—अजउत्त, एसा सागरादो

१ 'आर्यपुत्र, एषा सागरात्प्राप्तेति भणित्वामात्ययौगंधरायणेन मम हस्ते निहिता,
अत एव सागरिकेति शब्दते ।' इति च्छाया.

पाविअत्ति भणिअ अमच्चजोगंधराअणेण मम हत्थे निहिदा । अदो जेव सागरि-
अत्ति सहावीअदि । **राजा**—(आत्मगतम् ।) यौगंधरायणेन न्यस्ता । कथमसौ
ममानिवेद्य करिष्यति ।’ इत्यनेन रत्नावलीलक्षणकार्यान्वेषणाद्विवोधः ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० २००)—**भीमः**—मुञ्चतु मुञ्चतु मामार्यः क्षण-
मेकम् । **युधिष्ठिरः**—किमपरमवशिष्टम् ? **भीमः**—सुमहदवशिष्टम् । संयम-
यामि तावदनेन दुःशासनशोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केश-
हस्तम् । **युधिष्ठिरः**—गच्छतु भवान् । अनुभवतु तपस्विनी वेणीसंहारम् ।’
इत्यनेन केशसंयमनकार्यान्वेषणाद्विवोध इति ।

अथ ग्रथनम्—

ग्रथनं तदुपक्षेपो

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १९५)—**यौगंधरायणः**—देव, क्षम्यतां यदे-
वस्यानिवेद्य मयैतत्कृतम् ।’ इत्यनेन वत्सराजस्य रत्नावलीप्रापणकार्योपक्षेपाद्ग्रथनम् ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० १९६)—**भीमः**—पाञ्चालि, न खलु मयि जावति
संहर्तव्या दुःशासनविलुलिता वेणिरात्मपाणिना । तिष्ठतु तिष्ठतु । स्वयमेवाहं संह-
रामि ।’ इत्यनेन द्रौपदीकेशसंयमनकार्यस्योपक्षेपाद्ग्रथनम् ।

अथ निर्णयः—

ऽनुभूताख्या तु निर्णयः ॥ ५१ ॥

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १९५)—**यौगंधरायणः**—(कृताञ्जलिः ।) देव,
श्रूयताम् । इयं सिंहलेश्वरदुहिता सिद्धादेशेनोपदिष्टा, योऽस्याः पाणिं ग्रहीष्यति स
सार्वभौमो राजा भविष्यति । तत्प्रत्ययादस्माभिः स्वाम्यर्थे बहुशः प्रार्थ्यमानापि
सिंहलेश्वरेण देव्या वासवदत्तायाश्चित्तखेदं परिहरता यदा न दत्ता, तदा लावणिके
देवी दग्धेति प्रसिद्धिमुत्पाद्य तदन्तिकं वाभ्रव्यः प्रहितः ।’ इत्यनेन यौगंधरायणः
स्वानुभूतमर्थं ख्यापितवानिति निर्णयः ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० १९८)—**भीमः**—देव देव अजातशत्रो,
काद्यापि दुर्योधनहतकः । मया हि तस्य दुरात्मनः,—

भूमौ क्षिप्त्वा शरीरं निहितमिदमसृक्चन्दनाभं निजाङ्गे
लक्ष्मीरार्ये निषिक्त्वा चतुरुदधिपयःसीमया सार्धमुर्व्या ।

भृत्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणाग्नौ

नामैकं यद्वीथि क्षितिप तदधुना धार्तराष्ट्रस्य शेषम् ॥’

(वे० सं० ६।३९)

इत्यनेन स्वानुभूतार्थकथनान्निर्णय इति ।

अथ परिभाषणम्—

परिभाषा मिथो जल्पः

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १९३)—**रत्नावली**—(आत्मगतम् ।) केआवराहा

१. ‘कृतापराधा देव्या न शक्नोमि मुखं दर्शयितुम्’ इति च्छाया.

देवीए ण सकुणोमि मुहं दंसिदुं । वासवदत्ता—(सासम् । पुनर्वाहू प्रसार्य ।)
एहि अयि णिष्ठुरे, इदानीं पि बन्धुसिणेहं दंसेहि । (अपवार्य) अजउत्त, लज्जामि
क्खु अहं इमिणा णिसंसत्तणेण । ता लहुं अवणेहि से बंधणं । राजा—
यथाह देवी । (बन्धनमपनयति ।) वासवदत्ता—(वसुभूतिं निर्दिश्य ।) अज,
अमच्चयोगंधरायणेण दुज्जणीकदम्हि जेण जाणंतेण वि णाचक्खिदं ।' इत्यनेनान्यो-
न्यवचनात् परिभाषणम् ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० २००)—‘भीमः—कृष्टा येनासि राज्ञां सदस्ति
चपयुना तेन दुःशासनेन ।’ इत्यादिना ‘क्वासौ भानुमती नोपहसति पाण्डवदारान् ।’
(पृ० २०१) इत्यन्तेन भाषणात् परिभाषणम् ।

अथ प्रसादः—

प्रसादः पर्युपासनम् ।

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १९५)—‘देव, क्षम्यताम् ।’ इत्यादि दर्शितम् ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० २००)—‘भीमः—(द्रौपदीमुपसृत्य ।) देवि
पान्द्रालराजतनये, दिष्ट्वा वर्धसे रिपुकुलक्षयेण ।’ इत्यनेन द्रौपद्या भीमसेनेनाराधि-
तत्वात् प्रसाद इति ।

अथानन्दः—

आनन्दो वाञ्छितावाप्तिः

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १९३)—‘राजा—यथाह देवी ।’ (रत्नावलीं
गृह्णाति ।)

यथा च वेणीसंहारे (पृ० २०२)—‘द्रौपदी—गौध, विसुमरिदम्हि एदं
वावारं । गाधस्स पसादेण पुणो सिक्खिस्सं । (केशान्वध्नाति ।)’ इत्याभ्यां
प्रार्थितरत्नावलीप्राप्तिकेशसंयमनयोर्वत्सराजद्रौपदीभ्यां प्राप्तत्वादानन्दः ।

अथ समयः—

समयो दुःखनिर्गमः ॥ ५२ ॥

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १९२)—‘वासवदत्ता—(रत्नावलीमालिङ्ग्य ।)
सँमस्सस समस्सस वहिणिए ।’ इत्यनेन भगिन्योरन्योन्यसमागमेन दुःखनिर्गमान्
समयः ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० २०२)—‘भगवन्, कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य
भगवान्पुराणपुरुषः स्वयमेव नारायणो मङ्गलान्याशास्ते ।

१ ‘एहि अयि णिष्ठुरे, इदानीमपि बन्धुस्त्रेहं दर्शय । आर्यपुत्र, लज्जे खल्वहमनेन
नृशंसत्वेन । तल्लवपनयास्या बन्धनम् ।’ इति च्छाया. २ ‘आर्य, अमाल्ययौगंधरायणेन
दुर्जनीकृतास्मि येन जानतापि नाचक्षितम् ।’ इति च्छाया. ३ ‘नाथ, विसृतास्म्येतं
व्यापारम् । नाथस्य प्रसादेन पुनः शिक्षिष्यामि ।’ इति च्छाया. ४ ‘समाश्वसिहि
समाश्वसिहि भगिनिके ।’ इति च्छाया.

कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिं गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।
अजमरमचिन्त्यं चिन्तयित्वापि न त्वां भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ॥’
(वे० सं० ६।४३) इत्यनेन युधिष्ठिरदुःखापगमं दर्शयति ।

अथ कृतिः—

कृतिर्लब्धार्थशमनं

यथा रत्नावल्याम् (पृ० १९८)—‘**राजा**—को देव्याः प्रसादं न बहु मन्यते ।
वासवदत्ता—अजउत्त, दूरे से माहुडलं । ता तथा करेसु जधा वंधुअणं न
सुमरेदि ।’ इत्यन्योन्यवचसा लब्धार्थां रत्नावल्यां राज्ञः सुश्लिष्टये उपशमनात्
कृतिरिति ।

यथा च वेणीसंहारे (पृ० २०४)—‘**कृष्णः**—एते खलु भगवन्तो व्यास-
वाल्मीकि—’ इत्यादिना ‘अभिषेकमारब्धवन्तस्तिष्ठन्ति ।’ इत्यनेन प्राप्तराज्यस्याभि-
षेकमङ्गलैः स्थिरीकरणं कृतिः ।

अथ भाषणम्—

मानाद्याप्तिश्च भाषणम् ।

यथा रत्नावल्याम् (पृ० २००)—‘**राजा**—अतःपरमपि प्रियमस्ति ।

यौतो विक्रमबाहुरात्मसमतां प्राप्तेयमुवांतले

सारं सागरिका ससागरमहीप्राप्त्येकहेतुः प्रिया ।

देवी प्रीतिमुपागता च भगिनीलाभाजिताः क्रोशलाः

किं नास्ति त्वयि सत्यमात्यवृषभे यस्मै करोमि स्पृहाम् ॥’ (रत्ना० ४।२०)

इत्यनेन कामार्थमानादिलाभाद्भाषणमिति ।

अथ पूर्वभावोपगूहने—

कार्यदृष्ट्यद्भुतप्राप्ती पूर्वभावोपगूहने ॥ ५३ ॥

कार्यदर्शनं=पूर्वभावः । यथा रत्नावल्याम् (पृ० १९८)—‘**यौगंधरायणः**—
एवं विज्ञाय भगिन्याः संप्रति करणीये देवी प्रमाणम् । **वासवदत्ता**—कुंडं जेव
किं ण भणसि ? पडिवाएहि से रअणमालं ति ।’ इत्यनेन ‘वत्सराजाय रत्नावली
दीयताम् ।’ इति कार्यस्य यौगंधरायणाभिप्रायानुप्रविष्टस्य वासवदत्तया दर्शनात्
पूर्वभाव इति ।

अद्भुतप्राप्तिः=उपगूहनम् । यथा वेणीसंहारे (पृ० २०२)—‘(नेपथ्ये ।)
महासमरानलदग्धशेषाय स्वस्ति भवते राजन्यलोकाय,—

क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि

प्रत्याशं मुक्तकेशान्यनुदिनमधुना पार्थिवान्तःपुराणि ।

१ ‘आर्यपुत्र, दूरेऽस्या मातृकुलम् । तत्तथा कुरुष्व यथा बन्धुजनं न सरति ।’ इति
च्छाया. २ ‘नीतः’ इति पाठः । ३ ‘स्फुटमेव किं न भणसि ? प्रतिपादयास्यै रत्नमा-
लाम् ।’ इति च्छाया.

कृष्णायाः केशपाशः कृपितयमसखो धूमकेतुः कुरुणां

दिष्ट्या वद्धः प्रजानां विरननु निधनं खस्ति राजन्यकेभ्यः ॥

(वे० सं० ६।४२)

युधिष्ठिरः—देवि, एष ते मूर्धजानां संहारोऽभिनन्दितो नभस्तलचारिणा सिद्धजनेन ।^१ इत्येतेनाहुतार्थप्राप्तिरुपगूह्यमिति । लब्धार्थशमनात् कृतिरपि भवति ।

अथ काव्यसंहारः—

वराप्तिः काव्यसंहारः

यथा—‘किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ?’ (वे० सं० पृ० २०५) इत्यनेन काव्यार्थसंहारणात् काव्यसंहार इति ।

अथ प्रशस्तिः—

प्रशस्तिः शुभशंसनम् ।

यथा वेणीसंहारे (पृ० २०६)—‘प्रीततरश्चेद्भवान्, तदिदमेवमस्तु,—

अंकुषणमतिः कामं जीव्याजनः पुरुषायुषं

भवतु भगवन् भर्त्तिद्वैतं विना पुरुषोत्तमे ।

कलितभुवनो विद्वद्भ्युर्गुणेषु विशेषवि-

त्सततसुकृती भूयाद्भूपः प्रसाधितमण्डलः ॥’ (वे० सं० ६।४६)

इति शुभशंसनात् प्रशस्तिः । इत्येतानि चतुर्दश निर्वहणाङ्गानि । एवं चतुःषष्ट्यङ्ग-
समन्विताः पञ्चसंध्यः प्रतिपादिताः ।

षट्प्रकारं चाङ्गानां प्रयोजनमित्याह—

उक्ताङ्गानां चतुःषष्टिः षोढा चैषां प्रयोजनम् ॥ ५४ ॥

कानि पुनस्तानि षट्प्रयोजनानि,—

इष्टस्यार्थस्य रचना गोप्यगुप्तिः प्रकाशनम् ।

रागः प्रयोगस्याश्चर्यं वृत्तान्तस्यानुपक्षयः ॥ ५५ ॥

विवक्षितार्थनिबन्धनं गोप्यार्थगोपनं प्रकाशार्थप्रकाशनमभिनेयरागवृद्धिश्चम-
न्कारित्वं च काव्यस्येतिवृत्तस्य विस्तर इत्यङ्गैः षट्प्रयोजनानि संपाद्यन्त इति ।

पुनर्वस्तुविभागमाह—

द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः ।

सूच्यमेव भवेत्किञ्चिद्दृश्यश्रव्यमथापरम् ॥ ५६ ॥

कीदृक्सूच्यं, कीदृग्दृश्यश्रव्यमित्याह—

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः ।

दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः ॥ ५७ ॥

सूच्यस्य प्रतिपादनप्रकारमाह—

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।

विष्कम्भचूलिकाङ्गास्याङ्गावतारप्रवेशकैः ॥ ५८ ॥

तत्र विष्कम्भः—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।

संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥ ५९ ॥

अतीतानां भाविनां च कथावयवानां ज्ञापको मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां प्रयोजितो विष्कम्भक इति ।

स द्विविधः—शुद्धः, संकीर्णश्चेत्याह—

एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः ।

एकेन द्वाभ्यां वा मध्यमपात्राभ्यां शुद्धो भवति । मध्यमाधमपात्रैर्युगपत्प्रयोजितः संकीर्ण इति ।

अथ प्रवेशकः—

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ॥ ६० ॥

प्रवेशोऽङ्गद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ।

तद्वदेवेति भूतभविष्यदर्थज्ञापकत्वमिति दिश्यते । अनुदात्तोक्त्या नीचेन नीचैर्वा पात्रैः प्रयोजित इति विष्कम्भलक्षणापवादः । अङ्गद्वयस्यान्ते इति प्रथमाङ्के प्रतिषेध इति ।

अथ चूलिका—

अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना ॥ ६१ ॥

नेपथ्यपात्रेणार्थसूचनं=चूलिका । यथोत्तरचरिते द्वितीयाङ्कस्यादौ (पृ० ५१)—‘(नेपथ्ये ।) स्वागतं तपोधनायाः । (ततः प्रविशति तपोधना ।)’ इति नेपथ्यपात्रेण वासन्तिकयात्रेयिसूचनात् चूलिका ।

यथा वा वीरचरिते चतुर्थाङ्कस्यादौ (पृ० ११७) ‘(नेपथ्ये ।) भो भो वैमानिकाः, प्रवर्त्यन्तां प्रवर्त्यन्तां मङ्गलानि,—

ऋशाश्वान्तेवासी जयति भगवान्कौशिकमुनिः

सहस्रांशोर्वशे जगति विजयि क्षत्रमधुना ।

विनेता क्षत्रारेर्जगदभयदानव्रतधरः

शरण्यो लोकानां दिनकरकुलेन्दुर्विजयते ॥’ (वीर० ४११)

इत्यत्र नेपथ्यपात्रैर्देवै रामेण परशुरामो जित इति सूचनात् चूलिका ।

अथाङ्गास्यम्—

अङ्कान्तपात्रैरङ्गास्यं छिन्नाङ्गस्यार्थसूचनात् ।

अङ्कान्त एव पात्रमङ्कान्तपात्रम् । तेन विच्छिष्टस्योत्तराङ्कमुखस्य सूचनं तद्व-
शेनोत्तराङ्गावतारोऽङ्गास्यमिति । यथा वीरचरिते द्वितीयाङ्कान्ते (पृ० ८२)—

‘(प्रविश्य ।) सुमन्त्रः—भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ भवतः सभागवानाह्वयतः । इतरे—क भगवन्तौ ? सुमन्त्रः—महाराजदशरथस्यान्तिके । इतरे—तदनु-रोधात्तत्रैव गच्छामः ।’ इत्यङ्कसमाप्तौ ‘(ततः प्रविशन्त्युपविष्टा वसिष्ठविश्वामित्र-परशुरामाः ।)’ इत्यत्र पूर्वाङ्कान्त एव प्रविष्टेन सुमन्त्रपात्रेण शानानन्दजनककथार्थ-विच्छेद उत्तराङ्कमुखसूचनादङ्कास्यमिति ।

अथाङ्कावतारः—

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः ॥ ६२ ॥

एभिः संसूचयेत्सूच्यं दृश्यमङ्कैः प्रदर्शयेत् ।

यत्र प्रविष्टपात्रेण सूचितमेव पूर्वाङ्काविच्छिन्नार्थतयैवाङ्कान्तरमापतति प्रवेशक-विष्कम्भकादिशून्यं सोऽङ्कावतारः । यथा मालविकामित्रे प्रथमाङ्कान्ते (पृ० २१)—‘विदूषकः—तेर्णे हि दुवेवि देवीए पेक्खागेहं गडुअ संगीदोवअरणं अरिअ तत्थभवदो दूदं विसजेथ । अधवा मुदंगराहो जेव णं उत्थावयिस्सदि ।’ इत्युपक्रमे मृदङ्गशब्दश्रवणादनन्तरं सर्वाण्येव पात्राणि प्रथमाङ्कप्रक्रान्तपात्रसंक्रा-न्तिदर्शनं द्वितीयाङ्कादावारमन्त इति प्रथमाङ्कार्थाविच्छेदेनैव द्वितीयाङ्कस्यावत-रणादङ्कावतार इति ।

पुनस्त्रिधा वस्तुविभागमाह—

नाट्यधर्ममपेक्षयैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते ॥ ६३ ॥

केन प्रकारेण त्रैधं तदाह—

सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव च ।

तत्र,—

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम् ॥ ६४ ॥

सर्वश्राव्यं यद्वस्तु तत्प्रकाशमित्युच्यते । यत्तु सर्वस्याश्राव्यं तत्स्वगतमिति शब्दाभिधेयम् ।

नियतश्राव्यमाह—

द्विधान्यन्नाट्यधर्माख्यं जनान्तमपवारितम् ।

अन्यत्तु नियतश्राव्यं द्विप्रकारं जनान्तिकापवारितमेवेन ।

तत्र जनान्तिकमाह—

त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ॥ ६५ ॥

अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।

यस्य न श्राव्यं तस्यान्तर ऊर्ध्वसर्वाङ्गुलं वकानामिकत्रिपताकालक्षणं करं कृत्वान्येन सह यन्मन्त्रयते तज्जनान्तिकमिति ।

१ ‘पात्राङ्कस्य’ इति पाठः. २ ‘तेन हि द्वावपि देव्याः प्रेक्षागेहं गत्वा संगीतकोप-करणं कृत्वा तत्रभवतो दूतं विसर्जयतम् । अथवा मृदङ्गशब्द एवैनमुत्थापयिष्यति ।’ इति च्छाया.

अथापवारितम्—

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम् ॥ ६६ ॥

परावृत्त्यान्यस्य रहस्यकथनमपवारितमिति ।

नाट्यधर्मप्रसङ्गादाकाशभाषितमाह—

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।

श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥ ६७ ॥

स्पष्टार्थः ।

अन्यान्यपि नाट्यधर्माणि प्रथमकल्पादीनि कैश्चिदुदाहृतानि तेषामभारती-
शलाचाममालाप्रसिद्धानां केषांचिद्देशभाषात्मकत्वान्नाट्यधर्मत्वाभावाद्भक्षणं नोक्त-
मित्युपसंहरति—

इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजातं

रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथां च ।

आसूत्रयेत्तदनु नेतरसानुगुण्या-

चित्रां कथामुचितचारुवचःप्रपञ्चैः ॥ ६८ ॥

[वस्तुविभेदजातं—वस्तु=वर्णनीयं, तस्य विभेदजातं=नामभेदः । रामायणादि-
बृहत्कथां च गुणाढ्यनिर्मितां विभाव्य आलोच्य । तदनु एतदुत्तरम् । नेत्रिति ।
नेता वक्ष्यमाणलक्षणः, रसाश्च तेषामानुगुण्याचित्रां चित्ररूपां कथामाख्यायि-
काम् । चारुणि यानि वचांसि तेषां प्रपञ्चैर्विस्तारैरामसूत्रयेदनुप्रथयेत् । तत्र
बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम् (वृ० क० २।२१६)—

‘चाणक्यनाम्ना तेनाथ शकटालगृहे रहः ।

कृत्यां विधाय सहसा सपुत्रो निहतो नृपः ॥

योगानन्दयशःशेषे पूर्वैनन्दमुतस्ततः ।

चन्द्रगुप्तः कृतो राजा चाणक्येन महौजसा ॥’

इति बृहत्कथायां सूचितं श्रीरामायणोक्तं रामकथादि ज्ञेयम् ॥]

इति श्रीविष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोकं

प्रथमः प्रकाशः समाप्तः ।

द्वितीयः प्रकाशः ।

रूपकानामन्योन्यं भेदसिद्धये वस्तुभेदं प्रतिपाद्येदानीं नायकभेदः प्रतिपाद्यते—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।

रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥ १ ॥

बुद्धुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥ २ ॥

नेता नायको विनयादिगुणसंपन्नो भवतीति ।

तत्र विनीतः । यथा वीरचरिते (४।२१)—

‘यद्ब्रह्मवादिभिरुपासितवन्द्यपादे विद्यातपोव्रतनिधौ तपतां वरिष्ठे ।

देवाकृतस्त्वयि मया विनयापचारस्तत्र प्रसीद भगवन्नयमञ्जलिस्ते ॥’

मधुरः=प्रियदर्शनः । यथा तत्रैव—

‘राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य सदृशीं समुद्रहन् ।

अप्रतर्क्यगुणरामणीयकः सर्वथैव हृदयंगमोऽसि मे ॥’ (रत्ना० २।३७)

स्त्यागी=सर्वस्वदायकः । यथा—

‘त्वचं कर्णः शिविर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः ।

ददौ दधीचिरस्थानि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥’

दक्षः=क्षिप्रकारी । यथा वीरचरिते (१।५३)—

‘स्फूर्जद्भ्रजसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो

रामस्य त्रिपुरान्तकृद्विविषदां तेजोभिरिदं धनुः ।

शुण्डारः कलमेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डक-

स्तस्मिन्नाहित एव गजितगुणं कृष्टं च भग्नं च तत् ॥’

प्रियंवदः=प्रियभाषी । तथा तत्रैव—

‘उत्पत्तिर्जमदग्निः स भगवान्देवः पिनाकी गुरु-

वीर्यं यत्तु न तद्विरा पथि ननु व्यक्तं हि तत्कर्मभिः ।

त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः

सत्यब्रह्मतपोनिधेर्भगवतः किं वा न लोकोत्तरम् ॥’ (वी० च० २।३६)

रक्तलोकः । यथा तत्रैव—

‘त्रय्यास्त्राता यस्तवायं तनूजस्तेनाद्यैव स्वाभिनस्ते प्रसादात् ।

राजन्वन्तो रामभद्रेण राज्ञा लब्धक्षेमाः पूर्णकामाश्चरामः ॥’

(वी० च० ४।४४)

एवं शौचादिष्वप्युदाहार्यम् । [तत्र शौचं नाम मनोनैर्मल्यादिना कामाद्यनभि-
भूतत्वम् । यथा रघौ (१६।८)—

‘का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते ।

आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति ॥’

वाग्मी । यथा हनुमन्नाटके (१।३८)—

‘बाहोर्वलं न विदितं न च कार्मुकस्य त्रैयम्बकस्य तनिमा तन एष दोषः ।
तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरुणाम् ॥’

रूढवंशो यथा—

‘ये चत्वारो दिनकरकुलक्षत्रसंतानमल्ली-

मालाम्लानस्तवकमधुपा जशिरे राजपुत्राः ।

रामस्तेषामचरमभवस्ताडकाकालरात्रि-

प्रत्यूषोऽयं सुचरितकथाक्रन्दलीमूलकन्दः ॥]

स्थिरः=वाङ्मनः क्रियाभिरचञ्चलः । यथा वीरचरिते (३।८)—

‘प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात् ।

न लेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम् ॥’

यथा वा भर्तृहरिशतके (नीति० श्लो० २६)—

‘प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥’

युवा प्रसिद्धः **बुद्धिः=ज्ञानम्** । गृहीतविशेषकरी तु **प्रज्ञा** । यथा मालविका-
ग्निमित्रे (१।५)—

‘यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै ।

तत्तद्विशेषकरणात्प्रत्युपदिशतीव मे बाला ॥’

स्पष्टमन्यत् ।

नेतृविशेषानाह—

भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम् ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ॥ ३ ॥

सचिवादिविहितयोगक्षेमत्वाच्चिन्तारहितः । अत एव गीतादिकलाविष्टो
भोगप्रवणश्च शृङ्गारप्रधानत्वाच्च सुकुमारसत्त्वाचारो मृदुरिति ललितः । यथा
रत्नावल्याम् (१।९)—

‘राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः

सम्यक्पालनललिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं

कामः काममुपैत्यं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥’

अथ शान्तः—

सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः ।

विनयादिनेतृसामान्यगुणयोगी धीरशान्तो द्विजादिक इति विप्रवणिक्सचिवा-
दीनां प्रकरणनेतृणामुपलक्षणम् । विवक्षितं चैतत् । तेन नैश्चिन्त्यादिगुणसंभवे-

ऽपि विप्रादीनां शान्ततैव न ललितम् । यथा मालतीमाधव-मृच्छकटिकादौ
माधव-चारुदत्तादिः ।

‘तत उदयगिरेरिवैक एव स्फुरितगुणवृत्तिमुन्दरः कलावान् ।

इह जगति महोत्सवस्य हेतुर्नयनवतामुदियाय बालचन्द्रः ॥’ (माल० २।१०)

इत्यादि । यथा वा—

‘मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं यत्सदसि निविडचैत्यव्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।

मम निधनदशायां वर्तमानस्य पापैस्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम् ॥’

अथ धीरोदात्तः—

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ॥ ४ ॥

स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ।

महासत्त्वः=शोकक्रोधाद्यनभिभूतान्तःसत्त्वः । अविकत्थनः=अनात्मश्लाघनः ।

निगूढाहंकारः=विनयच्छन्नावलेपः । दृढव्रतः=अङ्गीकृतनिर्वाहको धीरोदात्तः ।

यथा नागानन्दे (५।१६)—जीमूतवाहनः—

‘शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृप्तिं न पश्यामि तवैव तावत्किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन् ॥’

यथा च रामं प्रति—

‘आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।

न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥’

यच्च केषांचित्स्थैर्यादीनां सामान्यगुणानामपि विशेषलक्षणे क्वचित्संकीर्तनं
तत्तेषां तत्राधिक्यप्रतिपादनार्थम् । ननु च कथं जीमूतवाहनादिर्नागानन्दादा-
नुदात्त इत्युच्यते । औदात्त्यं हि नाम सर्वोत्कर्षेण वृत्तिः । तच्च विजिगीषुत्व
एवोपपद्यते । जीमूतवाहनस्तु निर्जिगीषुतयैव कविना प्रतिपादितः । यथा—

‘तिष्ठन्भाति पितुः पुरो भुवि यथा सिंहासने किं तथा

यत्संवाहयतः सुखं हि चरणौ तातस्य किं राज्यतः ।

किं भुक्ते भुवनत्रये धृतिरसौ भुक्तोज्झिते या गुरो-

रायासः खलु राज्यमुज्झितगुरोस्तत्रास्ति कश्चिद्गुणः ॥’ (नागा० १।७)

इत्यनेन ।

‘पित्रोर्विधातुं शुश्रूषां त्यक्त्वैश्वर्यं क्रमागतम् ।

वनं याम्यहमप्येष यथा जीमूतवाहनः ॥’ (नागा० १।४)

इत्यनेन च । अतोऽस्यात्यन्तशमप्रधानत्वात् परमकारुणिकत्वाच्च वीतरागवच्छा-
न्तता । अन्यच्चात्रायुक्तं यत्तथाभूतं राज्यसुखादौ निरभिलाषं नायकमुपादाया-
न्तरा तथाभूतमलयवत्यनुरागोपवर्णनम्, यच्चोक्तं सामान्यगुणयोगी द्विजादिर्धो-
रशान्त इति, तदपि पारिभाषिकत्वादवास्तवमित्यभेदकम् । अतो वस्तुस्थित्या
बुद्ध-युधिष्ठिर-जीमूतवाहनादिव्यवहाराः शान्ततामाविर्भावयन्ति । अत्रोच्यते—

यत्तावदुक्तं सर्वोत्कर्षेण वृत्तिरौदात्त्यमिति, न तज्जीमूतवाहनादौ परिहीयते । न ह्येकरूपैव विजिगीषुता । यः केनापि शौर्यत्यागदयादिनान्यानतिशेते स विजिगीषुः, न यः परापकारेणार्थग्रहादिप्रवृत्तः । तथात्वे च मार्गदृष्टकादेरपि धीरोदात्तत्वप्रसक्तिः । रामादेरपि जगत्पालनीयमिति दुष्टनिग्रहे प्रवृत्तस्य नान्तरीयकत्वेन भूम्यादिलाभः । जीमूतवाहनादिस्तु प्राणैरपि परार्थसंपादनाद्विश्वमप्यतिशेते इत्युदात्ततमः । यथोक्तम्—‘तिष्ठन्भाति-’ (नागा० १।७) इत्यादिना विषयसुखपराद्बुधत्वेति, तत्सत्यम् । कार्पण्यहेतुषु स्वसुखतृष्णासु निरभिलाषा एव जिगीषवः । यदुक्तम् (शाकुं० ५।७)—

‘स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।

अनुभवति हि मूर्धा पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितपं छायायोपाश्रितानाम् ॥’
इत्यादिना मलयवत्यनुरागोपवर्णनं त्वशान्तरसाश्रयं शान्तनायकतां प्रत्युत निषेधति । शान्तत्वं चानहंकृतत्वं, तच्च विप्रादेरौचित्यप्राप्तमिति वस्तुस्थित्या विप्रादेः शान्तता न स्वपरिभाषामात्रेण । बुद्ध-जीमूतवाहनयोस्तु कारुणिकत्वाविशेषेऽपि सकामनिष्कामकरुणत्वादिधर्मत्वाद्भेदः । अतो जीमूतवाहनादेर्धौरोदात्तत्वमिति ।

अथ धीरोद्धतः—

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः ॥ ५ ॥

धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः ।

दर्पः=शौर्यादिमदः । मात्सर्यम्=असहनता । मन्त्रबलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनं=माया । छद्म=वञ्चनामात्रम् । चलः=अनवस्थितः, चण्डः=रौद्रः, स्वगुणशंसी=विकत्थनः, धीरोद्धतो भवति । यथा जामदग्न्यः—‘कैलासोद्धारसारत्रिभुवनविजय-’ (वीर० २।१६) इत्यादि । यथा च रावणः—‘त्रैलोक्यैश्वर्यलक्ष्मीहठहरणसहा बाहवो रावणस्य ।’

धीरललितादिशब्दाश्च यथोक्तगुणसमारोपितावस्थाभिधायिनो वत्सवृषभम-होक्षादिवज्र जाल्या कश्चिदवस्थितरूपो ललितादिरस्ति । तदा हि महाकविप्रबन्धेषु विरुद्धानेकरूपाभिधानमसंगतमेव स्यात्, जातेरनपायित्वात् । तथा च भवभूतिनैक एव जामदग्न्यः—

‘ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये ।

जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥’ (वीर० २।१०)

इत्यादिना रावणं प्रति धीरोदात्तत्वेन ‘कैलासोद्धारसार-’ (वीर० २।१६) इत्यादिभिश्च रामादीन्प्रति प्रथमं धीरोद्धतत्वेन पुनः ‘पुण्या ब्राह्मणजातिः’ (वीर० ४।२२) इत्यादिभिश्च धीरशान्तत्वेनोपवर्णितः । न चावस्थान्तराभिधानमनुचितमङ्गभूतनायकानां नायकान्तरापेक्षया महासत्त्वादेरव्यवस्थितत्वाद्भेदज्ञानस्तु रामादेरेकप्रबन्धोपात्तान्प्रत्येकरूपत्वादारम्भोपात्तावस्थातोऽवस्थान्तरोपादानमन्याय्यम् । यथोदात्तत्वाभिमतस्य रामस्य छद्मना वालिवधादमहासत्त्वतया स्वावस्थापरित्याग इति । वक्ष्यमाणानां च दक्षिणाद्यवस्थानां ‘पूर्वा प्रत्यन्ययाहृत’ इति नित्यसापेक्षत्वेनाविर्भावादुपात्तावस्थातोऽवस्थान्तराभिधानमङ्गाङ्गिनोरप्यविरुद्धम् ।

अथ शृङ्गारनेत्रवस्थाः—

स दक्षिणः शठो धृष्टः पूर्वा प्रत्यन्यया हृतः ॥ ६ ॥

नायकप्रकरणात्पूर्वा नायिकां प्रत्यन्ययाऽपूर्वनायिकयापहतचित्तव्यवस्थो वक्ष्य-
माणमेदेन स चतुरवस्थः । तदेवं पूर्वोक्तानां चतुर्णां प्रत्येकं चतुरवस्थत्वेन
षोडशधा नायकः ।

तत्र—

दक्षिणोऽस्यां सहृदयः

योऽस्यां ज्येष्ठायां हृदयेन सह व्यवहरति स दक्षिणः । यथा ममैव—

‘प्रसीदत्यालोके किमपि किमपि प्रेमगुरवो

रतिक्रीडाः कोऽपि प्रतिदिनमपूर्वोऽस्य विनयः ।

सविश्रम्भः कश्चित्कथयति च किञ्चित्परिजनो

न चाहं प्रत्येमि प्रियसखि किमप्यस्य विकृतिम् ॥’

यथा वा (मालवि० ३।३)—

‘उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः ।

उपचारविधिर्मनस्विनीनां ननु पूर्वोभ्यधिकोऽपि भावशून्यः ॥’

अथ शठः—

गूढविप्रियकृच्छठः ।

दक्षिणस्यापि नायिकान्तरापहतचित्ततया विप्रियकारित्वाविशेषेऽपि सहृद-
यत्वेन शठाद्विशेषः । यथा—

‘शठोऽन्यस्याः काञ्चीमणिरणितमाकर्ण्य सहसा

यदाश्लिष्यन्नेव प्रशिथिलभुजप्रन्थिरभवः ।

तदेतत्काचक्षे घृतमधुमयं खट्वहुवचो-

विषेणाघूर्णन्ती किमपि न सखी मे गणयति ॥’ (अमर० श्लो० १०९)

अथ धृष्टः—

व्यक्ताङ्गवैकृतो धृष्टो

यथामरुशतके (श्लो० ६०)—

‘लाक्षालक्ष्म ललाटपट्टमभितः केयूरमुद्रा गले

वक्त्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागोऽपरः ।

दृष्ट्वा कोपविधायि मण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो

लीलातामरसोदरे मृगदृशः श्वासाः समाप्तिं गताः ॥’

भेदान्तरमाह—

ऽनुकूलस्त्वेकनायिकः ॥ ७ ॥

यथा—

‘अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-

द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।

कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं

भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥'

किमवस्थः पुनरेषां वत्सराजादिर्नाटिकानायकः स्यादित्युच्यते । पूर्वमनुप-
जातनायिकान्तरानुरागोऽनुकूलः । परतस्तु दक्षिणः । ननु च गूढविप्रियकारि-
त्वाद्यक्ततरविप्रियत्वाच्च शाब्दधार्ष्ट्येऽपि कस्मान्न भवतः । न तथाविधविप्रि-
यत्वेऽपि वत्सराजादेराप्रबन्धसमाप्तेर्ज्येष्ठां नायिकां प्रति सहृदयत्वादक्षिणतैव ।
न चोभयोर्येष्ठाकनिष्ठयोरनायकस्य स्नेहेन न भवितव्यमिति वाच्यमविरोधात् ।
महाकविप्रबन्धेषु च—

‘ज्ञाता तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता वारोऽङ्गराजस्वसु-

र्युते रात्रिरियं जिता कमलया देवी प्रसाद्याद्य च ।

इत्यन्तःपुरसुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते

देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः ॥'

इत्यादावपक्षपातेन सर्वनायिकासु प्रतिपत्त्युपनिबन्धनात् ।

तथा च भरतः—

‘मधुरस्वागी रागं न याति मदनस्य नापि वशमेति ।

अवमानितश्च नार्या विरज्यते स तु भवेज्येष्ठः ॥'

इत्यत्र ‘न रागं याति न मदनस्य वशमेति’ इत्यनेनासाधारण एकस्यां स्नेहो निषिद्धो
दक्षिणस्येति । अतो वत्सराजादेराप्रबन्धसमाप्तिं स्थितं दाक्षिण्यमिति । षोड-
शानामपि प्रत्येकं ज्येष्ठमध्यमाधमलेनाष्टाचत्वारिंशन्नायकभेदा भवन्ति ।

सहायानाह—

पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः ।

तस्यैवानुचरो भक्तः किञ्चिदूनश्च तद्गुणैः ॥ ८ ॥

प्रागुक्तप्रासङ्गिकेतिवृत्तविशेषः पताका तन्नायकः पीठमर्दः प्रधानेतिवृत्तना-
यकस्य सहायः । यथा मालतीमाधवे मकरन्दः, रामायणे सुग्रीवः ।

सहायान्तरमाह—

एकविद्यो विटश्चान्यो हास्यकृच्च विदूषकः ।

गीतादिविद्यानां नायकोपयोगिनीनामेकस्या विद्याया वेदिता विटः । हास्य-
कारी विदूषकः । अस्य विकृताकारवेषादित्वं हास्यकारित्वेनैव लभ्यते । यथा
शेखरको नागानन्दे विटः । विदूषकः प्रसिद्ध एव ।

अथ प्रतिनायकः—

लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्यसनी रिपुः ॥ ९ ॥

तस्य नायकस्येत्यंभूतः प्रतिपक्षनायको भवति । यथा रामयुधिष्ठिरयो रावण-
दुर्योधनौ ।

अथ सात्त्विका नायकगुणाः—

शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं धैर्यतेजसी ।

ललितौदार्यमित्यष्टौ सत्त्वजाः पौरुषा गुणाः ॥ १० ॥

तत्र—

नीचे घृणाऽधिके स्पर्धा शोभायां शौर्यदक्षते ।

नीचे घृणा । यथा वीरचरिते (१।३७)—

‘उत्तालताडकोत्पातदर्शनेऽप्यप्रकम्पितः ।

नियुक्तस्तत्रमाथाय खैणेन विचिकित्सति ॥’

गुणाधिकैः स्पर्धा यथा—

‘एतां पश्य पुरःस्थलीमिह किल क्रीडाकिरातो हरः

कोदण्डेन किरीटिना सरभसं चूडान्तरे ताडितः ।

इत्याकर्ष्य कथाद्भुतं हिमनिधावद्रौ सुभद्रापते-

मन्दं मन्दमकारि येन निजयोर्दोर्दण्डयोर्मण्डलम् ॥’

शौर्यशोभा यथा, ममैव—

‘अत्रैः स्वैरपि संयताग्रचरणो मूर्च्छाविरामक्षणे

स्वाधीनव्रणिताङ्गशस्त्रनिचितो रोमोद्गमं वर्मयन् ।

भग्नानुद्वलयन्निजान्परभटान्संतर्जयन्निष्ठुरं

धन्यो धाम जयश्रियः पृथुरणस्तम्भे पताकायते ॥’

दक्षशोभा यथा वीरचरिते (१।५३)—

‘स्फूर्जद्भज्रसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो

रामस्य त्रिपुरान्तकृद्विषदां तेजोभिरिदं धनुः ।

शुण्डारः कलमेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डक-

स्तस्मिन्नाहितः एव गर्जितगुणं कृष्टं च भग्नं च तत् ॥’

अथ विलासः—

गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सस्मितं वचः ॥ ११ ॥

यथा (उ० च० ६।१९)—

‘दृष्टिस्तृणीकृतजगत्रयसत्त्वसारा धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् ।

कौमारकेऽपि गिरिवद्गुह्यतां दधानो वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव ॥’

अथ माधुर्यम्—

ऋक्षो विकारो माधुर्यं संक्षोभे सुमहत्यपि ।

महत्यपि विकारहेतौ मधुरो विकारो माधुर्यम् । यथा (हनु० ना० १।१९)—

‘कपोले जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुषि

स्मरस्मेरं गण्डोद्भ्रमरपुलकं वक्त्रकमलम् ।

मुहुः पश्यन्ऋष्यवन्रजनिचरसेनाकलकलं

जटाजूटग्रन्थि द्रढयति रघूर्णां परिवृढः ॥’

अथ गाम्भीर्यम्—

गाम्भीर्यं यत्प्रभावेन विकारो नोपलक्ष्यते ॥ १२ ॥

मृदुविकारोपलम्भाद्विकारानुपलब्धिरन्येति माधुर्यादन्यद्गाम्भीर्यम् । यथा—

‘आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।

न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥’

अथ स्थैर्यम्—

व्यवसायादचलनं स्थैर्यं विघ्नकुलादपि ।

यथा वीरचरिते (३।८)—

‘प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात् ।

न त्वेवं दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम् ॥’

अथ तेजः—

अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणान्तयेष्वपि ॥ १३ ॥

यथा—

‘ब्रूत नूतनकृष्माण्डफलानां के भवन्त्यमी ।

अङ्गुलीदर्शनाद्येन न जीवन्ति मनस्विनः ॥’

अथ ललितम्—

शृङ्गाराकारचेष्टात्वं सहजं ललितं मृदु ।

स्वाभाविकः शृङ्गारो मृदुः । तथाविधा शृङ्गारचेष्टा च ललितम् । यथा

ममैव—

‘लावण्यमन्मथविलासविजृम्भितेन स्वाभाविकेन सुकुमारमनोहरेण ।

किंवा ममेव सखि योऽपि ममोपदेष्टा तस्यैव किं न विषमं विदधीत तापम् ॥’

अथौदार्यम्—

प्रियोक्त्याऽऽजीवितादानमौदार्यं सदुपग्रहः ॥ १४ ॥

प्रियवचनेन सहाजीवितावधेदानमौदार्यं सतामुपग्रहश्च । यथा नागानन्दे

(५।१६)—

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृप्तिं न पश्यामि तवैव तावत्किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन् ॥’

सदुपग्रहो यथा—

‘एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम् ।

ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु ॥’

अथ नायिका—

स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा ।

तद्गुणेति यथोक्तसंभवे नायकसामान्यगुणयोगिनी नायिकेति । स्वस्त्री परस्त्री साधारणस्त्रीत्यनेन विभागेन त्रिधा ।

तत्र स्त्रीयाया विभागार्थं सामान्यलक्षणमाह—

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्त्रीया शीलार्जवादियुक् ॥ १५ ॥
शीलं=सुवृत्तम् । पतिव्रताऽकुटिला लज्जावती पुरुषोपचारनिपुणा स्त्रीया नायिका ।

तत्र शीलवती यथा—

‘कुलवालिआए पेच्छह जोव्वणलाअण्णविब्भमविलासा ।

पसवन्ति व्व पवसिए एंति व्व पिये घरं एत्ते ॥’

आर्जवादियोगिनी यथा—

‘हसिअमविआरमुद्धं भमिअं विरहिअविलाससुच्छाअं ।

भणिअं सहावसरलं धण्णाण घरे कलत्ताणं ॥’

लज्जावती यथा—

‘लज्जापज्जत्तपसाहणाइं परत्तिणिप्पिप्पासाइं ।

अविणअदुम्मेहाइं धण्णाण घरे कलत्ताइं ॥’

सा चैवंविधा स्त्रीया मुग्धा-मध्या-प्रगल्भानेदात्रिविधा ।

तत्र—

मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि ॥

प्रथमावतीर्णतारुण्यमन्मथा रमणे वामशीला सुखोपायप्रसादना मुग्धना-
यिका ।

तत्र वयोमुग्धा यथा—

‘विस्तारी स्तनभार एष गमितो न खोचितामुन्नतिं
रेखोद्धासिकृतं वलित्रयमिदं न स्पष्टनिम्नोन्नतम् ।

मध्येऽस्या ऋजुरायतार्धकपिशा रोमावली निर्मिता
रम्यं यौवनशैशवव्यतिकरोन्मिश्रं वयो वर्तते ॥’

यथा च ममैव—

‘उच्छ्रसन्मण्डलप्रान्तरेखमाबद्धकुञ्जलम् ।

अपर्याप्तमुरोवृद्धेः शंसत्यस्याः स्तनद्वयम् ॥’

काममुग्धा यथा—

‘दृष्टिः सालसतां बिभर्ति न त्रिशुक्लीडालु बद्धादरा

श्रोत्रे प्रेषयति प्रवर्तितसखीसंभोगवार्तास्वपि ।

१ ‘स्वापि इति पाठः.

२ ‘कुलवालिआयाः प्रेक्षध्वं यौवनलावण्यविभ्रमविलासाः ।
प्रवसन्तीव प्रवसिते आगच्छन्तीव प्रिये गृहमागते ॥’ इति च्छाया.

३ ‘हसितमविचारमुग्धं भ्रमितं विरहितविलाससुच्छायम् ।
भणितं स्वभावसरलं धन्यानां गृहे कलत्राणाम् ॥’ इति च्छाया.

४ ‘लज्जापर्याप्तप्रसादनानि परतृप्तिनिष्पिपासानि ।
भविनयदुर्मैधांसि धन्यानां गृहे कलत्राणि ॥’ इति च्छाया.

पुंसामङ्कः । पेतशङ्कमधुना नारोहति प्राग्यथा
वा । अ नूतनयौवनव्यतिकरावष्टभ्यमाना शनैः ॥'

रतवामा यथा —

‘व्याहृता प्रति’ वचो न संदधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।
सेवते स्म ३ । यनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥’ (कुमार० ८।२)
मुदुको, पे यथा—

‘प्रथमजनिते बाला मन्यौ विकारमजानती
कितवचरिते नासज्याङ्के विनम्रभुजैव सा ।
चिवुकमलिकं चोन्नम्योच्चैरकृत्रिमविभ्रमा
नयनसलिलस्यन्दिन्योष्ठे रुदन्त्यपि चुम्बिता ॥’

एवमन्येऽपि लज्जासंवृतानुरागनिबन्धना मुग्धाव्यवहारा निबन्धनीयाः ।

यथा—

‘न मध्ये संस्कारं कुसुममपि बाला विषहते
न निश्वासैः सुभ्रूर्जनयति तरङ्गव्यतिकरम् ।
नवोढा पश्यन्ती लिखितमिव भर्तुः प्रतिमुखं
प्ररोहदोमाश्चा न पिबति न पात्रं चलयति ॥’

अथ मध्या—

मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा ॥ १६ ॥

संप्राप्ततारुण्यकामा मोहान्तरतयोग्या मध्या ।

तत्र यौवनवती यथा—

‘आलापान्भ्रविलासो विरलयति लसद्बाहुविक्षिप्तियातं
नीवीप्रान्थि प्रथिन्ना प्रतनयति मनाड्मध्यनिम्नो नितम्बः ।
उत्पुष्पत्पार्श्वमूर्च्छत्कुचशिखरमुरो नूनमन्तः स्मरेण
स्पृष्टा कोदण्डकोट्या हरिणशिशुदृशो दृश्यते यौवनश्रीः ॥’

कामवती यथा—

‘स्मरनवनदीपूरेणोढाः पुनर्गुरुसेतुभि-
र्यदपि विधृतास्तिष्ठन्त्यारादपूर्णमनोरथाः ।
तदपि लिखितप्रख्यैरङ्गैः परस्परमुन्मुखा
नयनललिनीनालाकृष्टं पिबन्ति रसं प्रियाः ॥’

(अमर० श्लो० १०४)

मध्यासंभोगो यथा—

‘ताव च्चिअ रइसमए महिलाणं विन्भमा विराअंति ।

जाव ण कुवलयदलसच्छहाइ मउलेंति णअणाइं ॥’

एवं धीरायामधीरायां धीराधीरायामप्युदाहार्यम् ।

१ ‘तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते ।

यावन्न कुवलयदलसच्छभागि, मुकुलयन्ति नयनानि ॥’ इति च्छाया.

अथास्या मानसवृत्तिः—

धीरा सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्या साश्रु कृतागसम् ।

खेदयेद्व्यथितं कोपादधीरा परुषाक्षरम् ॥ १७ ॥

मध्याधीरा कृतापरार्थं प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या खेदयेत् । यथा माघे (६।१९)—

‘न खलु वयममुष्य दानयोग्याः पिबति च पाति च यासकौ रहस्त्वाम् ।

ब्रज विटपमसुं ददस्व तस्यै भवतु यतः सदृशोश्चिराय योगः ॥’

धीराधीरा साश्रु सोत्प्रासवक्रोक्त्या खेदयेत् । यथामरुशतके (श्लो० ५७)—

‘बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं

खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान्स्वर्वेऽपराधा मयि ।

तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याप्रतो रुद्यते

नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥’

अधीरा साश्रु परुषाक्षरम् । यथा—

‘यातु यातु किमनेन तिष्ठता मुञ्च मुञ्च सखि मादरं कृथाः ।

खण्डिताधरकलङ्कितं प्रियं शकुमो न नयनैर्निरीक्षितुम् ॥’

एवमपरेऽपि व्रीडानुपहिताः स्वयमनभियोगकारिणो मध्याव्यवहारा भवन्ति ।

यथा—

‘खेदाम्भःकणिकाञ्चितेऽपि वदने जातेऽपि रोमोद्गमे

विश्रम्भेऽपि गुरौ पयोधरभरोत्कम्पेऽपि वृद्धिं गते ।

दुर्वारस्मरनिर्भरेऽपि हृदये नैवाभियुक्तः प्रिय-

स्तन्वङ्ग्या हठकेशकर्षणघनाश्लेषामृते लुब्धया ॥’

स्वतोऽनभियोजकत्वं हठकेशकर्षणघनाश्लेषामृते लुब्धयेवेत्युत्प्रेक्षाप्रतीतिः ।

अथ प्रगल्भा—

यौवनान्धा सरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्गके ।

विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना ॥ १८ ॥

गाढयौवना, यथा ममैव—

‘अभ्युन्नतस्तनमुरो नयने च दीर्घे वक्त्रे भ्रुवावतितरां वचनं ततोऽपि ।

मध्योऽधिकं तनुरतीव गुरुर्नितम्बो मन्दा गतिः किमपि चाद्भुतयौवनायाः ॥’

यथा च—

‘स्तनतटमिदमुत्तुङ्गं निम्नो मध्यः समुन्नतं जघनम् ।

विषमे मृगशावाक्ष्या वपुषि नवे क इव न स्खलति ॥’

भावप्रगल्भा यथा—

‘न जाने संमुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये ।

सर्वाण्यङ्गानि किं यान्ति नेत्रतामुत कर्णताम् ॥’ (अमर० श्लो० ६४)

रतप्रगल्भा (अमर० श्लो० १०१) यथा—

‘कान्ते तल्पमुपागते विगलिता नीवी स्वयं बन्धना-

द्वासः प्रश्लथमेखलागुणधृतं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम् ।

एतावत्सखि वेद्मि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः ।

कोऽसौ कस्मि रलं नु किं कथमिति खल्पापि मे न स्मृतिः ॥'

एवमन्येऽपि परित्यक्तहीयन्त्रणावैदग्ध्यप्रायाः प्रगल्भाव्यवहारा वेदितव्याः ।
यथा (अमर० श्लो० १०७)—

‘कचित्ताम्बूलाक्तः कचिदगरुपङ्काङ्कमलिनः

कचिच्चूर्णोद्गारी कचिदपि च सालक्तकपदः ।

वलीभङ्गाभोगैरलकपतितैः शीर्णकुसुमैः

स्त्रियाः सर्वावस्थं कथयति रतं प्रच्छदपटः ॥’

अथास्याः कोपचेष्टा—

सावहित्थादरोदास्ते रतौ धीरेतरा कुधा ।

संतर्ज्य ताडयेन्मध्या मध्याधीरेव तं वदेत् ॥ १९ ॥

सहावहित्थेनाकारसंवरणेनादरेण चोपचाराधिक्येन वर्तते सा सावहित्था-
दरा । रताबुदासीना कुधा कोपेन भवति ।

सावहित्थादरा यथामरुशतके (श्लो० १८)—

‘एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युद्गमादूर्त-

स्ताम्बूलाहरणच्छलेन रमसाश्लेषोऽपि संविघ्नितः ।

आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयन्त्यान्तिके

कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थोऽकृतः ॥’

रताबुदासीना यथा (अमर० श्लो० १०६)—

‘आयस्ता कलहं पुरेव कुरुते न संसने वाससो

भग्नभ्रूगतिखण्ड्यमानमधरं धत्ते न केशग्रहे ।

अज्ञान्यर्पयति स्वयं भवति नो वामा हठालिङ्गने

तन्व्या शिक्षित एष संप्रति कुतः कोपप्रकारोऽपरः ॥’

इतरा त्वधीरप्रगल्भा कुपिता सती संतर्ज्य ताडयति । यथामरुशतके
(श्लो० ९)—

‘कोपात्कोमललोलबाहुलतिकापाशेन बद्धा दृढं

नीत्वा केलिनिकेतनं दयितया सायं सखीनां पुरः ।

भूयोऽप्येवमिति स्खलत्कलगिरा संसूच्य दुश्चेष्टितं

धन्यो हन्यत एष निहृतिपरः प्रेयान् रुदन्या हसन् ॥’

धीराधीरप्रगल्भा मध्याधीरेव तं वदति सोऽप्रासवक्रोक्त्या । यथा तत्रैव—

‘कोपो यत्र भ्रुकुटिरचना निग्रहो यत्र मौनं

यत्रान्योन्यस्मितमनुनयो दृष्टिपातः प्रसादः ।

तस्य प्रेम्णस्तदिदमधुना वैशसं पश्य जातं

त्वं पादान्ते लुठसि न च मे मन्युमोक्षः खलायाः ॥’ (अमर० श्लो० ३८)

पुनश्च—

द्वेष्टा ज्येष्ठा कनिष्ठा चेत्यमुग्धा द्वादशोदिताः ।

मध्याप्रगल्भामेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठाकनिष्ठात्वमेदेन द्वादश भेदा भवन्ति ।
मुग्धा लेकरूपैव ।

ज्येष्ठाकनिष्ठे यथामरुशतके (श्लो० १९)—

‘दृष्ट्वाकसनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-

देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः ।

ईषद्वक्तिकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-

मन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥’

न चानयोर्दाक्षिण्यप्रेमभ्यामेव व्यवहारः । अपि तु प्रेम्णापि । यथा चैतत्त-
थोक्तं दक्षिणलक्षणावसरे । [एषां च धीरमध्या-अधीरमध्या-धीराधीरमध्या-
धीरप्रगल्भा-अधीरप्रगल्भा-धीराधीरप्रगल्भामेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठा-कनिष्ठाभेदाद्द्वा-
दशानां वासवदत्ता-रत्नावलीवत् प्रबन्धनायिकानामुदाहरणानि महाकविप्रबन्धेष्व-
नुसर्तव्यानि ।]

अथान्यस्त्री—

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाङ्गिरसे क्वचित् ॥ २० ॥

कन्यानुरागमिच्छतः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम् ।

नायकान्तरसंबन्धिन्यन्योढा, यथा—

‘दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मिन्गृहे दास्यसि

प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसाः कौपीरपः पास्यति ।

‘एकाकिन्यपि यामि तद्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं

नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदानलप्रन्थयः ॥’

इयं त्वङ्गिनि प्रधाने रसे न क्वचिन्निबन्धनीयेति न प्रपञ्चिता । कन्यका तु
पित्राद्यायत्तत्वादपरिणीताप्यन्यस्त्रीत्युच्यते । तस्यां पित्रादिभ्योऽलभ्यमानायां
सुलभायामपि परोपरोधस्वकान्ताभयात् प्रच्छन्नं कामित्वं प्रवर्तते । यथा मालत्यां
माधवस्य सागरिकायां च वत्सराजस्येति, तदनुरागश्च स्वेच्छया प्रधानाप्रधान-
रससमाश्रयो निबन्धनीयः । यथा रत्नावली-नागानन्दयोः सागरिका-मलयव-
त्यनुराग इति ।

साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक् ॥ २१ ॥

तद्यवहारो विस्तरतः शास्त्रान्तरे निदर्शितः । दिङ्मात्रं तु—

छन्नकामसुखार्थाज्ञस्वतन्त्राहंयुपण्डकान् ।

रक्तेव रञ्जयेदाढ्यान्निःस्वान्मात्रा विवासयेत् ॥ २२ ॥

छन्नं ये कामयन्ते ते छन्नकामाः श्रोत्रियवर्णगिरिङ्गिप्रभृतयः, सुखार्थः=अप्र-
यासावाप्तधनः सुखप्रयोजनो वा, अज्ञः=मूर्खः, स्वतन्त्रः=निरङ्कुशः, अहंयुः=अहं-

कृतः, पण्डकः=वातपण्डादिः, एतान्बहुवित्तान् रक्तैव रञ्जयेदर्थार्थम् । तत्प्रधान-
त्वात्तद्वृत्तेः । गृहीतार्थान्कुट्टन्यादिना निष्कासयेत्पुनः प्रतिसंधानाय । इदं तासा-
मौत्सर्गिकं रूपम् ।

रूपकेषु तु—

रक्तैव त्वप्रहसने नैषा दिव्यनृपाश्रये ।

प्रहसनवर्जिते प्रकरणादौ रक्तैवैषा विधेया । यथा मृच्छकटिकायां वसन्त-
सेना चारुदत्तस्य । प्रहसने त्वरक्तापि हास्यहेतुत्वात् । नाटकादौ तु दिव्यनृप-
नायके नैव विधेया ।

अथ मेदान्तराणि—

आसामष्टावस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः ॥ २३ ॥

स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्र-
लब्धा, प्रोषितप्रिया, अभिसारिका इत्यष्टौ स्वस्त्रीप्रभृतीनामवस्थाः । नायकाप्रभृती-
नामप्यवस्थारूपत्वे सत्यवस्थान्तराभिधानं पूर्वासां धर्मित्वप्रतिपादनायाष्टाविति
न्यूनाधिकव्यवच्छेदः । न च वासकसज्जादेः स्वाधीनपतिकादावन्तर्भावः ।
अनासन्नप्रियत्वाद्वासकसज्जाया न स्वाधीनपतिकात्वम् । यदि चैष्यत्प्रियापि
स्वाधीनपतिका प्रोषितप्रियापि न पृथग्वाच्या । न चेयता व्यवधानेनासत्तिरिति
नियन्तुं शक्यम् । न चाविदितप्रियव्यलीकायाः खण्डितात्वं, नापि प्रवृत्तरति-
भोगेच्छायाः प्रोषितप्रियात्वं स्वयमगमनान्नायकं प्रत्यप्रयोजकत्वान्नाभिसारिका-
त्वम् । एवमुत्कण्ठिताप्यन्यैव पूर्वाभ्यः । औचित्यप्राप्तप्रियागमनसमयातिवृत्ति-
विधुरा न वासकसज्जा । तथा विप्रलब्धापि वासकसज्जावदन्यैव पूर्वाभ्यः ।
उक्त्वा नायात इति प्रतारणाधिक्याच्च वासकसज्जोत्कण्ठितयोः पृथक् । कलहा-
न्तरिता तु यद्यपि विदितव्यलीका तथाप्यगृहीतप्रियानुनया पश्चात्तापकाशित-
प्रसादा पृथगेव खण्डितायाः । तत्स्थितमेतदष्टावस्था इति ।

तत्र—

आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका ।

यथा—

‘मा गर्वमुद्रह कपोलतले चकास्ति कान्तस्वहस्तलिखिता मम मञ्जरीति ।

अन्यापि किं न सखि भाजनमीदृशानां वैरी न चेद्भवति वेपथ्वन्तरायः ॥’

अथ वासकसज्जा—

मुदा वासकसज्जा स्व मण्डयत्येष्यति प्रिये ॥ २४ ॥

स्वमात्मानं वेद्म च हर्षेण भूषयत्येष्यति प्रिये । वासकसज्जा यथा—

‘निजपाणिपल्लवतटस्खलनादभिनसिकाविवरमुत्पतितैः ।’

अपरा परीक्ष्य शनकैर्मुमुदे मुखवासमास्यकमलश्वसनैः ॥’ (शिशु० ९।५२)

१ ‘रूपकेष्वनुरक्तैव कार्या प्रहसनेतरे’ इति पाठः.

अथ विरहोत्कण्ठिता—

चिरयत्यव्यलीके तु विरहोत्कण्ठितोन्मनाः ।

यथा—

‘सखि स विजितो वीणावाद्यैः कथाप्यपरस्त्रिया
पणितमभवत्ताभ्यां तत्र क्षपाललितं ध्रुवम् ।
कथमितरथा शेफालीषु स्वलत्कुसुमास्वपि
प्रसरति नभोमध्येऽपीन्दौ प्रियेण विलम्ब्यते ॥’

अथ खण्डिता—

ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता ॥ २५ ॥

यथा (शिशु० ११।३४)—

‘नवनखपदमङ्गं गोपयस्यंश्चुकेन स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम् ।
प्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गशंसी विसर्पन्नवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥’

अथ कलहान्तरिता—

कलहान्तरितामर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक् ।

यथा (अमर० श्लो० ९२)—

‘निःश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियसुखं नक्तं दिवं रुद्यते ।
अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तथोपेक्षितः
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः ॥’

अथ विप्रलब्धा—

विप्रलब्धोक्तसमयमप्राप्तेऽतिविमानिता ॥ २६ ॥

यथा—

‘उत्तिष्ठ दूति यामो यामो यातस्तथापि नायातः ।
याऽतः परमपि जीवेजीवितनाथो भवेत्तस्याः ॥’

अथ प्रोषितप्रिया—

दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया ।

यथामरुदातके (श्लो० ७६)—

‘आदृष्टिप्रसरात्प्रियस्य पदवीमुद्रीक्ष्य निर्विण्णया
विश्रान्तेषु पथिष्वहःपरिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति ।
दत्तैकं सशुचा गृहं प्रति पदं पान्थस्त्रियास्मिन्क्षणे
मा भूदागत इत्यमन्दवलितग्रीवं पुनर्वीक्षितम् ॥’

अथाभिसारिका—

कामार्ताभिसरेत् कान्तं सारयेद्वाभिसारिका ॥ २७ ॥

१ ‘विरहोत्कण्ठिता मता’ इति पाठः. २ ‘विधुते’ इति पाठः.

यथामरुशतके (श्लो० ३१)—

‘उरसि निहितस्तारो हारः कृता जघने घने

कलकलवती काञ्ची पादौ रणन्मणिनूपुरौ ।

प्रियमभिसरस्येवं मुग्धे लमाहृतडिण्डिमा

यदि किमधिकत्रासोत्कम्पं दिशः समुदीक्षसे ॥’

यथा च (शिशु० ९।५,६)—

‘न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां करुणां यथा च क्रूरते स मयि ।

निपुणं तथैनमुपगम्य वदेरभिदूति काचिदिति संदिदिशे ॥’

तत्र—

चिन्तानिःश्वासखेदाश्रुवैवर्ण्यग्लान्यभूपणैः ।

युक्ताः पडन्त्या द्वे चाद्ये क्रीडौञ्जल्यप्रहर्षितैः ॥ २८ ॥

परस्त्रियौ तु कन्यकोढे । संकेतात्पूर्वं विरहोत्कण्ठिते पश्चाद्विदूषकादिना सहाभिसरन्त्यावभिसारिके । कुतोऽपि संकेतस्थानमप्राप्ते नायके विप्रलब्धे इति व्यवस्थितवानयोरिति । अस्वाधीनप्रिययोरवस्थान्तरायोगात् । यत्तु मालविकाभिन्नित्रादौ (पृ० ७८) ‘योऽप्येवं धीरः सोऽपि दृष्टो देव्याः पुरतः’ इति मालविकावचनानन्तरम्—**‘राजा—**

दाक्षिण्यं नाम विम्बोष्ठि नायकानां कुलव्रतम् ।

तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिवन्धनाः ॥’ (मालविका० ४।१४)

इत्यादि, तत्र खण्डितानुनयाभिप्रायेण । अपि तु सर्वथा मम देव्यधीनत्वमाशङ्क्य निराशा मा भूदिति कन्याविश्रम्भणायेति । तथानुपसंजातनायकसमागमाया देशान्तरव्यवधानेऽयुत्कण्ठितालमेवेति न प्रोषितप्रियात्वमनायत्ताप्रियत्वादेवेति ।

अथासां सहायिन्यः—

दूत्यो दासी सखी कारुर्धात्रेयी प्रतिवेशिका ।

लिङ्गिनी शिल्पिनी स्वं च नेतृमित्रगुणान्विताः ॥ २९ ॥

दासी=परिचारिका । सखी=स्नेहनिबद्धा । कारुः=रजकीप्रभृतिः । धात्रेयी=उपमातृमुता । प्रतिवेशिका=प्रतिगृहिणी । लिङ्गिनी=भिभ्रुक्यादिका । शिल्पिनी=चित्रकारादिव्री । स्वं चेति दूतीविशेषा । नायकमित्राणां पीठमर्दादीनां निस्पृष्टार्थत्वादिना गुणेन युक्ताः । तथा च मालतीमाधवे (३।११) कामन्दकीं प्रति—

‘शास्त्रेषु निष्ठा सहजश्च बोधः प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी ।

कालानुरोधः प्रतिभानवत्त्वमेते गुणाः कामदुघाः क्रियासु ॥’

तत्र सखी । यथा—

‘भृगुशिशुदृशस्तस्यास्तापं कथं कथयामि ते

दहनपतिता दृष्टा मूर्तिर्मया न हि वैधवी ।

इति तु विदितं नारीरूपः स लोकदृशां सुधा

तव शठतया शिल्पोत्कर्षो विधेर्विघटिष्यते ॥’

यथा च (गाथा०)—

‘सच्चं जाणइ दट्ठुं सरिसम्मि जणम्मि जुजए राओ ।

मरउ ण तुमं भणिस्सं मरणं पि सलाहणिज्जं से ॥’

स्वयं दूती । यथा—

‘मेहु एहि किं णिवालअ हरसि णिअं वाउ जइ वि मे सिच्चअं ।

साहेमि कस्स सुंदर दूरे गामो अहं एक्का ॥’

इत्याद्युद्धम् ।

अथ योपिदलंकाराः—

यौवने सत्त्वजाः स्त्रीणामलंकारास्तु विंशतिः ।

यौवने सत्त्वोद्धृता विंशतिरलंकाराः स्त्रीणां भवन्ति ।

तत्र—

भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः ॥ ३० ॥

शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रागल्भ्यता ।

औदार्यं धैर्यमित्येते सप्त भावा अयत्नजाः ॥ ३१ ॥

तत्र भावहावहेलास्त्रयोऽङ्गजाः । शोभा कान्तिर्दीप्तिर्माधुर्यं प्रागल्भ्यमौदार्यं धैर्यमित्यलंकाराः सप्त ।

लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चित्तम् ।

मोहायितं कुट्टमितं विब्वोको ललितं तथा ॥ ३२ ॥

विद्वतं चेति विज्ञेया दश भावाः स्वभावजाः ।

तानेव निर्दिशति—

निर्विकारात्मकात्सत्त्वाद्भावस्तत्राद्यविक्रिया ॥ ३३ ॥

तत्र विकारहेतौ सत्यप्यविकारकं सत्त्वम् । यथा कुमारसंभवे (३।४)—

‘श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन् हरः प्रसंख्यानपरो बभूव ।

आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ॥’

तस्मादविकाररूपात्सत्त्वात् यः प्रथमो विकारोऽन्तर्विपरिवर्ती बीजस्योच्छून-
तेव स भावः । यथा—

‘दृष्टिः सालसतां विभर्ति न शिशुकीडासु बद्धादरा

श्रोत्रे प्रेषयति प्रवर्तितसखीसंभोगवार्तास्वपि ।

पुंसामङ्गमपेतशङ्कमधुना नारोहति प्राग्यथा

बाला नूतनयौवनव्यतिकरावष्टभ्यमाना शनैः ॥’

१ ‘सत्यं जानाति द्रष्टुं सदृशे जने युज्यते रागः ।

त्रियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि श्लाघनीयमस्याः ॥’ इति च्छाया.

२ ‘मुदुरेहि किं निवारक हरसि निजं बायो यद्यपि मे सिच्चयम् ।

साधयामि कस्य सुन्दर दूरे ग्रामोऽहमेका ॥’ इति च्छाया.

यथा वा कुमारसंभवे (३।६७)—

‘हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे विम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥’

यथा वा ममैव—

‘तं चिअ वअणं ते चेअ लोअणे जोव्वणं पि तं चेअ ।
अण्णा अणंगलच्छी अण्णं चिअ किं पि साहेइ ॥’

अथ हावः—

हेवाकसस्तु शृङ्गारो हावोऽक्षिभ्रूविकारकृत् ।

प्रतिनियताङ्गविकारकारी शृङ्गारः, स्वभावविशेषो हावः । यथा ममैव—

‘जै किं पि पेच्छमाणं भणमाणं रे जहा तह चेअ ।
णिज्जाअ णेहमुदं वअस्स मुदं णिअच्छेहि ॥’

अथ हेला—

स एव हेला सुव्यक्तशृङ्गाररससूचिका ॥ ३४ ॥

हाव एव स्पष्टभूयोविकारत्वात् सुव्यक्तशृङ्गाररससूचको हेला । यथा ममैव—

‘तेह झत्ति से पअत्ता सव्वंगं विव्भमा थणुम्भेए ।
संसइअबालभावा होइ चिरं जह सहीणं पि ॥’

अथायत्नजाः सप्त । तत्र शोभा—

रूपोपभोगतारुण्यैः शोभाङ्गानां विभूषणम् ।

यथा कुमारसंभवे (७।१३)—

‘तां प्राञ्जुखीं तत्र निवेश्य बालां क्षणं व्यलम्बन्त पुरो निषण्णाः ।
भूतार्थशोभाहियमाणनेत्राः प्रसाधने संनिहितेऽपि नार्यः ॥’

इत्यादि । यथा च शाकुन्तले (३।१०)—

‘अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमल्लनं कररुहै-
रनाविदं रत्नं मधु नयमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥’

१ ‘तदेव वचनं ते चैव लोचने यौवनमपि तदेव ।

अन्यानङ्गलक्ष्मीरन्यदेव किमपि साधयति ॥’ इति च्छाया.

२ ‘अव्पालापः’ इति पाठः.

३ ‘यत्किमपि प्रेक्षमाणां भणमानां रे यथा तथैव ।

निर्ध्याय खेदमुग्धां वयस्य मुग्धां पश्य ॥’ इति च्छाया.

४ ‘तथा झटित्यस्याः प्रवृत्ताः सर्वाङ्गं विभ्रमाः स्तनोद्भेदे ।

संशयितबालभवा भवति चिरं यथा सखीनामपि ॥’ इति च्छाया.

अथ कान्तिः—

मन्मथामापितच्छाया सैव कान्तिरिति स्मृता ॥ ३५ ॥

शोभैव रागावतारघनीकृता कान्तिः । यथा—

‘उन्मीलद्वदनेन्दुदीप्तिविसरैर्दूरे समुत्सारितं

भिन्नं पीनकुचस्थलस्य च रुचा हस्तप्रभाभिर्हतम् ।

एतस्याः कलविङ्ककण्ठकदलीकल्पं मिलत्कौतुका-

दप्राप्ताङ्गसुखं रूपेव सहसा केशेषु लभं तमः ॥’

यथा हि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टवाणस्य ।

अथ माधुर्यम्—

अनुलवणत्वं माधुर्यं

यथा शाकुन्तले (१११७)—

‘सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥’

अथ दीप्तिः—

दीप्तिः कान्तेस्तु विस्तरः ।

यथा—

‘देर्जा पसिअ णिअंतसुमुहससिजोण्हाविलुत्ततमणिवहे ।

अहिसारिआण विघं करोसि अण्णाण विहआसे ॥’

अथ प्रागल्भ्यम्—

निःसाध्वसत्वं प्रागल्भ्यं

मनःक्षोभपूर्वकोऽङ्गतादः=साध्वसम्, तदभावः प्रागल्भ्यम् । यथा ममैव—

‘तथा व्रीडाविधेयापि तथा मुग्धापि सुन्दरी ।

कलाप्रयोगचातुर्ये सभास्वाचार्यकं गता ॥’

अथौदार्यम्—

औदार्यं प्रश्रयः सदा ॥ ३६ ॥

यथा (गाथा० ३।२६)—

‘दिअँहं खु दुक्खिआए सअलं काऊण गेहवावारं ।

गरुएवि मण्णुदुक्खे भरिमो पाअंतसुत्तस्स ॥’

यथा वा—‘भूभङ्गे सहस्रोदृता’ (रत्ना० २।२१) इत्यादि ।

१ ‘मन्मथाध्यासित’ इति पाठः.

२ ‘दैवादृष्ट्वा नितान्तसुमुखशशिज्योत्स्नाविलुप्ततमोनिवहे ।

अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासां विहताशे ॥’ इति च्छाया.

३ ‘दिवसं खलु दुःखितायाः सकलं कृत्वा गृहव्यापारम् ।

गुरुष्वपि मन्युदुःखे भरिमा पादान्ते सुप्तस्य ॥’ इति च्छाया.

अथ धैर्यम्—

चापलाविहता धैर्यं चिद्वृत्तिरविकत्थना ।

चापलानुपहता मनोवृत्तिरात्मगुणानामनाख्यायिका धैर्यमिति । यथा मालती-
माधवे (२।२)—

‘ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलः शशी
दहतु मदनः किं वा मृत्योः परेण विधास्यति ।
मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया
कुलममलिनं न लेवार्यं जनो न च जीवितम् ॥’

अथ स्वाभाविका दश । तत्र—

प्रियानुकरणं लीला मधुराङ्गविचेष्टितैः ॥ ३७ ॥

प्रियकृतानां वाग्वेषचेष्टानां शृङ्गारिणीनामङ्गनाभिरनुकरणं=लीला । यथा
ममैव—

‘तद्दिदृङ्मं तद्भणितं तां णिअदं तद्वा तद्वा सीणं ।
अवल्लोहअं सट्ठणं सविअमं जह सवत्तीहिं ॥’
यथा वा—‘तेनोदितं वदति याति तथा यथासौ’ इत्यादि ।
अथ विलासः—

तत्कालिको विशेषस्तु विलासोऽङ्गक्रियादिषु ।

दयितावलोकनादिकालेऽङ्गे क्रियायां वचने च सातिशयविशेषोत्पत्तिः=विलासः ।
यथा मालतीमाधवे (१।२९)—

‘अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्तवैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः ।
तद्भूरिसालिकविकारविशेषरम्यमाचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥’
अथ विच्छित्तिः—

आकल्परचनाल्पापि विच्छित्तिः कान्तिपोषकत् ॥ ३८ ॥

स्तोकोऽपि वेषो बहुतरकमनीयताकारी=विच्छित्तिः । यथा कुमारसंभवे
(७।१७)—

‘कर्णार्पितो रोध्रकषायरुद्धे गोरोचनामेदनितान्तगौरे ।
तस्याः कपोले परभागलाभाद्बन्ध चक्षुषि यवप्ररोहः ॥’

अथ विभ्रमः—

विभ्रमस्त्वरया काले भूषास्थानविपर्ययः ।

यथा—

‘अभ्युद्रते शशिनि पेशलकान्तद्वतीसंलापसंवलिताल्लोचनमानसाभिः ।
अग्राहि मण्डनविधिर्विपरीतभूषाविन्यासहासितसखीजनमङ्गनाभिः ॥’

१ ‘तथा दृष्टं तथा भणितं तथा नियतं तथा तथा शीर्णम् ।

अवलोकितं सट्ठणं सविअमं यथा सपत्नीभिः ॥’ इति च्छाया.

२ ‘क्रियोच्छिबु’ इति पाठः.

यथा वा ममैव—

‘श्रुत्वायातं वह्निः क्रान्तमसमाप्तविभूषया ।
भालेऽञ्जनं दशोर्लोक्षा कपोले तिलकः कृतः ॥’

अथ किलकिञ्चितम्—

क्रोधाश्रुहर्षभीत्यादेः संकरः किलकिञ्चितम् ॥ ३९ ॥

यथा ममैव—

‘रतिक्रीडाद्यूते कथमपि समासाद्य समर्थं
मया लब्धे तस्याः कणितकलकण्ठार्धमधरे ।
कृतभ्रूभङ्गासौ प्रकटितविलक्षार्धरुदित-
स्मितक्रोधोद्भ्रान्तं पुनरपि विदध्यान्मयि सुखम् ॥’

अथ मोहयितम्—

मोहयितं तु तद्भावभावनेष्टकथादिषु ।

इष्टकथादिषु प्रियतमकथानुकरणादिषु प्रियानुरागेण भावितान्तःकरणत्वं=
मोहयितम् । यथा पद्मगुप्तस्य—

‘चित्रवर्तिन्यपि नृपे तत्त्वावेशेन चेतसि ।
त्रीडार्धवलितं चक्रे मुखेन्दुमवशैव सा ॥’

यथा वा—

‘मातः कं हृदये निधाय सुचिरं रोमाञ्चिताङ्गी मुहु-
र्जृम्भामन्थरतारकां सुललितापाङ्गां दधाना दशम् ।
मुसेवालिखितेव शून्यहृदया लेखावशेषीभव-
स्यात्मद्रोहिणि किं हिया कथय मे गूढो निहन्ति स्मरः ॥’

यथा वा ममैव—

‘स्मरदवयुनिमित्तं गूढमुञ्जेतुमस्याः सुभग तव कथायां प्रस्तुतायां सखीभिः ।
भवति विततपृष्ठोदस्तपीनस्तनाग्रा ततवलयितबाहुर्जृम्भितैः साङ्गभङ्गैः ॥’

अथ कुट्टमितम्—

सानन्दान्तः कुट्टमितं कुप्येत् केशाधरग्रहे ॥ ४० ॥

यथा—

‘नान्दीपदानि रतिनाटकविभ्रमाणामाज्ञाक्षराणि परमाण्यथवा स्मरस्य ।
दष्टेऽधरे प्रणयिना विधुताग्रपाणेः सीत्कारशुष्करुदितानि जयन्ति नार्याः ॥’

अथ बिम्बोकः—

गर्वाभिमानादिष्टेऽपि बिम्बोकोऽनादरक्रिया ।

यथा ममैव—

‘सव्याजं तिलकालकान्विरलयल्लोलाङ्गुलिः संस्पृशन्
वारंवारमुदञ्चयन्कुचयुगप्रोदच्चिनीलाञ्चलम् ।

यद्भूमन्तरङ्गिताञ्चितदृशा सावज्ञमालोकित-
स्तद्गर्वादवधीरितोऽस्मि न पुनः कान्ते कृतार्थाकृतः ॥'

अथ ललितम्—

सुकुमाराङ्गविन्यासो मसृणो ललितं भवेत् ॥ ४१ ॥

यथा ममैव—

‘सम्रभङ्गं करकिसलयावर्तनैरालपन्ती
सा पश्यन्ती ललितललितं लोचनस्याञ्चलेन ।
विन्यस्यन्ती चरणकमले लीलया स्वैरयातै-
र्निःसंगीतं प्रथमवयसा नर्तिता पङ्कजाक्षी ॥’

अथ विहृतम्—

प्राप्तकालं न यद्भूयाद्भीडया विहृतं हि तत् ।

प्राप्तावसरस्यापि वाक्यस्य लज्जया यदवचनं तद्विहृतम् । यथा (अमर०
श्लो० १३६)—

‘पादाङ्गुष्ठेन भूमिं किसलयरुचिना सापदेशं लिखन्ती
भूयो भूयः क्षिपन्ती मयि सितशबले लोचने लोलतारे ।
वक्त्रं हीनम्रमीषत्स्फुरदधरपुटं वाक्यगर्भं दधाना
यन्मां नोवाच किञ्चित्स्थितमपि हृदये मानसं तदुनोति ॥’

अथ नेतुः कार्यान्तरसहायानाह—

मन्त्री स्वं वोभयं वापि सखा तस्यार्थचिन्तने ॥ ४२ ॥

तस्य नेतुरर्थचिन्तायां तन्त्रावापादिलक्षणायां मन्त्री वात्मा वोभयं वा
सहायः ।

तत्र विभागमाह—

मन्त्रिणा ललितः शेषा मन्त्रिस्वायत्तसिद्धयः ।

उक्तलक्षणो ललितो नेता मन्त्रायत्तसिद्धिः । शेषाः=धीरोदात्तादयः ।

अनियमेन मन्त्रिणा स्वेन वोभयेन वाङ्गीकृतसिद्धय इति ।

धर्मसहायास्तु—

ऋत्विक्पुरोहितौ धर्मे तपस्विब्रह्मवादिनः ॥ ४३ ॥

ब्रह्म=वेदः, तं वदन्ति व्याचक्षते वा तच्छीला ब्रह्मवादिनः, आत्मज्ञानिनो
वा । शेषाः प्रतीताः ।

दुष्टदमनं=दण्डः, तत्सहायास्तु—

सुहृत्कुमाराटविका दण्डे सामन्तसैनिकाः ।

स्पष्टम् । एवं तत्तत्कार्यान्तरेषु सहायान्तराणि योज्यानि । यदाह—

अन्तःपुरे वर्षवराः किराता मूकवामनाः ॥ ४४ ॥

श्लेच्छाभीरशकाराद्याः स्वस्वकार्योपयोगिनः ।

शकारः=राज्ञः श्यालो हीनजातिः ।

विशेषान्तरमाह—

ज्येष्ठमध्याधमत्वेन सर्वेषां च त्रिरूपता ॥ ४५ ॥

तारतम्याद्यथोक्तानां गुणानां चोत्तमादिता ।

एवं प्रागुक्तानां नायकनायिकादूतदूतीमन्त्रिपुरोहितादीनामुत्तममध्यमाधम-
भावेन त्रिरूपता । उत्तमादिभावश्च न गुणसंख्योपचयापचयेन किं तर्हि गुण-
तिशयतारतम्येन ।

एवं नाट्ये विधातव्यो नायकः संपरिच्छदः ॥ ४६ ॥

उक्तो नायकः, तद्यापारस्तूच्यते—

तद्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा तत्र कैशिकी ।

गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुः शृङ्गारचेष्टितैः ॥ ४७ ॥

प्रवृत्तिरूपो नेतृव्यापारस्वभावः=वृत्तिः । सा च कैशिकी-सात्त्वती-आरभटी-
भारती-भेदाच्चतुर्विधा । तासां गीतनृत्यविलासकामोपभोगाद्युपलक्ष्यमाणो मृदुः
शृङ्गारी कामफलावच्छिन्नो व्यापारः कैशिकी । सा तु—

नर्मतत्स्फुञ्जतत्स्फोटतद्भैश्चतुरङ्गिका ।

तदित्यनेन सर्वत्र नर्म परामृश्यते ।

तत्र—

वैदग्ध्यक्रीडितं नर्म प्रियोपच्छन्दनात्मकम् ॥ ४८ ॥

हास्येनैव सशृङ्गारभयेन विहितं त्रिधा ।

आत्मोपक्षेपसंभोगमनैः शृङ्गार्यपि त्रिधा ॥ ४९ ॥

शुद्धमङ्गं भयं द्वेधा त्रेधा वाग्वेषचेष्टितैः ।

सर्वं सहास्यमित्येवं नर्माष्टादशधोदितम् ॥ ५० ॥

अग्राम्य इष्टजनार्जनरूपः परिहासः=नर्म । तच्च शुद्धहास्येन सशृङ्गार-
हास्येन सभयहास्येन च रचितं त्रिविधम् । शृङ्गारवदपि खानुरागनिवेदन-संभोगे-
च्छाप्रकाशन-सापराधप्रियप्रतिभेदनैस्त्रिविधमेव । भयनर्मापि शुद्धरसान्तराङ्गभावा-
द्विविधम् । एवं षड्विधस्य प्रत्येकं वाग्वेषचेष्टाव्यतिकरेणाष्टादशविधत्वम् ।

तत्र वचो हास्यनर्म यथा (कुमार० ७।१९)—

‘पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम् ।

सा रजयित्वा चरणौ कृताशीर्मात्येन तां निर्वचनं जघान ॥’

वेषनर्म यथा नागानन्दे विदूषकशेखरकव्यतिकरे । क्रियानर्म यथा माल-
विकाग्निमित्रे (पृ० ८१) उत्त्वप्रायमानस्य विदूषकस्योपरि निपुणिका सर्पभ्रमकारणं
दण्डकाष्ठं पातयति । एवं वक्ष्यमाणेष्वपि वाग्वेषचेष्टापरत्वमुदाहार्यम् ।

शृङ्गारवदात्मोपक्षेपनर्म यथा—

‘मध्याह्नं गमय लज श्रमजलं स्थित्वा पयः पीयतां

मा शून्येति विमुञ्च पान्थ विवशः शीतः प्रपामण्डपः ।

तामेव स्मर घस्मरस्मरशरत्रस्तां निजप्रेयसीं

त्वच्चित्तं तु न रञ्जयन्ति पथिक प्रायः प्रपापालिकाः ॥'

संभोगनर्म यथा—

‘सालोए विवअ सूरे घरिणी घरसामिअस्स घेतूण ।

णेच्छं तस्स वि पाए धुअइ हसंती हसंतस्स ॥’ (गाथा० २।३०)

माननर्म यथा—

‘तदवितथमवादीर्यन्मम लं प्रियेति प्रियजनपरिभुक्तं यदुकूलं दधानः ।

मदधिवसति मागाः कामिनां मण्डनश्रीर्त्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन ॥’

भयनर्म यथा रत्नावल्यामालेख्यदर्शनावसरे—‘**सुसंगता**—जाणिदो मए एसो सव्वो वुत्तंतो समं चित्तफलएण । ता देवीए णिवेदइस्सं ।’ इत्यादि ।

शृङ्गाराङ्गं भयनर्म । यथा ममैव—

‘अभिव्यक्तालीकः सकलविफलोपायविभव-

श्चिरं ध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरम्भनिपुणम् ।

इतः पृष्ठे पृष्ठे किमिदमिति संत्रास्य सहसा

कृताश्लेषं धूर्तः स्मितमधुरमालिङ्गति बधूम् ॥’

अथ **नर्मस्फिञ्जः**—

नैर्मस्फिञ्जः सुखारम्भो भयान्तो नवसंगमे ।

यथा मालविकाग्निमित्रे (४।१३) संकेते नायकमभिरुतायां नायिकायां नायकः—

‘विस्मज सुन्दरि संगमसाध्वसं ननु चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे ।

परिगृहाण गते सहकारतां लमतिमुक्तलताचरितं मयि ॥

मालविका—‘मैट्टा, देवीए भयेण अत्तणो वि पिअं काउं ण पारेमि’ इत्यादि ।

अथ **नर्मस्फोटः**—

नर्मस्फोटस्तु भावानां सूचितोऽल्पपरसो लवैः ॥ ५१ ॥

यथा मालतीमाधवे (१।२०)—‘**मकरन्दः**—

गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरमसौष्ठवं

ध्वसितमधिकं किं न्वेतत्स्यात्किमन्यदतोऽथ वा ।

भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवनं

ललितमधुरास्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीरताम् ॥’

इत्यत्र गमनादिभिर्भावलेखैर्माधवस्य मालत्यामनुरागः स्तोकः प्रकाश्यते ।

१ ‘सालोके एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिकस्य गृहीत्वा ।

अनिच्छतोऽपि पादौ धुनोति हसन्ती हसतः ॥’ इति च्छाया.

२ ‘ज्ञातो मयैव सर्वो वृत्तान्तः सह चित्रफलकेन । तदेवैव निवेदयिष्यामि ।’ इति च्छाया.

३ ‘नर्मस्फिञ्जः’ इति पाठः.

४ ‘भर्तुः, देव्या भयेनात्मनोऽपि प्रियं कर्तुं न पारयामि ।’ इति च्छाया.

अथ नर्मगर्भः—

छन्ननेत्रप्रतीचारो नर्मगर्भोऽर्थहेतवे ।

अङ्गैः सहास्यनिर्हास्यैरेभिरेषात्र कैशिकी ॥ ५२ ॥

यथाऽमरुशतके (श्लो० १९)—

‘दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-

देकस्या नयने विमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः ।

ईषद्वक्तिकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-

मन्तर्हासलसत्कपोलफलां धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥’

यथा प्रियदर्शिकायां गर्भाङ्गे वत्सराजवेषसुसंगतास्थाने साक्षाद्वत्सराज-
प्रवेशः ।

अथ सात्त्वती—

विशोका सात्त्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवैः ।

संलापोत्थापकावस्यां साङ्गात्यः परिवर्तकः ॥ ५३ ॥

शोकहीनः सत्त्वशौर्यत्यागदयार्हर्षादिभावोत्तरो नायकव्यापारः=सात्त्वती ।
तदङ्गानि च संलापोत्थापकसाङ्गात्यपरिवर्तकाख्यानि ।

तत्र—

संलापको गगीरोक्तिर्नानाभावरसा मिथः ।

यथा वीरचरिते (पृ० ६८-६९)—‘रामः—अयं स यः किल सपरिवार-
कार्तिकेयविजयावर्जितेन भगवता नीललोहितेन परिवत्सरसहस्रान्तेवासिने तुभ्यं
प्रसादीकृतः परशुः । परशुरामः—राम राम दाशरथे, स एवायमाचार्यपादानां
प्रियः परशुः,—

शस्त्रप्रयोगखुरलीकलहे गणानां सैन्यवृत्तो विजित एव मया कुमारः ।

एतावतापि परिरभ्य कृतप्रसादः प्रादादमुं प्रियगुणो भगवान्गुरुर्मे ॥’

(वीर० २।३४)

इत्यादिनानाप्रकारभावरसेन रामपरशुरामयोरन्योन्यगभीरवचसा संलाप इति ।

अथोत्थापकः—

उत्थापकस्तु यत्रादौ युद्धायोत्थापयेत् परम् ॥ ५४ ॥

यथा वीरचरिते (५।४९)—

‘आनन्दाय च विस्मयाय च मया दृष्टोऽसि दुःखाय वा

वैतृष्ण्यं नु कुतोऽद्य संप्रति मम लक्ष्मणे चक्षुषः ।

लत्सांगल्यसुखस्य नास्मि विषयः किं वा बहुव्याहृतै-

रस्मिन्निवश्रुतजामदग्न्यविजये बाहौ धनुर्जृम्भताम् ॥’

अथ साङ्गात्यः—

मन्त्रार्थदैवशक्त्यादेः साङ्गात्यः सङ्गमेदनम् ।

मन्त्रशक्त्या, यथा मुद्राराक्षसे राक्षससहायादीनां चाणक्येन खबुद्ध्या भेदनम् । अर्थशक्त्या तत्रैव, यथा पर्वतकाभरणस्य राक्षसहस्तगमनेन मलय-केतुसहोत्थायिभेदनम् । दैवशक्त्या तु, यथा रामायणे रामस्य दैवशक्त्या रावणाद्विभीषणस्य भेद इत्यादि ।

अथ परिवर्तकः—

प्रारब्धोत्थानकार्यान्यकरणात् परिवर्तकः ॥ ५५ ॥

प्रस्तुतस्योद्योगकार्यस्य परित्यागेन कार्यान्तरकरणं=परिवर्तकः । यथा वीर-चरिते (२।३८)—

‘हेरम्बदन्तमुसलोल्लिखितैकभित्ति वक्षो विशाखविशिखव्रणलाञ्छनं मे ।

रोमाञ्चकञ्चुकितमद्भुतवीरलाभाद्यत्सल्यमद्य परिरब्धुमिवेच्छति त्वाम् ॥

रामः—भगवन्, परिरम्भणमिति प्रस्तुतप्रतीपमेतत् ।’ इत्यादि ।

सात्त्वतीमुपसंहरन्नारभटीलक्षणमाह—

एभिरङ्गैश्चतुर्धैर्यं सात्त्वत्यारभटी पुनः ।

मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ॥ ५६ ॥

संक्षितिका स्यात्संफेटो वस्तूत्थानावपातने ।

मायामन्त्रबलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनम् । तन्त्रबलादिन्द्रजालम् ।

तत्र—

संक्षिप्तवस्तुरचना संक्षितिः शिल्पयोगतः ॥ ५७ ॥

पूर्वनेतृनिवृत्त्यान्ये नेत्रन्तरपरिग्रहः ।

मृद्वंशदलचर्मादिद्रव्ययोगेन वस्तूत्थापनं संक्षितिः । यथोदयनचरिते किलि-जहस्थिप्रयोगः । पूर्वनायकावस्थानिवृत्त्यावस्थान्तरपरिग्रहमन्ये संक्षितिकं मन्यन्ते । यथा वालिनिवृत्त्या सुग्रीवः । यथा च परशुरामस्यौद्धत्यनिवृत्त्या शान्तत्वापादनं ‘पुण्या ब्राह्मणजातिः—’ (वीर० ४।२२) इत्यादिना ।

अथ संफेटः—

संफेटस्तु समाघातः क्रुद्धसंरब्धयोर्द्वयोः ॥ ५८ ॥

यथा माधवाचोरघण्टयोर्मालतीमाधवे । इन्द्रजिह्वक्ष्मणयोश्च रामायणप्रतिब-द्धवस्तुषु ।

अथ वस्तूत्थापनम्—

मायाद्युत्थापितं वस्तु वस्तूत्थापनमिष्यते ।

यथोदात्तराघवे,—

‘जीयन्ते जयिनोऽपि सान्द्रतिमिरव्रातैर्वियव्यापिभि-

र्भास्वन्तः सकला रवेरपि रुचः कस्मादकस्मादमी ।

एतैश्चोपक्रबन्धरन्ध्ररुधिरैराध्यायमानोदरा

मुच्चन्याननकन्दरानलमुचस्तीव्रारवाः फेरवाः ॥

इत्यादि ।

अथावपातः—

अवपातस्तु निष्कामप्रवेशत्रासविद्रवैः ॥ ५९ ॥

यथा रत्नावल्याम् (२१२)—

‘कण्ठे कृत्वावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्ष-

न्कान्त्वा द्वाराणि हेलावलचरणवलत्किङ्किणीचक्रवालः ।

दत्तातङ्को गजानामनुसृतसरणिः संभ्रमादध्वपालैः

प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरातः ॥’

‘नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाभावादकृत्वा त्रपा-

मन्तः कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः ।

पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैः कृतं

कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाशङ्किनः ॥’ (रत्ना० २१३)

यथा च प्रियदर्शिकायां प्रथमेऽङ्के विन्ध्यकेत्ववस्कन्दे ।

उपसंहरति—

एभिरङ्गैश्चतुर्थेयं नार्थवृत्तिरतः परा ।

चतुर्थी भारती सापि वाच्या नाटकलक्षणे ॥ ६० ॥

कैशिकीं सात्त्वतीं चार्थवृत्तिमारभटीमिति ।

पठन्तः पञ्चमीं वृत्तिमौद्गटाः प्रतिजानते ॥ ६१ ॥

सा तु लक्ष्ये क्वचिदपि न दृश्यते न चोपपद्यते रसेषु हास्यादीनां भार-
त्यात्मकत्वात् । नीरसस्य च काव्यार्थस्य चाभावात् । तिस्र एवैता अर्थवृत्तयः ।
भारती तु शब्दवृत्तिरामुखसङ्गत्वात्तत्रैव वाच्या ।

वृत्तिनियममाह—

शृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः ।

रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती ॥ ६२ ॥

देशभेदभिन्नवेपादिस्तु नायकादिव्यापारः प्रवृत्तिरिलाह—

देशभाषाक्रियावेषलक्षणाः स्युः प्रवृत्तयः ।

लोकादेवावगम्यैता यथौचित्यं प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥

तत्र पाठ्यं प्रति विशेषः—

पाठ्यं तु संस्कृतं नृणामनीचानां कृतात्मनाम् ।

लिङ्गिनीनां महादेव्या मन्त्रिजावेश्ययोः क्वचित् ॥ ६४ ॥

क्वचिदिति देवीप्रभृतीनां संबन्धः ।

स्त्रीणां तु प्राकृतं प्रायः शौरसेन्यधमेषु च ।

१ ‘अधिगम्य’, ‘उपगम्य’, ‘अनुगम्य’ इति पाठाः. २ ‘शूरसेनी’, ‘सौरसेनी’
इति पाठौ.

प्रकृतेरागतं प्राकृतम् । प्रकृतिः संस्कृतं तद्भवं तत्समं देशीत्यनेकप्रकारम् ।
शौरसेनी मागधी च स्वशास्त्रनियते ।

पिशाचात्यन्तनीचादौ पैशाचं मागधं तथा ॥ ६५ ॥

यदेशं नीचपात्रं यत्तदेशं तस्य भाषितम् ।

कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः ॥ ६६ ॥

स्पष्टार्थमेतत् ।

आमन्त्रयामन्त्रकौचित्येनामन्त्रणमाह—

भगवन्तो वरैर्वाच्या विद्वद्देवर्षिलिङ्गिनः ।

विप्रामात्याग्रजाश्चाऽऽर्या नटीसूत्रभृतौ मिथः ॥ ६७ ॥

आर्याविति संबन्धः ।

रथी सूतेन चायुष्मान् पूज्यैः शिष्यात्मजानुजाः ।

वत्सेति तातः पूज्योऽपि सुगृहीताभिधस्तु तैः ॥ ६८ ॥

अपिशब्दात् पूज्येन शिष्यात्मजानुजास्तातेति वाच्याः । सोऽपि तैस्तातेति
सुगृहीतमाना चेति ।

भावोऽनुगेन सूत्री च मार्षेत्येतेन सोऽपि च ।

सूत्रधारः पारिपार्श्वकेन भाव इति वक्तव्यः । स च सूत्रिणा मार्ष इति ।

देवः स्वामीति नृपतिर्भृत्यैर्भट्टेति चाधमैः ॥ ६९ ॥

आमन्त्रणीयाः पतिवज्ज्येष्ठमध्याधमैः स्त्रियः ।

विद्वद्देवादिव्रियो भर्तृवदेव देवरादिभिर्वाच्याः ।

तत्र स्त्रियं प्रति विशेषः ।

समा हलेति प्रेष्या च हञ्जे वेद्योऽङ्गुका तथा ॥ ७० ॥

कुट्टिन्यम्बेत्यनुगतैः पूज्या वा जरती जनैः ।

विदूषकेण भवती रौन्नी चेटीति शब्दयते ॥ ७१ ॥

पूज्या जरती अम्बेति । स्पष्टमन्यत् ।

चेष्टागुणोदाहृतिसत्त्वभावानशेषतो नेतृदशाविभिन्नान् ।

को वक्तुमीशो भरतो न यो वा यो वा न देवः शशिखण्डमौलिः ॥ ७२ ॥

दिङ्मात्रं दर्शितमित्यर्थः । चेष्टाः=लीलाद्याः, गुणाः=विनयाद्याः, उदाहृतयः=
संस्कृतप्राकृताद्या उक्तयः, सत्त्वं=निर्विकारात्मकं मनः, भावः=सत्त्वस्य प्रथमो
विकारः, तेन हावादयो ह्युपलक्षिताः ॥

इति श्रीविष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोक्ये

नेतृप्रकाशो नाम द्वितीयः प्रकाशः समाप्तः ।

१ 'शौरसेनी' इति पाठः. २ 'अर्जका' इति पाठः. ३ 'कुट्टिन्यनुगतैः पूजा अम्बेति
युवतीजनैः' इति पाठः. ४ 'राज्ञा' इति पाठः.

तृतीयः प्रकाशः ।

बहुवक्तव्यतया रसविचारतिलङ्घनेन वस्तुनेतृरसानां विभज्य नाटकादिषु-
पयोगः प्रतिपाद्यते—

प्रकृतित्वादन्येषां भूयोरसपरिग्रहात् ।

संपूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते ॥ १ ॥

उद्दिष्टधर्मकं हि नाटकमनुद्दिष्टधर्माणां प्रकरणादीनां प्रकृतिः । शेषं प्रतीतम् ।
तत्र—

पूर्वरङ्गं विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते ।

प्रविश्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः ॥ २ ॥

पूर्वं रज्यतेऽस्मिन्निति पूर्वरङ्गो नाट्यशाला । तत्स्थप्रथमप्रयोगव्युत्थापनादौ
पूर्वरङ्गता । तं विधाय विनिर्गते प्रथमं सूत्रधारे तद्वदेव वैष्णवस्थानकादिना
प्रविश्यान्यो नटः काव्यार्थं स्थापयेत् । स च काव्यार्थस्थापनात् सूचनात् स्थापकः ।

दिव्यमर्त्यं स तद्रूपो मिश्रमन्यतरस्तयोः ।

सूचयेद्वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा ॥ ३ ॥

स स्थापको दिव्यं वस्तु दिव्यो भूत्वा मर्त्यं च मर्त्यरूपो भूत्वा मिश्रं च
दिव्यमर्त्ययोरन्यतरो भूत्वा सूचयेत् । वस्तु=बीजं मुखं पात्रं वा । वस्तु यथोदा-
त्तराधवे—

‘रामो मूर्ध्नि निधाय काननमगान्मालामिवाज्ञां गुरो-

स्तङ्गत्त्या भरतेन राज्यमखिलं मात्रा सहैवोज्जितम् ।

तौ सुग्रीवविभीषणावनुगतौ नीतौ परां संपदं

प्रोदृत्ता दशकन्धरप्रनृतयो ध्वस्ताः समस्ता द्विषः ॥’

बीजं यथा रत्नावल्याम् (११६)—

‘द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तत् ।

आनीय क्षटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥’

मुखं यथा—

‘आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः ।

उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशास्यमिव संभृतबन्धुजीवः ॥’

पात्रं यथा शाकुन्तले (११५)—

‘तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।

एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ॥’

रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः ।

ऋतुं कंचिदुपादाय भारतीं वृत्तिमाश्रयेत् ॥ ४ ॥

रङ्गस्य प्रशस्तिं काव्यार्थानुगतार्थैः श्लोकैः कृत्वा,—

‘औत्सुक्येन कृतवरा सहभुवा व्यावर्तमाना हिया

तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः ।

दृष्ट्वाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे संगमे
संरोहत्पुलका हरेण हसताश्लिष्टा शिवा पातु वः ॥' (रत्ना० ११२)
इत्यादिभिरेव भारतीं वृत्तिमाश्रयेत् ।

सा तु,—

भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः ।

भेदैः प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनानुमुखैः ॥ ५ ॥

पुरुषविशेषप्रयोज्यः संस्कृतबहुलो वाक्प्रधानो नटाश्रयो व्यापारः=भारती ।
प्ररोचनावीथीप्रहसनानुखानि चास्यामङ्गानि ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना ।

प्रस्तुतार्थप्रशंसनेन श्रोतॄणां प्रवृत्त्युन्मुखीकरणं=प्ररोचना । यथा रत्नाव-
ल्याम् (११५)—

‘श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदयेषा गुणग्राहिणी

लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् ।

वस्त्वैकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुन-

र्मङ्गाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ॥’

वीथी प्रहसनं चापि स्वप्रसङ्गेऽभिधास्यते ॥ ६ ॥

वीथ्यङ्गान्यामुखाङ्गत्वादुच्यन्तेऽत्रैव तत्पुनः ।

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाथ विदूषकम् ॥ ७ ॥

स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ।

प्रस्तावना वा तत्र स्युः कथोद्धातः प्रवृत्तकम् ॥ ८ ॥

प्रयोगातिशयश्चाथ वीथ्यङ्गानि त्रयोदश ।

तत्र कथोद्धातः—

‘स्वेतिवृत्तिसमं वाक्यमर्थं वा यत्र सूत्रिणः ॥ ९ ॥

गृहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्धातो द्विधैव सः ।’

वाक्यं यथा रत्नावल्याम् (११६)—‘यौगंधरायणः—द्वीपादन्यस्मादपि—’
इति ।

वाक्यार्थं यथा वेणीसंहारे (११७)—‘भीमः—

निर्वाणवैरिदहनाः प्रशमादरीणां नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह केशवेन ।

रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविप्रहाश्च स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ॥’

ततोऽर्थेनाह (वे० सं० ११८)—‘भीमः—

लाक्षागृहानलविषात्रसभाप्रवेशैः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।

आकृष्टपाण्डवधूपरिधानकेशाः स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ॥’

अथ प्रवृत्तकम्—

कालसाम्यसमाक्षितप्रवेशः स्यात् प्रवृत्तकम् ॥ १० ॥

प्रवृत्तकालसमानगुणवर्णनया सूचितपात्रप्रवेशः=प्रवृत्तकम् । यथा—

‘आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः प्रातः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः ।

उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशास्यमिव संभृतबन्धुजीवः ॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो रामः ।)’

अथ प्रयोगातिशयः—

एषोऽयमित्युपक्षेपात् सूत्रधारप्रयोगतः ।

पात्रप्रवेशो यत्रैव प्रयोगातिशयो मतः ॥ ११ ॥

यथा—‘एष राजेव दुष्यन्तः’ इति ।

अथ वीथ्यङ्गानि—

उद्धात्यकावलगिते प्रपञ्चत्रिगते छलम् ।

वाक्केल्यधिवले गण्डमवस्यन्दितनालिके ॥ १२ ॥

असत्प्रलापव्याहारमृदवानि त्रयोदश ।

तत्र—

गूढार्थपदपर्यायमाला प्रश्नोत्तरस्य वा ॥ १३ ॥

यत्रान्योन्यं समालापो द्वेधोद्धात्यं तदुच्यते ।

गूढार्थं पदं तत्पर्यायश्वेत्येवं माला । प्रश्नोत्तरं चेत्येवं वा माला । द्वयोरुक्ति-
प्रयुक्तौ तद्विविधमुद्धात्यकम् । तत्राद्यं विक्रमोर्वश्यां यथा—‘विदूषकः—भो
वअस्स, को एसो कामो जेण तुमं पि दूमिजसे । सो किं पुरिसो आदु इत्थिअ त्ति ।
राजा—सखे,—

मनोजातिरनाधीना सुखेध्वेव प्रवर्तते ।

ब्रह्मस्य ललितो मार्गः काम इत्यभिधीयते ॥

विदूषकः—एवं पि ण जाणे । राजा—वयस्य, इच्छाप्रभवः स इति ।

विदूषकः—किं^१ जो जं इच्छादि सो तं कामेदित्ति । राजा—अथ किम् ।

विदूषकः—तां जाणिदं जह अहं सूअआरसालाए भोअणं इच्छामि ।’

द्वितीयं यथा पाण्डवानन्दे—

‘का श्लाघ्या गुणिनां क्षमा परिभवः को यः स्वकुल्यैः कृतः

किं दुःखं परसंश्रयो जगति कः श्लाघ्यो य आश्रीयते ।

को मृत्युर्व्यसनं शुचं जहति के यैर्निर्जिताः शत्रवः

कैर्विज्ञातमिदं विराटनगरे छन्नस्थितैः पाण्डवैः ॥’

१ ‘भो वयस्य, क एष कामो येन त्वमपि दूयसे । स किं पुरुषोऽथवा स्त्रीति ।’
इति च्छाया. २ ‘एवमपि न जानामि ।’ इति च्छाया. ३ ‘किं यो यदिच्छति
सं तत्कामयतीति ।’ इति च्छाया. ४ ‘तज्ज्ञातं यथाहं सूअकारशालायां भोजन-
मिच्छामि ।’ इति च्छाया.

अथावलगितम्—

यत्रैकत्र समावेशात् कार्यमन्यत्प्रसाध्यते ॥ १४ ॥

प्रस्तुतेऽन्यत्र वान्यत्स्यात्तच्चावलगितं द्विधा ।

तत्राद्यं यथोत्तरचरिते समुत्पन्नवनविहारगर्भदोहदायाः सीताया दोहदकार्येऽनु-
प्रविश्य जनापवादादरण्ये त्यागः । द्वितीयं यथा छलितरामे—‘रामः—लक्ष्मण,
तातवियुक्तामयोध्यां विमानस्थो नाहं प्रवेष्टुं शक्नोमि । तद्वतीर्य गच्छामि ।

कोऽपि सिंहासनस्याधः स्थितः पादुक्रयोः पुरः ।

जटावानक्षमाली च चामरी च विराजते ॥’

इति भरतदर्शनकार्यसिद्धिः ।

अथ प्रपञ्चः—

असद्भूतं मिथः स्तोत्रं प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः ॥ १५ ॥

असद्भूतेनार्थेन पारदार्यादिनैपुण्यादिना याऽन्योन्यस्तुतिः स प्रपञ्चः । यथा
कर्पूरमञ्जर्याम्—‘भैरवानन्दः—

‘रंढा चंडा दिक्खिदा धम्मदारा मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ ।

भिक्खा भोजं चम्मखंडं च सेज्जा कोलो धम्मो कस्स णो होइ रम्मो ॥’

अथ त्रिगतम्—

श्रुतिसाम्यादनेकार्थयोजनं त्रिगतं त्विह ।

नटादित्रितयालापः पूर्वरङ्गे तदिष्यते ॥ १६ ॥

यथा विक्रमोर्वश्याम् (१।३)—

‘मत्तानां कुसुमरसेन षट्पदानां शब्दोऽयं परभृतनाद एष धीरः ।

कैलासे सुरगगसेविते समन्तात्किन्नर्यः कलमधुराक्षरं प्रगीताः ॥’

अथ छलनम्—

प्रियाभैरप्रियैर्वाक्यैर्विलोभ्य छलनाच्छलम् ।

यथा वेणीसंहारे (५।२६)—‘भीमार्जुनौ—

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी

राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रम् ।

कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनपटुः पाण्डवा यस्य दासाः

क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत पुरुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः ॥’

१ ‘असद्भूतमिथः स्तोत्रं’ इति पाठः.

२ ‘रंढा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च ।

भिक्षा भोज्यं चर्मखण्डं च शय्या कौलो धर्मः कस्य न भवति रम्यः ॥’
इति च्छाया. ३ ‘छलना’ इति पाठः.

अथ वाक्केली—

विनिवृत्त्यास्य वाक्केली द्वित्रिः प्रत्युक्तितोऽपि वा ॥ १७ ॥

अस्येतिवाक्यस्य प्रकान्तस्य साकाङ्क्षस्य विनिवर्तनं=वाक्केली । द्वित्रिर्वा उक्ति-
प्रत्युक्तयः । तत्राद्या यथोत्तरचरिते (३।२६)—‘वासन्ती—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुसृज्य मुग्धां तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥’

उक्तिप्रत्युक्तितो यथा रत्नावल्याम् (पृ० ३०)—‘विदूषकः—‘भोदि मअणिए,
मं पि एदं चच्चरिं सिक्खावेहि ।’ ‘मदनिका—‘हंदास, ण वखु एसा
चच्चरी । दुवदिखंडअं वखु एदं । विदूषकः—‘भोदि, किं एदिणा
खंडेण मोदआ करीअंति । मदनिका—‘णहि । पढीअदि वखु एदं ।’ इत्यादि ।

अथाधिवलम्—

अन्योन्यवाक्याधिकयोक्तिः स्पर्धयाऽधिवलं भवेत् ।

यथा वेणीसंहारे (५।२७)—‘अर्जुनः—

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।

रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डुपुत्रः ॥’

इत्युपक्रमे ‘राजा—अरे, नाहं भवानिव विक्रथनाप्रगल्भः । किंतु,—

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।

मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकामङ्गभीषणम् ॥’ (वे० सं० ५।३४)

इत्यन्तेन भीमदुर्योधनयोरन्योन्यवाक्यस्याधिकयोक्तिरधिवलम् ।

अथ गण्डः—

गण्डः प्रस्तुतसंबन्धिभिन्नार्थं सहसोदितम् ॥ १८ ॥

यथोत्तरचरिते (१।३८)—‘रामः—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-

रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्चन्दनरसः ।

अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः

किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥

(प्रविश्य) प्रतीहारी—देवै, उअत्थिदो । रामः—अयि, कः ? प्रतीहारी—
देवैस्स आसणपरिचारओ दुम्महो ।’ इति ।

१ ‘भवति मदनिके, मामप्येतां चर्चरीं शिक्षय ।’ इति च्छाया. २ ‘हंदास, न खल्वेषा चर्चरी । द्विपदीखण्डकं खल्वेतत् ।’ इति च्छाया. ३ ‘भवति, किमेतेन खण्डेन मोदकाः क्रियन्ते ।’ इति च्छाया. ४ ‘नहि । पठ्यते खल्वेतत् ।’ इति च्छाया. ५ ‘देव, उपस्थितः ।’ इति च्छाया. ६ ‘देवस्यासन्नपरिचारको दुर्मुखः ।’ इति च्छाया.

अथावस्यन्दितम्—

रसोक्तस्यान्यथा व्याख्या यत्रावस्यन्दितं हि तत् ।

यथा छलितरामे—‘सीता—जाद, कलं कखु तुम्हेहिं अजुज्झाए गंतव्वं । तहिं सो राआ विणएण णमिदव्वो । लवः—अम्ब, किमावाभ्यां राजोपजी-विभ्यां भवितव्यम् ? सीता—जाद, सो कखु तुम्हाणं पिदा । लवः—किमा-वयो रघुपतिः पिता ? सीता—(साशङ्कम् ।) जाद, ण कखु परं तुम्हाणं । सअलाए जेव्व पुहवीए ।’ इति ।

अथ नालिका—

सोपहासा निगूढार्था नालिकैव प्रहेलिका ॥ १९ ॥

यथा मुद्राराक्षसे—(पृ० ७२) ‘चरः—हंहो बम्हण, मा कुप्प । किं पि तुह उअज्झाओ जाणादि । किं पि अम्हारिसा जणा जाणंति । शिष्यः—किमस्मदुपाध्यायस्य सर्वज्ञत्वमपहर्तुमिच्छसि ? चरः—यदि दे उअज्झाओ सव्वं जाणादि ता जाणाहु दाव कस्स चंदो अणभिप्पेदो त्ति । शिष्यः—किमनेन ज्ञातेन भवति ?’ इत्युपक्रमे ‘चाणक्यः—चन्द्रगुप्तादपरक्तान् पुरुषाजानामि ।’ इत्युक्तं भवति ।

अथासत्प्रलापः—

असंबद्धकथाप्रायोऽसत्प्रलापो यथोत्तरः ।

ननु चासंबद्धानर्थत्वेऽसंगतिर्नाम वाक्यदोष उक्तः । तन्न । उत्स्वप्रायितम-दोन्मादशैशवादीनामसंबद्धप्रलापितैव विभावः । यथा—

‘अर्चिष्मन्ति विदार्य वक्त्रकुहराण्यासकृतो वासुके-

रङ्गुल्या विपकर्षुरान् गणयतः संस्पृश्य दन्ताङ्कुरान् ।

एकं त्रीणि नवाष्ट सप्त षडिति प्रश्वस्तसंख्याक्रमा

वाचः कौञ्चरिपोः शिशुत्वविकलाः श्रेयांसि पुष्पन्तु वः ॥’

यथा च—

‘हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिस्तस्यास्त्वया हृता ।

विभावितैकदेशेन देयं यदभिगुज्यते ॥’

यथा वा—

‘भुक्ता हि मया गिरयः स्नातोऽहं वह्निना पिबामि वियत् ।

हरिहरहिरण्यगर्भा मत्पुत्रास्तेन नृत्यामि ॥’

१ ‘जात, कल्यं खलु युवाभ्यामयोध्यायां गन्तव्यम् । तहिं स राजा विनयेन नमितव्यः ।’ इति च्छाया. २ ‘जात, स खलु युवयोः पिता ।’ इति च्छाया. ३ ‘जात, न खलु परं युवयोः । सकलाया एव पृथिव्याः ।’ इति च्छाया. ४ ‘हंहो ब्राह्मण, मा कुप्य । किमपि तवोपाध्यायो जानाति । किमप्यसादृशा जना जानन्ति ।’ इति च्छाया. ५ ‘यदि त उपाध्यायः सर्वं जानाति तज्जानातु तावत्कस्य चन्द्रोऽभिप्रेत इति ।’ इति च्छाया. ६ ‘यथोत्तरम्’ इति पाठः ।

अथ व्याहारः—

अन्यार्थमेव व्याहारो हास्यलोभकरं वचः ॥ २० ॥

यथा मालविकामित्रे (पृ० २८-३०) लास्यप्रयोगावसाने—‘(मालविका निर्गन्तुमिच्छति ।) विदूषकः—मां दाव । उवएसमुद्धा गमिस्ससि ।’ इत्युपक्रमे ‘गणदासः—(विदूषकं प्रति ।) आर्य, उच्यतां यस्त्वया क्रममेदो लक्षितः । विदूषकः—पैठमं पच्चूसे बम्हणस्स पूआ भोदि । सा तए लंघिदा । (मालविका स्मयते ।)’ इत्यादिना नायकस्य विश्रब्धनायिकादर्शनप्रयुक्तेन हास्यलोभकारिणा वचनेन व्याहारः ।

अथ मृदवम्—

दोषा गुणा गुणा दोषा यत्र स्युर्मृदवं हि तत् ।

यथा शाकुन्तले (२।५)—

‘भेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः

सत्त्वानामुपलक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।

उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्येचले

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥’

इति मृगयादोषस्य गुणीकारः ।

यथा च—

‘सततमनिर्वृतमानसमायाससहस्रसंकुलक्लिष्टम् ।

गतनिद्रमविश्वसं जीवति राजा जिगीषुरयम् ॥’

इति राज्यगुणस्य दोषीभावः ।

उभयं वा—

‘सन्तः सच्चरितोदयव्यसनिनः प्रादुर्भवद्यन्त्रणाः

सर्वत्रैव जनापवादचकिता जीवन्ति दुःखं संदा ।

अव्युत्पन्नमतिः कृतेन न सता नैवासता व्याकुलो

युक्तायुक्तविवेकशून्यहृदयो धन्यो जनः प्राकृतः ॥’

इति प्रस्तावनाज्ञानि ।

एषामन्यतमेनार्थं पात्रं चाक्षिप्य सूत्रभृत् ॥ २१ ॥

प्रस्तावनान्ते निर्गच्छेत्ततो वस्तु प्रपञ्चयेत् ।

तत्र—

अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान् ॥ २२ ॥

कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः ।

१ ‘मा तावत् । उपदेशमुद्धा गमिष्यसि ।’ इति च्छाया. २ ‘प्रथमं प्रत्यूषे ब्राह्मणस्य पूजा भवति । सा तथा लङ्घिता ।’ इति च्छाया. ३ ‘अभिगमि’, ‘अधिगम्य’ इति पाठौ.

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः ॥ २३ ॥

तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् ।

यत्रेतिवृत्ते सत्यवागसंवादकारिणीतिशास्त्रप्रसिद्धाभिगामिकादिगुणयुक्तो रामा-
यणमहाभारतादिप्रसिद्धो धीरोदात्तो राजर्षिर्दिव्यो वा नायकस्तत्प्रख्यातमेवात्र
नाटक आधिकारिकं वस्तु विधेयमिति ।

यत्तत्रानुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा ॥ २४ ॥

विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।

यथा छद्मना वालिवधो मायुराजेनोदात्तराघवे परित्यक्तः ।

वीरचरिते तु रावणसौहृदेन वाली रामवधार्थमागतो रामेण हत इत्य-
न्यथा कृतः ।

अद्यन्तमेवं निश्चित्य पञ्चधा तद्विभज्य च ॥ २५ ॥

खण्डशः संधिसंज्ञांश्च विभागानपि खण्डयेत् ।

अनौचित्यरसविरोधपरिहारपरिशुद्धीकृतसूचनीयदर्शनीयवस्तुविभागफलानुसा-
रेणोपकृष्टवीजविन्दुपताकाप्रकरीकार्यलक्षणार्थप्रकृतिकं पञ्चावस्थानुगुण्येन पञ्चधा
विभजेत् । पुनरपि चैकैकस्य भागस्य द्वादश त्रयोदश चतुर्दशेत्येवमङ्गसंज्ञानां
संघीनां विभागान् कुर्यात् ।

चतुःषष्टिस्तु तानि स्युरङ्गानीत्यपरं तथा ॥ २६ ॥

पताकावृत्तमप्यूनमेकाद्यैरनुसंधिभिः ।

अङ्गान्यत्र यथालाभमसंधिं प्रकरीं न्यसेत् ॥ २७ ॥

अपरमपि प्रासङ्गिकमिति वृत्तमेकाद्यैरनुसंधिभिर्न्यूनमिति प्रधानेतिवृत्तादेक-
द्वित्रिचतुर्भिरनुसंधिभिर्नूनं पताकेतिवृत्तं न्यसनीयम् । अङ्गानि च प्रधानावि-
रोधे यथालाभं न्यसनीयानि । प्रकरीतिवृत्तं लपरिपूर्णसंधि विधेयम् ।

तत्रैवं विभक्ते—

आदौ विष्कम्भकं कुर्यादङ्गं वा कार्ययुक्तितः ।

इयमत्र कार्ययुक्तिः ।

अपेक्षितं परित्यज्य नीरसं वस्तुविस्तरम् ॥ २८ ॥

यदा संदर्शयेच्छेषं कुर्याद्विष्कम्भकं तदा ।

यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते ॥ २९ ॥

आदावेव तदाङ्गः स्यादामुखाक्षेपसंश्रयः ।

स च—

प्रत्यक्षनेतृचरितो विन्दुव्याप्तिपुरस्कृतः ॥ ३० ॥

अङ्गो नानाप्रकारार्थसंविधानरसाश्रयः ।

रङ्गप्रवेशे साक्षाद्निर्दिश्यमाननायकव्यापारो विन्दूपक्षेपार्थपरिमितोऽनेकप्रयोज-
नसंविधानरसाधिकरण उत्सङ्ग इवाङ्गः ।

तत्र च—

अनुभावविभावाभ्यां स्थायिना व्यभिचारिभिः ॥ ३१ ॥

गृहीतमुक्तैः कर्तव्यमङ्गिनः परिपोषणम् ।

अङ्गिन एवाङ्गिरसस्थायिनः संग्रहात् स्थायिनेति रसान्तरस्थायिनो ग्रहणम् ।
गृहीतमुक्तैः परस्परव्यतिकीर्णैरित्यर्थः ।

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत् ॥ ३२ ॥

रसं वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलंकारलक्षणैः ।

कथासंव्यङ्गोपमादिलक्षणैर्भूषणादिभिः ।

एको रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीरः शृङ्गार एव वा ॥ ३३ ॥

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।

ननु च रसान्तरस्थायिनेत्यनेनैव रसान्तराणामङ्गत्वमुक्तम् । तन्न । यत्र
रसान्तरस्थायी स्वानुभावविभावव्यभिचारियुक्तो भूयसोपनिबध्यते तत्र रसा-
न्तराणामङ्गत्वम् । केवलस्थाय्युपनिबन्धे तु स्थायिनो व्यभिचारितैव ।

दूराध्वानं चयं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम् ॥ ३४ ॥

संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम् ।

अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् ॥ ३५ ॥

अङ्कनैवोपनिबध्नीत प्रवेशकादिभिरेव सूचयेदित्यर्थः ।

नाधिकारिवचं कापि त्याज्यमावश्यकं न च ।

अधिकृतनायकवचं प्रवेशकादिनापि न सूचयेत् । आवश्यकं तु देवपितृका-
र्याद्यदयमेव क्वचित्कुर्यात् ।

एकाहाचरितैर्कार्थमित्यमासन्ननायकम् ॥ ३६ ॥

पात्रैस्त्रिचतुरैरङ्कं तेषामन्तेऽस्य निर्गमः ।

एकदिवसप्रवृत्तैकप्रयोजनसंबद्धमासन्ननायकमबहुपात्रप्रवेशमङ्कं कुर्यात् । तेषां
पात्राणामवश्यमङ्कस्यान्ते निर्गमः कार्यः ।

पताकास्थानकान्यत्र बिन्दुरन्ते च बीजवत् ॥ ३७ ॥

एवमङ्काः प्रकर्तव्याः प्रवेशादिपुरस्कृताः ।

पञ्चाङ्कमेतद्वरं दशाङ्कं नाटकं परम् ॥ ३८ ॥

इत्युक्तं नाटकलक्षणम् ।

अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम् ।

अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम् ॥ ३९ ॥

धीरप्रशान्तं सौपायं धर्मकामार्थतत्परम् ।

शेषं नाटकवत्संधिप्रवेशकरसादिकम् ॥ ४० ॥

कविबुद्धिविरचितमिति वृत्तम् । लोकसंश्रयमनुदात्तमालाद्यन्यतमधीरप्रशान्त-

नायकं विपदन्तरितार्थसिद्धिं कुर्यात् । प्रकरणे मन्त्री अमात्य एव । सार्थं बाहो वणिग्विशेष एवेति । स्पष्टमन्यत्र ।

नायिका तु द्विधा नेतुः कुलस्त्री गणिका तथा ।

क्वचिदेकैव कुलजा वेश्या कापि द्वयं क्वचित् ॥ ४१ ॥

कुलजाभ्यन्तरा बाह्या वेश्या नातिक्रमोऽनयोः ।

आभिः प्रकरणं त्रेधा संकीर्णं धूर्तसंकुलम् ॥ ४२ ॥

वेशः=भृतिः, सोऽस्या जीवनमिति वेश्या । तद्विशेषो गणिका । यदुक्तं—

‘आभिरभ्यर्थिता वेश्या रूपशीलगुणान्विता ।

लभते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥’

एवं च कुलजा वेश्या उभयमिति त्रेधा प्रकरणे नायिका । यथा वेश्यैव तरङ्गदत्ते कुलजैव पुष्पदूषितके । ते द्वे अपि मृच्छकटिकायामिति । कितवद्युत-कारादिधूर्तसंकुलं तु मृच्छकटिकादिवत् संकीर्णप्रकरणमिति ।

अथ नाटिका—

लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्णान्यविवृत्तये ।

अत्र केचित्—

‘अनयोश्च बन्धयोगादेको भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः ।

प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटीसंज्ञाश्रिते काव्ये ॥’

इत्यमुं भरतीयं श्लोकमेको भेदः प्रख्यातो नाटिकाख्य इतरस्त्वप्रख्यातः प्रकरणिकासंज्ञो नाटीसंज्ञया द्वे काव्ये आश्रिते इति व्याचक्षाणाः प्रकरणिकामपि मन्यन्ते । तदसत् । उद्देशलक्षणयोरनभिधानात् समानलक्षणत्वे वा भेदाभावात् । वस्तुरसनायकानां प्रकरणाभेदात् प्रकरणिकायाः । अतोऽनुद्दिष्टाया नाटिकाया यन्मुनिना लक्षणं कृतं तत्रायमभिप्रायः । शुद्धलक्षणसंकरादेव तल्लक्षणे सिद्धे लक्षणकरणं संकीर्णानां नाटिकैव कर्तव्येति नियमार्थं विज्ञायते ।

तमेव संकरं दर्शयति—

तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकाच्चायको नृपः ॥ ४३ ॥

प्रख्यातो धीरललितः शृङ्गारोऽङ्गी सलक्षणः ।

उत्पाद्येतिवृत्तत्वं प्रकरणधर्मः प्रख्यातनृपनायकादित्वं तु नाटकधर्म इति । एवं च नाटकप्रकरणनाटिकातिरेकेण वस्त्वादेः प्रकरणिकायामभावादङ्कपात्रभेदाद्यदि भेदः ।

तत्र—

स्त्रीप्रायचतुरङ्गादिभेदकं यदि चेष्ट्यते ॥ ४४ ॥

एकद्वित्र्यङ्कपात्रादिभेदेनानन्तरूपता ।

तत्र नाटिकेति स्त्रीसमाख्यौचित्यप्राप्तं स्त्रीप्रधानत्वम् । कैशिकीवृत्त्याश्रयत्वाच्च तदङ्गसंख्ययात्पावमर्शत्वेन चतुरङ्गत्वमप्यौचित्यप्राप्तमेव ।

विशेषस्तु—

देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥ ४५ ॥

गम्भीरा मानिनी कृच्छ्रात्तद्वशाच्चेतुसंगमः ।

प्राप्या तु—

नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ॥ ४६ ॥

तादृशीति नृपवंशजत्वादिधर्मातिदेशः ।

अन्तःपुरादिसंवन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनैः ।

अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ॥ ४७ ॥

नेता तत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शङ्कितः ।

तस्यां मुग्धनायिकायामन्तःपुरसंबन्धसंगीतकसंबन्धादिना प्रत्यासन्नायां नायकस्य देवीप्रतिबन्धान्तरित उत्तरोत्तरो नवावस्थानुरागो निबन्धनीयः ।

कैशिक्यङ्गैश्चतुर्भिश्च युक्ताङ्गैरिव नाटिका ॥ ४८ ॥

प्रत्यङ्गोपनिबद्धमिहितलक्षणकैशिक्यङ्गचतुष्टयवती नाटिकेति ।

अथ भाणः—

भाणस्तु धूर्तचरितं खानुभूतं परेण वा ।

यत्रोपवर्णयेदेको निपुणः पण्डितो विटः ॥ ४९ ॥

संबोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः ।

सूचयेद्वीरशृङ्गारौ शौर्यसौभाग्यसंस्तवैः ॥ ५० ॥

भूयसा भारती वृत्तिरेकाङ्गं वस्तु कल्पितम् ।

मुखनिर्वहणे साङ्गे लास्याङ्गानि दशापि च ॥ ५१ ॥

धूर्ताश्चैरभूतकारादयस्तेषां चरितं यत्रैक एव विटः स्वकृतं परकृतं वोपवर्णयति स भारतीवृत्तिप्रधानत्वाद्भाणः । एकस्य चोक्तिप्रत्युक्तय आकाशभाषितैराशङ्कितोत्तरत्वेन भवन्ति । अस्पष्टत्वाच्च वीरशृङ्गारौ सौभाग्यशौर्योपवर्णनया सूचनीयौ ।

लास्याङ्गानि—

गेयं पदं स्थितं पाठ्यमासीनं पुष्पगण्डिका ।

प्रच्छेदकस्त्रिगूढं च सैन्धवाख्यं द्विगूढकम् ॥ ५२ ॥

उत्तमोत्तमकं चैव उक्तप्रत्युक्तमेव च ।

लास्ये दशविधं ह्येतदङ्गनिर्देशकल्पनम् ॥ ५३ ॥

शेषं स्पष्टमिति ।

१ 'संगमे' इति पाठः. २ 'प्राप्याप्या' इति पाठः. ३ 'चान्यदुक्तं' इति पाठः. ४ 'लक्षणम्' इति पाठः.

अथ प्रहसनम्—

तद्वत्प्रहसनं त्रेधा शुद्धवैकृतसंकरैः ।

तद्वदिति भाणवद्वस्तुसंधिसंध्यङ्गलास्यादीनामतिदेशः ।

तत्र शुद्धं तावत्—

पाखण्डिविप्रप्रभृतिचेटचेटीविटाकुलम् ॥ ५४ ॥

चेष्टितं वर्षभाषाभिः शुद्धं हास्यवचोन्वितम् ।

पाखण्डिनः=शाक्यनिर्ग्रन्थप्रभृतयः । विप्राश्चात्यन्तमृजवः, जातिमात्रोपजीविनो वा । प्रहसनाङ्गिहास्यविभावास्तेषां च यथावत्स्वव्यापारोपनिबन्धनं चेटचेटीव्यवहारयुक्तं शुद्धं प्रहसनम् ।

विकृतं तु—

कामुकादिवचोवेषैः षण्ढकञ्चुकितापसैः ॥ ५५ ॥

विकृतं संकराद्वीथ्या संकीर्णं धूर्तसंकुलम् ।

कामुकादयः=भुजङ्गचारभटाद्याः । तद्वेषभाषादियोगिनो यत्र षण्ढकञ्चुकितापसवृद्धादयस्तादृकृतम् । स्वस्वरूपप्रच्युतविभावत्वात् । वीथ्यङ्गैस्तु संकीर्णत्वात्संकीर्णम् ।

रसस्तु भूयसा कार्यः षड्विधो हास्य एव तु ॥ ५६ ॥

इति स्पष्टम् ।

अथ डिमः—

डिमे वस्तु प्रसिद्धं स्याद्वृत्तयः कैशिकीं विना ।

नेतारो देवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः ॥ ५७ ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यन्तमुद्धताः ।

रसैरहास्यशृङ्गारैः षड्भिर्दीप्तैः समन्वितः ॥ ५८ ॥

मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोज्झान्तादिचेष्टितैः ।

चन्द्रसूर्योपरागैश्च न्याय्ये रौद्ररसेऽङ्गिनि ॥ ५९ ॥

चतुरङ्गश्चतुःसंधिनिर्विमर्शो डिमः स्मृतः ।

डिमसंघात इति नायकसंघातव्यापारात्मकत्वात् डिमः । तत्रेतिहासप्रसिद्धमिति वृत्तम् । वृत्तयश्च कैशिकीवर्जास्तिस्रः । रसाश्च वीररौद्रवीभत्साद्भुतकरुणभयानकाः षट् । स्थायी तु रौद्रो न्यायप्रधानो विमर्शरहिता मुखप्रतिमुखगर्भनिर्वहणाख्याश्चत्वारः संधयः साक्षाः । मायेन्द्रजालाद्यनुभावसमाश्रयाः । शेषं प्रस्तावादिनाटकवत् । एतच्च—

‘इदं त्रिपुरदाहे तु लक्षणं ब्रह्मणोदितम् ।

ततस्त्रिपुरदाहश्च डिमसंज्ञः प्रयोजितः ॥’

इति भरतमुनिना खयमेव त्रिपुरदाहेतिवृत्तस्य तुल्यत्वं दर्शितम् ।

अथ व्यायोगः—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः ॥ ६० ॥

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्दिमवद्रसाः ।

अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो जामदग्न्यजये यथा ॥ ६१ ॥

एकाहाचरितैकाङ्को व्यायोगो बहुभिर्नरैः ।

व्यायुज्यन्तेऽस्मिन्बहवः पुरुषा इति व्यायोगः । तत्र दिमवद्रसाः षट् हास्य-
शृङ्गाररहिताः । वृत्त्यात्मकत्वाच्च रसानामवचनेऽपि कैशिकीरहितेतरवृत्तित्वं
रसवदेव लभ्यते । अस्त्रीनिमित्तश्चात्र संग्रामः । यथा परशुरामेण पितृवधको-
पात्सहस्रार्जुनवधः कृतः । शेषं स्पष्टम् ।

अथ समवकारः—

कार्यं समवकारेऽपि आमुखं नाटकादिवत् ॥ ६२ ॥

ख्यातं देवासुरं वस्तु निर्विमर्शास्तु संधयः ।

वृत्तयो मन्दकैशिक्यो नेतारो देवदानवाः ॥ ६३ ॥

द्वादशोदात्तविख्याताः फलं तेषां पृथक्पृथक् ।

बहुवीररसाः सर्वे यद्वदम्भोधिमन्थने ॥ ६४ ॥

अङ्कैस्त्रिभिस्त्रिकपटस्त्रिशृङ्गारस्त्रिविद्रवः ।

द्विसंधिरङ्कः प्रथमः कार्यो द्वादशनालिकः ॥ ६५ ॥

चतुर्द्विनालिकावन्त्यौ नालिका घटिकाद्वयम् ।

वस्तुस्वभावदैवारिकृताः स्युः कपटास्त्रयः ॥ ६६ ॥

नगरोपरोधयुद्धे वाताश्यादिकविद्रवाः ।

धर्मार्थकामैः शृङ्गारो नात्र बिन्दुप्रवेशकौ ॥ ६७ ॥

वीथ्यङ्गानि यथालाभं कुर्यात्प्रहसने यथा ।

समवकीर्यन्तेऽस्मिन्नर्था इति समवकारः । तत्र नाटकादिवदामुखमिति
समस्तरूपकाणामुखप्रापणम् । विमर्शवर्जिताश्चत्वारः संधयः । देवासुरादयो
द्वादशनायकाः । तेषां च फलानि पृथक्पृथक्भवन्ति । यथा समुद्रमन्थने वासु-
देवादीनां लक्ष्म्यादिलाभाः । वीरश्वाङ्गी । अङ्गभूताः सर्वे रसाः । त्रयोऽङ्काः ।
तेषां प्रथमो द्वादशनालिकानिर्वृत्तेतिवृत्तप्रमाणः । यथासंख्यं चतुर्द्विनालिका-
वन्त्यौ । नालिका च=घटिकाद्वयम् । प्रत्यङ्कं च यथासंख्यं कपटाः । तथा नग-
रोपरोधयुद्धवाताश्यादिविद्रवाणां मध्य एकैको विद्रवः कार्यः । धर्मार्थकामशृ-
ङ्गाराणामेकैकः शृङ्गारः प्रत्यङ्कमेव विधातव्यः । वीथ्यङ्गानि च यथालाभं
कार्याणि । बिन्दुप्रवेशकौ नाटकोक्तावपि न विधातव्यौ । इत्ययं समवकारः ।

अथ वीथी—

वीथी तु कैशिकीवृत्तौ संध्यङ्गाङ्कैस्तु भाणवत् ॥ ६८ ॥

रसः सूच्यस्तु शृङ्गारः स्पृशेदपि रसान्तरम् ।

युक्ता प्रस्तावनाख्यातैरङ्गैरुद्वात्यकादिभिः ॥ ६९ ॥

एवं वीथी विधातव्या द्योक्तात्रप्रयोजिता ।

वीथीवद्वीथीमार्गोऽङ्गानां पङ्क्तिर्वा भाणवत्कार्या । विशेषस्तु रसः शृङ्गारोप-
रिपूर्णत्वाद्भूयसा सूच्यः । रसान्तराण्यपि स्तोत्रं स्पर्शनीयानि । कैशिकी वृत्ती
रसौचित्यादेवेति । शेषं स्पष्टम् ।

अथाङ्कः—

उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यातं वृत्तं बुद्ध्या प्रपञ्चयेत् ॥ ७० ॥

रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः ।

भाणवत्संधिवृत्त्यङ्गैर्युक्तः स्त्रीपरिदेवितैः ॥ ७१ ॥

वाचा युद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ ।

उत्सृष्टिकाङ्क इति नाटकान्तर्गताङ्कव्यवच्छेदार्थम् । शेषं प्रतीतमिति ।

अथेहामृगः—

मिश्रमीहामृगे वृत्तं चतुरङ्गं त्रिसंधिमत् ॥ ७२ ॥

नरदिव्यावनियमाज्ञायकप्रतिनायकौ ।

ख्यातौ धीरोद्धतावन्त्यो विपर्यासादयुक्तकृत् ॥ ७३ ॥

दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीमपहारादिनेच्छतः ।

शृङ्गाराभासमप्यस्य किञ्चित्किञ्चित्प्रदर्शयेत् ॥ ७४ ॥

संरंभं परमानीय युद्धं व्याजाधिवारयेत् ।

वधप्राप्तस्य कुर्वीत वधं नैव महात्मनः ॥ ७५ ॥

मृगवदलभ्यां नायिकां नायकोऽस्मिन्नीहते इतीहामृगः । ख्याताख्यातं
वस्त्वन्त्यः प्रतिनायको विपर्यासाद्विपर्ययज्ञानादयुक्तकारी विधेयः । स्पष्टमन्यत् ।

इत्थं विचिन्त्य दशरूपकलक्ष्ममार्ग-

मालोक्य वस्तु परिभाव्य कविप्रबन्धान् ।

कुर्यादयत्नवदलंकृतिभिः प्रबन्धं

वाक्यैरुदारमधुरैः स्फुटमन्दवृत्तैः ॥ ७६ ॥

स्पष्टम् ॥

इति श्रीविष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोके रूपकलक्षण-

प्रकाशो नाम तृतीयः प्रकाशः समाप्तः ।

चतुर्थः प्रकाशः ।

अथेदानीं रसभेदः प्रदर्श्यते—

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः ।

आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायीभावो रसः स्मृतः ॥ १ ॥

वक्ष्यमाणस्वभावैर्विभावानुभावव्यभिचारिसात्त्विकैः काव्योपात्तरभिनयोपदर्शितैर्वा श्रोतृप्रेक्षकाणामन्तर्विपरिवर्तमानो रस्यादिवक्ष्यमाणलक्षणः स्थायी स्वाद्य-
गोचरतां निर्भरानन्दसंविदात्मतामानीयमानो रसः । तेन रसिकाः सामा-
जिकाः । काव्यं तु तथाविधानन्दसंविदुन्मीलनहेतुभावेन रसवदायुर्धृतमित्या-
दिव्यपदेशवत् ।

तत्र विभावः—

ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावोपपद्यते ।

आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा ॥ २ ॥

एवमयमेवमियमित्यतिशयोक्तिरूपकाव्यव्यापाराहितविशिष्टरूपतया ज्ञायमानो
विभाव्यमानः सञ्चालम्बनत्वेनोद्दीपनत्वेन वा यो नायकादिरभिमतदेशका-
लादिर्वा स विभावः । यदुक्तं विभाव इति विज्ञातार्थं इति, तांश्च यथास्वं यथा-
वसरं च रसेपूपपादयिष्यामः । अमीषां चानपेक्षितबाह्यसत्त्वानां शब्दोपधा-
नादेवासादिततद्भावानां सामान्यात्मनां स्वस्वसंबन्धित्वेन विभावितानां साक्षा-
द्भावकचेतसि विपरिवर्तमानानामालम्बनादिभाव इति न वस्तुशून्यता । तदुक्तं
भर्तृहरिणा—‘शब्दोपहितरूपांस्तान्वुद्देविषयतां गतान् । प्रत्यक्षमिव कंसादी-
न्साधनत्वेन मन्यते ॥’ इति । षट्सहस्रीकृताप्युक्तम्—‘एभ्यश्च सामान्यगुण-
योगेन रसा निष्पद्यन्ते’ इति ।

तत्रालम्बनविभावो यथा—

‘अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः

शृङ्गारैकनिधिः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।

वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो

निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥’ (विक्रमो० १११०)

उद्दीपनविभावो यथा—

‘अयमुदयति चन्द्रश्चन्द्रिकाधौतविश्वः परिणतविमलिन्नि व्योम्नि कर्पूरगौरः ।

ऋजुरजतशलाकास्पृधिभिर्भ्यस्य पादैर्जगदमलमृणालीपञ्जरस्थं विभाति ॥’

अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः ।

स्थायिभावाननुभावयतः सामाजिकान्सध्रुविक्षेपकटाक्षादयो रसपोषकारि-
णोऽनुभावाः । एते चाभिनयकाव्ययोरप्यनुभावयतां साक्षाद्भावकानुभवकर्मत-
यानुभूयन्त इत्यनुभवनमिति चानुभावा रसिकेषु व्यपदिश्यन्ते । विकारो भावसं-
सूचनात्मक इति तु लौकिकरसापेक्षया, इह तु तेषां कारणत्वमेव । यथा ममैव—

‘उज्जृम्भाननमुल्लसत्कुचतटं लोलभ्रमञ्जूलतं
स्वेदाम्भःक्षपिताङ्गयष्टिविगलद्वीडं सरोमाञ्चया ।
धन्यः कोऽपि युवा स यस्य वदने व्यापारिताः सस्पृहं
मुग्धे दुग्धमहाविधेनपटलप्रख्याः कटाक्षच्छटाः ॥’

इत्यादि यथारसमुदाहरिष्यामः ।

हेतुकार्यात्मनोः सिद्धिस्तयोः संव्यवहारतः ॥ ३ ॥

तयोर्विभावानुभावयोलौकिकरसं प्रति हेतुकार्यभूतयोः संव्यवहारादेव सिद्ध-
त्वान्न पृथग्लक्षणमुपयुज्यते । तदुक्तम्—‘विभावानुभावौ लोकसंसिद्धौ लोकया-
त्रानुगामिनौ लोकस्वभावोपगतत्वाच्च न पृथग्लक्षणमुच्यते’ इति ।

• अथ भावः—

सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावस्तद्भावभावनम् ।

अनुकार्याश्रयत्वेनोपनिबध्यमानैः सुखदुःखादिरूपैर्भावैस्तद्भावस्य भावकचे-
तसो भावनं वासनं भावः । तदुक्तम्—‘अहो ह्यनेन रसेन गन्धेन वा सर्वमे-
तद्भावितं वासितम्’ इति । यत्तु रसान्भावयन्भाव इति, कवेरन्तर्गतं भावं
भावयन्भाव इति च, तदभिनयकाव्ययोः प्रवर्तमानस्य भावशब्दस्य प्रवृत्तिनि-
मित्तकथनम् ।

ते च स्थायिनो व्यभिचारिणश्चेति वक्ष्यमाणाः ।

पृथग्भावा भवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्त्विकाः ॥ ४ ॥

सत्त्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम् ।

परगतदुःखदुर्षादिभावनायामत्यन्तानुकूलान्तःकरणलब्धसत्त्वम् । यदाह—
सत्त्वं नाम मनःप्रभवम् । तच्च समाहितमनस्त्वादुत्पद्यते । एतदेवास्य सत्त्वं
यतः खिन्नेन प्रहर्षितेन चाश्रुरोमाञ्चादयो निर्वर्त्यन्ते तेन सत्त्वेन निर्वृत्ताः
सात्त्विकास्त एव भावास्तत उत्पद्यमानत्वादश्रुप्रभृतयोऽपि भावाः, भावसंसूचनात्मक-
विकाररूपत्वाच्चानुभावा इति द्वैरूप्यमेवम् ।

ते च—

स्तम्भप्रलयरोमाञ्चाः स्वेदो वैवर्ण्यवेपथू ॥ ५ ॥

अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टौ स्तम्भोऽस्मिन्निष्क्रियाङ्गता ।

प्रलयो नष्टसंज्ञत्वं शेषाः सुव्यक्तलक्षणाः ॥ ६ ॥

यथा—

‘वैवैह सेअदवदनी रोमचिअ गतिए ववइ ।

बिलडुल्लु तु वलअ लहु वाहोअलीए रणेत्ति ॥’

१ अपभ्रंशिकभाषया त्वेदं चेद्व्या भाषणमिति संभाव्यते—

‘वेपते स्वेदवदना रोमाञ्चं गात्रे वपति ।

बिलोलस्ततो बल्यो लघु बाहुवह्यां रणति ॥’

‘मुहूः सामलि होई खणे विमुच्छइ विअग्घेण ।

मुद्धा मुहल्ली तुअ पेम्मेण सावि ण धिज्जइ ॥’

अथ व्यभिचारिणः । तत्र सामान्यलक्षणम्—

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः ।

स्थायिन्युन्मत्तनिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ ॥ ७ ॥

यथा वारिधौ सत्येव कल्लोला उद्भवन्ति विलीयन्ते च तद्वदेव रत्यादौ स्थायिनि सत्येवाविर्भावतिरोभावाभ्यामाभिमुख्येन चरन्तो वर्तमाना निर्वेदादयो व्यभिचारिणो भावाः । ते च—

निर्वेदग्लानिशङ्काश्रमधृतिजडताहर्षदैन्यौघ्यचिन्ता-

स्त्रासेर्ष्यामर्षगर्वाः स्मृतिमरणमदाः सुप्तनिद्राविवोधाः ।

ब्रीडापसारमोहाः समतिरलसतावेगतर्कावहित्था

व्याध्युन्मादौ विषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिंशदेते त्रयश्च ॥८॥

तत्र निर्वेदः—

तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम् ।

तत्र चिन्ताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वासदीनताः ॥ ९ ॥

तत्त्वज्ञानान्निर्वेदो यथा—

‘प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।
संप्रीणिताः प्रणयिनो विभवेस्ततः किं कल्पं स्थितं तनुमृतां तनुभिस्ततः किम् ॥’

आपदो यथा—

‘राज्ञो विपद्वन्धुवियोगदुःखं देशच्युतिर्दुर्गममार्गखेदः ।

आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्फलायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः ॥’

ईर्ष्यातो यथा—

‘धिग्धिक्षकजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा

स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनपरैः पीनैः किमेभिर्भुजैः ।

न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदयस्तत्राप्यसौ तापसः

सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसभटान् जीवत्यहो रावणः ॥’

वीरशृङ्गारयोर्व्यभिचारी निर्वेदो यथा—

‘ये बाहवो न युधि वैरकठोरकण्ठीपीठोच्छलद्बधिरराजिविराजितांसाः ।

नापि प्रियापृथुपयोधरपत्रभङ्गसंक्रान्तकुङ्कुमरसाः खलु निष्फलास्ते ॥’

आत्मानुरूपं रिपुं रमणीं बाऽलभमानस्य निर्वेदादियमुक्तिः । एवं रसान्तराणाम-
प्यङ्गभाव उदाहार्यः ।

रसानङ्गः स्वतन्त्रो निर्वेदो यथा—

‘कस्त्वं भोः कथयामि दैवहतकं मां विद्धि शाखोटकं

वैराग्यादिव वक्षि साधु विदितं कस्माद्यतः श्रूयताम् ।

१ ‘मुखं इयामलं भवति क्षणं विमूर्च्छन्ति विदग्धेन ।

मुग्धा मुजवल्ली तव प्रेम्णा सापि न धैर्यं करोति ॥’ इति च्छाया.

वासेनात्र वटस्तमध्वगजनः सर्वात्मना सेवते

न च्छायापि परोपकारकरणी मार्गस्थितस्यापि मे ॥'

विभावानुभावरसाङ्गानङ्गमेदादनेकशाखो निर्वेदो निदर्शनीयः ।

अथ ग्लानिः—

रत्याद्यायासतृदक्षुद्भिर्ग्लानिर्निष्प्राणतेह च ।

वैवर्ण्यकम्पानुत्साहक्षामाङ्गवचनक्रियाः १० ॥

निधुवनकलाम्यासादिश्रमतृदक्षुद्भिमनादिभिर्निष्प्राणतारूपा ग्लानिः । अस्यां च वैवर्ण्यकम्पानुत्साहादयोऽनुभावाः ।

यथा माघे (११।२०)—

ललितनयनताराः क्षामवक्त्रेन्दुबिम्बा रजनय इव निद्राक्लान्तनीलोत्पलाक्षयः ।

तिमिरमिव दधानाः संसिनः केशपाशानवनिपतिगृहेभ्यो यान्त्यमूर्वारवध्वः ॥'

शेषं निर्वेदवदूह्यम् ।

अथ शङ्का—

अनर्थप्रतिभा शङ्का परक्रौर्यात्स्वदुर्नयात् ।

कम्पशोषाभिवीक्षादिरत्र वर्णस्वरान्यता ॥ ११ ॥

तत्र परक्रौर्याद्यथा रत्नावल्याम् (३।४)—

‘हिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं

द्वयोर्दृष्ट्वालापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।

सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं

प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ॥’

स्वदुर्नयाद्यथा वीरचरिते (२।१)—

‘दूराद्द्वीयो धरणीधरामं यस्ताटकेयं तृणवच्चधूनोत् ।

हन्ता सुबाहोरपि ताडकारिः स राजपुत्रो हृदि बाधते माम् ॥’

अनया दिशान्यदनुसर्तव्यम् ।

अथ श्रमः—

श्रमः स्वेदोऽध्वरत्यादेः स्वेदोऽस्मिन्मर्दनादयः ।

अध्वतो यथोत्तररामचरिते (१।२४)—

‘अलसललितमुग्धान्यध्वसंजातखेदादशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।

परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥’

रतिश्रमो यथा माघे (१०।८०)—

‘प्राप्य मन्मथरसादतिभूमिं दुर्वहस्तनभराः सुरतस्य ।

शश्रमुः श्रमजलार्द्रललाटश्लिष्टकेशमसितायतकेक्ष्यः ॥’

इत्याद्युत्प्रेक्ष्यम् ।

अथ धृतिः—

संतोषो ज्ञानशक्त्यादेर्धृतिरव्यग्रभोगकृत् ॥ १२ ॥

ज्ञानाद्यथा भर्तृहरिशतके (वैराग्य० श्लो० ५३)

‘वयमिह परितुष्टा बल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या

सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।

स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला

मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः ॥’

शक्तितो यथा रत्नावल्याम् (११९)—

‘राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसन्निवे न्यस्तः समस्तो भरः

सम्यक्पालनपालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं

कामः काममुपैतयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥’

इत्याद्यूह्यम् ।

अथ जडता—

अप्रतिपत्तिर्जडता स्यादिष्टानिष्टदर्शनश्रुतिभिः ।

अनिमिषनयननिरीक्षणतूष्णीभावादयस्तत्र ॥ १३ ॥

इष्टदर्शनाद्यथा (कुमार० ८१५)—

‘एवमालि निगृहीतसाध्वसं शंकरो रहसि सेव्यतामिति ।

सा सखीभिरुपदिष्टमाकुला नास्मरत् प्रमुखवर्तिनि प्रिये ॥’

अनिष्टश्रवणाद्यथोदात्तराधवे—‘राक्षसः—

तावन्तस्ते महात्मानो निहताः केन राक्षसाः ।

येषां नायकतां यातास्त्रिशिरःखरदूषणाः ॥

द्वितीयः—गृहीतधनुषा रोमहतकेन । प्रथमः—किमेकाकिनैव ।

द्वितीयः—अदृष्टा कः प्रत्येति । पश्य तावतोऽस्मद्वलस्य,—

सयस्त्रिच्छत्रशिरःश्वभ्रमज्जत्कङ्कुकुलाकुलाः ।

कबन्धाः केवलं जातास्तालोत्ताला रणाङ्गणे ॥

प्रथमः—सखे, यद्येवं तदाहमेवंविधः किं करवाणि ।’ इति ।

अथ हर्षः—

प्रसत्तिरुत्सवादिभ्यो हर्षोऽश्रुस्वेदगद्गदाः ।

प्रियागमनपुत्रजननोत्सवादिविभावैश्चेतःप्रसादः=हर्षः । तत्र चाश्रुस्वेदगद्गदाद-
योऽनुभावाः । यथा (अमर० श्लो० ७७)—

‘आर्याते दयिते मरुस्थलभुवामुत्प्रेक्ष्य दुर्लङ्घ्यतां

गेहिन्या परितोषबाष्पकलिलामासज्य दृष्टिं मुखे ।

दत्त्वा पीलुशमीकरीरकवलान् खेनाञ्चलेनादरा-

दुन्मृष्टं करभस्य केसरसटाभाराप्रलभं रजः ॥’

निर्वेदवदितरदुजेयम् ।

अथ दैन्यम्—

दौर्गत्याद्यैरनौजस्यं दैन्यं काष्ण्यामृजादिमत् ॥ १४ ॥

दारिद्र्यन्यकारादिविभावैरनौजस्कता चेतसः=दैन्यम् । तत्र च कृष्णतामलि-
नवसनदर्शनादयोऽनुभावाः । यथा (भोजप्र० श्लो० २५५)—

‘वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहं
कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो ।
यन्नात्संचिततैलविन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला
दृष्ट्वा गर्भभरालसां सुतवधूंश्चश्रूश्चिरं रोदिति ॥’

शेषं पूर्ववत् ।

अथौग्र्यम्—

दुष्टेऽपराधदौर्मुख्यक्रौर्यैश्चण्डत्वमुग्रता ।

तत्र खेदशिरःकम्पतर्जनाताडनादयः ॥ १५ ॥

यथा वीरचरिते (२।४८)—‘जामदग्नयः—

उत्कृल्योत्कृत्य गर्भानपि शकलयतः क्षत्रसंतानरोषा-

दुद्दामस्यैकविंशत्यवधि विशसतः सर्वतो राजवंश्यान् ।

पित्र्यं तद्रक्तपूर्णहृदसवनमहानन्दमन्दायमान-

क्रोधाग्नेः कुर्वतो मे न खलु न विदितः सर्वभूतैः स्वभावः ॥’

अथ चिन्ता—

ध्यानं चिन्तेहितानासः शून्यताश्वासतापकृत् ।

यथा—

‘पक्ष्माग्रप्रथिताश्रुबिन्दुनिकरैर्मुक्ताफलस्पर्धिभिः

कुर्वन्त्या हरहासहारि हृदये हारावलीभूषणम् ।

बाले बालमृणालनालवलयालंकारकान्ते करे

विन्यस्याननमायताक्षि सुकृती कोऽयं त्वया स्मर्यते ॥’

यथा वा—

‘अस्तमितविषयसङ्गा मुकुलितनयनोत्पला बहुश्वसिता ।

ध्यायति किमप्यलक्ष्यं बाला योगाभियुक्तेव ॥’

अथ त्रासः—

गर्जितादेर्मनःक्षोभस्त्रासोऽत्रोत्कम्पितादयः ॥ १६ ॥

यथा माघे (८।२४)—

‘त्रस्यन्ती चलशफरीविघटितोर्ध्वामोरुरतिशयमाप विभ्रमस्य ।

क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतोर्लोलाभिः किमु सति कारणे रमण्यः ॥’

अथासूया—

परोत्कर्षाक्षमासूया गर्वदौर्जन्यमन्युजा ।
दोषोक्त्यवक्षे भ्रुकुटिमन्युक्रोधेङ्गितानि च ॥ १७ ॥

गर्वे यथा वीरचरिते (२।९)—

‘अर्थिले प्रकटीकृतेऽपि न फलप्राप्तिः प्रभोः प्रत्युत
ब्रह्मन् दाशरथिर्विरुद्धचरितो युक्तस्तथा कन्यया ।
उत्कर्षं च परस्य मानयशसोर्विघ्नंसनं चात्मनः
स्त्रीरत्नं च जगत्पतिर्दशमुखो दृप्तः कथं मृष्यते ॥’

दौर्जन्याद्यथा—

‘यदि परगुणा न क्षम्यन्ते यतस्व गुणार्जने
नहि परयशोनिन्दाव्याजैरलं परिमार्जितुम् ।
विरमसि न चेदिच्छाद्वेषप्रसक्तमनोरथो
दिनकरकरान्पाणिच्छत्रैर्नुदन् श्रममेष्यसि ॥’

मन्युजा यथामरुशतके (श्लो० ५१-५२)—

‘पुरस्तन्व्या गोत्रस्खलनचकितोऽहं नतमुखः
प्रवृत्तो वैलक्ष्यात्किमपि लिखितुं दैवहतकः ।
स्फुटो रेखान्यासः कथमपि स तादृक्परिणतो
गता येन व्यक्तिं पुनरवयवैः सैव तरुणी ॥
ततश्चाभिज्ञाय स्फुरदरुणगण्डस्थलरुचा
मनस्विन्या रोषप्रणयरमसाद्गद्गदगिरा ।
अहो चित्रं चित्रं स्फुटमिति निगद्याश्रुकल्लषं
रुषा ब्रह्मास्त्रं मे शिरसि निहितो वामचरणः ॥’

अथामर्षः—

अधिक्षेपापमानादेरमर्षोऽभिनिविष्टता ।
तत्र खेदशिरःकम्पतर्जनाताडनादयः ॥ १८ ॥

यथा वीरचरिते (३।८)—

‘प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात् ।
न त्वेवं दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम् ॥’

यथा वा वेणीसंहारे (१।१२)—

‘युष्मच्छासनलङ्घनाम्भसि मया मग्नेन नाम स्थितं
प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि ।
क्रोधोलासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा-
नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ॥’

अथ गर्वः—

गर्वोऽभिजनलावण्यबलैश्वर्यादिभिर्मदः ।

कर्माण्याघर्षणावज्ञा सविलासाङ्गवीक्षणम् ॥ १९ ॥

यथा वीरचरिते (२।२७)—

‘मुनिरयमथ वीरस्तादृशस्तत्प्रियं मे विरमतु परिकम्पः कातरे क्षत्रियाऽसि ।

तपसि विततकीर्तेर्दर्पकण्डूलदोषः परिचरणसमर्थो राघवः क्षत्रियोऽहम् ॥’

यथा वा तत्रैव—

‘ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये ।

जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥’ (वीर० २।१०)

अथ स्मृतिः—

सदृशज्ञानचिन्ताद्यैः संस्कारात्स्मृतिरत्र च ।

ज्ञातत्वेनार्थभासिन्यां भूसमुन्नयनादयः ॥ २० ॥

यथा—

‘मैनाकः किमयं रुणद्धि गगने मन्मार्गमव्याहृतं

शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाङ्गीतो महेन्द्रादपि ।

तादृश्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावण-

मा ज्ञातं स जटायुरेष जरसा क्लिष्टो वधं वाञ्छति ॥’

यथा वा मालतीमाधवे—‘माधवः—मम हि प्राक्तनोपलम्भसंभाविता-
त्मजन्मनः संस्कारस्यानवरतप्रबोधात्प्रतायमानस्तद्विसदृशैः प्रत्ययान्तरैरतिरस्कृ-
तप्रवाहः प्रियतमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिसंतानस्तन्मयमिव करोति वृत्तिसारूप्यत-
श्चैतन्यम् ।

‘लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च

प्रत्युप्तेव च वज्रसारघटितेवान्तर्निखातेव च ।

सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभि-

श्चिन्तासंततितितनुजालनिविडस्यूतेव लग्ना प्रिया ॥’ (मालती० ५।१०)

अथ मरणम्—

मरणं सुप्रसिद्धत्वादनर्थत्वाच्च नोच्यते ।

यथा—

‘संप्राप्तेऽवधिवासरे क्षणमनु खट्वर्तवातायनं

वारंवारमुपेत्य निष्क्रियतया निश्चित्य किञ्चिच्चिरम् ।

संप्रत्येव निवेद्य केलिकुररीं साक्षं सखीभ्यः शिशो-

र्माधव्याः सहकारकेण करुणः पाणिग्रहो निर्मितः ॥’

इत्यादिवच्छृङ्गाराश्रयालम्बनत्वेन मरणे व्यवसायमात्रमुपनिबन्धनीयम् । अन्यत्र
कामचारः । यथा वीरचरिते—‘पश्यन्तु भवन्तस्ताडकाम्—

‘हन्मममेदिपतदुत्कटकङ्कपत्रसंवेगतक्षणकृतस्फुरदङ्गभङ्गा ।
नासाकुटीरकुहरद्वयतुल्यनिर्यदुद्बुद्धध्वनदसृक्प्रसरा मृतैव ॥’
(वीर० १।३९)

अथ मदः—

हर्षोत्कर्षो मदः पानात्स्खलदङ्गवचोगतिः ॥ २१ ॥
निद्रा हासोऽत्र रुदितं ज्येष्ठमध्याधमादिषु ।

यथा माघे (१०।१३)—

‘हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृशि विकारविशेषाः ।
चकिरे भृशमृजोरपि वध्वाः कामिनेव तरुणेन मदेन ॥’

इत्यादि ।

अथ सुप्तम्—

सुप्तं निद्रोद्भवं तत्र श्वासोच्छ्वासक्रियापरम् ॥ २२ ॥

यथा—

लघुनि तृणकुटीरे क्षेत्रकोणे यवानां नवकलमपलालसस्तरे सोपधाने ।
परिहरति सुपुप्तं हालिकद्वन्द्वमारात्कुचकलशमहोष्मावद्धरेखस्तुषारः ॥’

अथ निद्रा—

मनःसंमीलनं निद्रा चिन्तालस्यक्लमादिभिः ।
तत्र जृम्भाङ्गभङ्गाक्षिमीलनोत्सृज्यतादयः ॥ २३ ॥

यथा (विह्वलः)—

‘निद्रार्थमीलितदृशो मदमन्थराणि नाप्यर्थवन्ति न च यानि निरर्थकानि ।
अद्यापि मे मृगदृशो मधुराणि तस्यास्तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति ॥’

यथा च माघे (११।४)—

‘प्रहरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोच्चैः प्रतिपदमुपहृतः केनचिज्जागृहीति ।
मुहुरविशदवर्णा निद्रया शून्यशून्या ददपि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ॥’

अथ विबोधः—

विबोधः परिणामादेस्तत्र जृम्भाक्षिमर्दने ।

यथा माघे (११।१३)—

‘चिररतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखानां चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः ।
अपरिचलितगात्राः कुर्वन्ते न प्रियाणामशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः ॥’

अथ व्रीडा—

दुराचारादिभिर्व्रीडा घाष्ट्याभावस्तमुन्नयेत् ।
साचीकृताङ्गावरणवैवर्ण्याधोमुखादिभिः ॥ २४ ॥

यथामरुशतके (श्लो० ४१)—

‘पटालमे पल्यौ नमयति मुखं जातविनया
दृगश्लेषं वाञ्छत्यपहरति गात्राणि निभृतम् ।

न शक्नोत्याख्यातुं स्मितमुखसखीदत्तनयना
ह्रिया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिहासे नववधूः ॥'

अथापस्मारः—

आवेशो ग्रहदुःखाद्यैरपस्मारो यथाविधिः ।

भूपातकम्पप्रस्वेदलालाफेनोद्गमादयः ॥ २५ ॥

यथा माघे (३।७२)—

‘आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चैर्लोलदुःखाकारवृहत्तरङ्गम् ।

फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशङ्के ॥’

अथ मोहः—

मोहो विचिच्छता भीतिदुःखावेशानुचिन्तनैः ।

तत्राज्ञानभ्रमाघातधूर्णनादर्शनादयः ॥ २६ ॥

यथा कुमारसंभवे (३।७३)—

‘तीव्राभिषङ्गप्रभवेण वृत्तिं मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम् ।

अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव ॥’

यथा चोत्तररामचरिते (१।३५)—

‘विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो

विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च कुरुते ॥’

अथ मतिः—

भ्रान्तिच्छेदोपदेशाभ्यां शास्त्रादेस्तत्त्वधीर्मतिः ।

यथा किराते (२।३०)—

‘सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।

वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥’

यथा च—

‘न पण्डिताः साहसिका भवन्ति श्रुत्वापि ते संतुलयन्ति तत्त्वम् ।

तत्त्वं समादाय समाचरन्ति स्वार्थं प्रकुर्वन्ति परस्य चार्थम् ॥’

अथालस्यम्—

आलस्यं भ्रमगर्भादेर्जह्यजृम्भासितादिमत् ॥ २७ ॥

यथा ममैव—

‘चलति कथंचित्पृष्ठा यच्छति वचनं कथंचिदालीनाम् ।

आसितुमेव हि मनुते गुरुगर्भभरालसा सुतनुः ॥’

अथावेगः—

आवेगः संभ्रमोऽस्मिन्नभिसरजनिते शस्त्रनागाभियोगो
वातात्पांसूपदिग्धस्त्वरितपदगतिर्वर्षजे पिण्डिताङ्गः ।

उत्पातात्सस्तताङ्गेष्वहितहितकृते शोकहर्षानुभावा

वह्नेर्धूमाकुलास्यः करिजमनु भयस्तम्भकम्पापसाराः ॥ २८ ॥

अभिसरः=राजविद्रवादिः, तद्धेतुरावेगः । यथा मनैव—

‘आगच्छागच्छ सज्जं कुरु वरतुरगं संनिधेहि द्रुतं मे

खड्गः कासौ कृपाणीमुपनय धनुषा किं किमङ्गप्रविष्टम् ।

संरम्भोन्निद्रितानां क्षितिभृति गहनेऽन्योन्यमेवं प्रतीच्छन्

वादः स्वप्राभिट्टे त्वयि चकितदृशां विद्विषामाविरासीत् ॥’

इत्यादि ।

‘तनुत्राणं तनुत्राणं शस्त्रं शस्त्रं रथो रथः ।

इति शुश्रुविरे विष्वगुद्धटाः सुभटोक्तयः ॥’

यथा वा—

‘प्रारब्धां तरुपुत्रकेषु सहसा संत्यज्य सेकक्रिया-

मेतास्तापसकन्यकाः किमिदमित्यालोकयन्त्याकुलाः ।

आरोहन्त्युटजद्रुमांश्च वटवो वाचयमा अप्यमी

सद्यो मुक्तसमाधयो निजवृत्तीष्वेवोच्चपादं स्थिताः ॥’

वातावेगो यथा—‘वाताहतं वसनमाकुलमुत्तरीयम्’ इत्यादि ।

वर्षजो यथा—

‘देवे वर्षत्यशनपवनव्यापृता वह्निहेतो-

र्गेंहाद्रेहं फलकनिचितैः सेतुभिः पङ्कसीताः ।

नीध्रप्रान्तानविरलजलान्पाणिभिस्ताडयित्वा

दूर्पच्छत्रस्थगितशिरसो योषितः संचरन्ति ॥’

उत्पातजो यथा—

‘पौलस्त्यपीनभुजसंपदुदस्यमानकैलाससंभ्रमविलोलदृशः प्रियायाः ।

श्रेयांसि वो दिशतु निहृतकोपचिह्नमालिङ्गनोत्पुलकमासितमिन्दुमौलेः ॥’

अहितकृतस्त्वनिष्टदर्शनश्रवणाभ्याम् । तद्यथोदात्तराघवे—‘चित्रमयः—

(ससंभ्रमम् ।) भगवन् कुलपते रामभद्र, परित्रायतां परित्रायताम् । (इत्याकुलतां नाटयति ।)’ इत्यादि । पुनः ‘चित्रमयः—

मृगरूपं परित्यज्य विधाय विकटं वपुः ।

नीयते रक्षसानेन लक्ष्मणो युधि संशयम् ॥

रामः—

वत्सस्याभयवारिधेः प्रतिभयं मन्ये कथं राक्षसा-

त्रस्तश्चैष मुनिर्विरौति मनसश्चास्त्येव मे संभ्रमः ।

माहासीर्जनकात्मजामिति मुहुः ज्ञेहाद्गुर्याचते

न स्थातुं न च गन्तुमाकुलमतेर्मूढस्य मे निश्चयः ॥’

इत्यन्तेनानिष्टप्राप्तिकृतसंभ्रमः ।

इष्टप्राप्तिकृतौ यथात्रैव—‘(प्रविश्य पद्याक्षेपेण संत्रान्तो वानरः ।) **वानरः**—
महाराज, एदं खु पवणणंदणागमणेण पहरिस—’ इत्यादि ‘देवैस्स हिअआणंद-
जणणं विअलिदं महुवणं ।’ इत्यन्तम् ।

यथा वा वीरचरिते (१।५५)—

‘एह्येहि वत्स रघुनन्दन पूर्णचन्द्र चुम्बामि मूर्धनि चिरस्य परिष्वजे लाम् ।
आरोप्य वा हृदि दिवानिशमुद्वहामि वन्देऽथवा चरणपुष्करकद्वयं ते ॥’

वह्निजो यथामरुशतके (श्लो० २)—

‘क्षितो हस्तावलग्नः प्रसभमभिहतोऽप्याददानोऽशुकान्तं
गृह्णन्केशेष्वपास्तश्चरणनिपतितो नेक्षितः संत्रमेण ।
आलिङ्गन्त्योऽवधृतस्त्रिपुरयुवतिभिः साश्रुनेत्रोत्पलाभिः
कामीवार्द्रापराधः स दहतु दुरितं शांभवो वः शराम्निः ॥’

यथा वा रत्नावल्याम् (४।१६)—

विरम विरम बहे मुञ्च धूमाकुलत्वं प्रसरयसि किमुच्चैरर्चिषां चकवालम् ।
विरहहुतभुजाहं यो न दग्धः प्रियायाः प्रलयदहनभासा तस्य किं त्वं करोषि ॥’

करिजो यथा रघुवंशे (५।४९)—

‘स च्छिन्नबन्धद्रुतयुग्मशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन ।
रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार ॥’

करिग्रहणं व्यालोपलक्षणार्थम् । तेन व्याघ्रशृङ्गरवानरादिप्रभवा आवेगा
व्याख्याताः ।

अथ वितर्कः—

तर्को विचारः संदेहाद्भूशिरोऽङ्गुलिनर्तकः ।

यथा—

‘किं लोभेन विलङ्घितः स भरतो येनैतदेवं कृतं
सद्यः स्त्रीलघुतां गता किमथवा मातैव मे मध्यमा ।
मिथ्यैतन्मम चिन्तितं द्वितयमप्यार्यानुजोऽसौ गुरु-
र्माता तातकलत्रमित्यनुचितं मन्ये विधात्रा कृतम् ॥’

अथवा,—

‘कः समुचिताभिषेकादार्यं प्रच्यावयेद्गुणज्येष्ठम् ।
मन्ये ममैष पुण्यैः सेवावसरः कृतो विधिना ॥’

अथावहित्थम्—

लज्जाद्यैर्विक्रियागुप्ताववहित्थाङ्गविक्रिया ।

१ ‘महाराज, एतत्खलु पवननन्दनागमनेन प्रहर्ष—’ इति च्छाया. २ ‘देवस्य
हृदयानन्दजननं विदलितं मधुवनम्’ इति च्छाया.

यथा कुमारसंभवे (६।८४)—

‘एवंवादिनि देवपौ पाश्वे पितुरधोमुखी ।

लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥’

अथ व्याधिः—

व्याधयः सन्निपाताद्यास्तेषामन्यत्र विस्तरः ॥ २९ ॥

दिङ्मात्रं तु यथा—

‘अच्छिन्नं नयनाम्बु वन्दुषु कृतं चिन्ता गुरुभ्योऽर्पिता

दत्तं दैन्यमशेषतः परिजने तापः सखीष्वाहितः ।

अथ श्वः परिनिर्वृतिं व्रजति सा श्वासैः परं खिद्यते

विश्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया ॥’

अथोन्मादः—

अप्रेक्षाकारितोन्मादः सन्निपातग्रहादिभिः ।

अस्मिन्नवस्था रुदितगीतहासासितादयः ॥ ३० ॥

यथा—‘आः क्षुद्राक्षस, तिष्ठ तिष्ठ । क्व मे प्रियतमामादाय गच्छसि’

इत्युपक्रमे ‘कथम्,—

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न हसतिशाचरः

सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम् ।

अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा

कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी ॥’ (विक्रमो० ४।७)

इत्यादि ।

अथ विषादः—

प्रारब्धकार्यासिद्ध्यादेर्विषादः सत्त्वसंक्षयः ।

निःश्वासोच्छ्वासहृत्तापसहायान्वेषणादिकृत् ॥ ३१ ॥

यथा वीरचरिते (पृ० २९)—‘हा आर्ये ताडके, किं हि नामैतत् । अम्बुनि

मज्जन्त्यलाबूनि, प्रावाणः लुवन्ते ।

‘नन्वेष राक्षसपतेः स्खलितः प्रतापः प्राप्तोऽद्भुतः परिभवो हि मनुष्यपोतात् ।

दृष्टः स्थितेन च मया खजनप्रमाथो दैन्यं जरा च निरुणद्धि कथं करोमि ॥’

(वीर० १।४०)

अथौत्सुक्यम्—

कालाक्षमत्वमौत्सुक्यं रम्येच्छारतिसंभ्रमैः ।

तत्रोच्छ्वासत्वेनिःश्वासहृत्तापस्वेदविभ्रमाः ॥ ३२ ॥

यथा कुमारसंभवे (७।२२)—

‘आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी ।

हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः ॥’

यथा वा तत्रैव—

‘पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छ्रादनिनयदद्रिमुतासमागमोक्तः ।

कमपरमवशं न विप्रकुर्युर्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः ॥’

(कुमार० ६।९५)

अथ चापलम्—

मात्सर्यद्वेपरागादेश्चापलं त्वनवस्थितिः ।

तत्र भर्त्सनपारुष्यस्वच्छन्दाचरणादयः ॥ ३३ ॥

यथा विकटनितम्बायाः—

‘अन्यासु तावदुपमर्दसहायु मृङ्ग लोलं विनोदय मनः सुमनो लतासु ।

वालमजातरजसं कलिकामकाले व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥’

यथा वा—

‘विनिकषणरणत्कठोरदंष्ट्राककचविशङ्कटकन्दरोदराणि ।

अहमहमिकया पतन्तु कोपात्सममधुनैव किमत्र मन्मुखानि ॥’

अथवा प्रस्तुतमेव तावत्सुविहितं करिष्ये ।’ इति ।

अन्ये च चित्तवृत्तिविशेषा एतेषामेव विभावानुभावस्वरूपानुप्रवेशाच्च पृथ-
ग्वाच्याः ।

अथ स्थायी—

विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः ।

आत्मभावं नयत्यन्यान्स स्थायी लवणाकरः ॥ ३४ ॥

सजातीयविजातीयभावान्तरैरतिरस्कृतत्वेनोपनिबध्यमानो रत्यादिः स्थायी । यथा बृहत्कथायां नरवाहनदत्तस्य मदनमङ्गूषायामनुरागः । तत्तद्वान्तरानेक-
नायिकानुरागैरतिरस्कृतः स्थायी । यथा च मालतीमाधवे श्मशानाङ्के बीम-
त्सेन मालत्यनुरागस्यातिरस्कारो मम हि प्राक्तनोपलम्भसंभावितात्मजन्मनः
संस्कारस्यानवरतप्रबोधात्प्रतीयमानस्तद्विसदृशैः प्रत्ययान्तरैरतिरस्कृतप्रवाहः प्रिय-
तमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिस्तानस्तन्मयमिव करोत्यन्तर्वृत्तिसारूप्यतश्चैतन्यमित्यादि-
नोपनिबद्धः । तदनेन प्रकारेण विरोधिनामविरोधिनां च समावेशो न
विरोधी । तथा हि—विरोधः सहानवस्थानं बाध्यबाधकभावो वा । उभयरूपेणापि
न तावत्तादात्म्यमस्यैकरूपत्वेनैवाविर्भावात् । स्थायिनां च विभावादीनां यदि
विरोधस्तत्रापि न तावत्सहानवस्थानं रत्याद्युपरक्ते चेतसि स्रक्सूत्रन्यायेनावि-
रोधिनां व्यभिचारिणां चोपनिबन्धः समस्तभावकस्वसंवेदनसिद्धः । यथैव
स्वसंवेदनसिद्धस्तथैव काव्यव्यापारसंरम्भेणानुकार्येऽप्यावेश्यमानः स्वचेतःसंभे-
देन तथाविधानन्दसंविदुन्मीलनहेतुः संपद्यते । तस्मान्न तावद्भावानां सहानव-
स्थानम् । बाध्यबाधकभावस्तु भावान्तरैर्भावान्तरतिरस्कारः । स च व्यभिचा-
रिणां स्थायिनामविरुद्धव्यभिचारिभिः स्थायिनोऽविरुद्धास्तेषामङ्गत्वात्प्रधानविरुद्धस्य
चाङ्गत्वायोगादानन्तर्यविरोधित्वमप्यनेन प्रकारेणापास्तं भवति । तथा च मालती-
माधवे शृङ्गारानन्तरं बीभत्सोपनिबन्धेऽपि न किञ्चिद्वैरस्यं तदेवमेव स्थिते

विरुद्धरसैकावलम्बनत्वमेव विरोधे हेतुः । सत्त्वविरुद्धरसान्तरव्यवधानेनोपनिब-
ध्यमानो न विरोधी । यथा—

‘अण्णहुणाहुमहेलिअहुजुहुपरिमलसुसुअंधु ।

मुहुकंतह अगत्थहअंग ण फिट्ठइ गंधु ॥’

इत्यत्र बीभत्सरसस्याङ्गभूतरसान्तरव्यवधानेन शृङ्गारसमावेशो न विरुद्धः प्रका-
रान्तरैर्गैकाश्रयविरोधी परिहर्तव्यः । ननु यत्रैकतात्पर्येणैतरेषां विरुद्धानामविरु-
द्धानां च न्यग्भूतत्वेनोपादानं तत्र भवत्वङ्गत्वेनाविरोधः । यत्र तु समप्रधान-
त्वेनानेकस्य भावस्योपनिबन्धनं तत्र कथम् । यथा—

‘एकंनो रुअइ पिआ अण्णनो समरतूरणिग्घोसो ।

पेम्मेण रणरसेण अ भडस्स डोलाइअं हिअअं ॥’

इत्यादौ रत्युत्साहयोः । यथा वा (शृंगार० ३६)—

‘मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्यमार्थाः समर्यादमिदं वदन्तु ।

सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणामुत स्मरन्तेरविलासिनीनाम् ॥’

इत्यादौ रतिशमयोः । यथा च—

‘इयं सा लोलाक्षी त्रिभुवनललामैकवसतिः

स चायं दुष्टात्मा स्वसुरपकृतं येन मम तत् ।

इतस्तीव्रः कामो गुरुरयमिति क्रोधदहनः

कृतो वेषश्चायं कथमिदमिति आम्रयति मनः ॥’

इत्यादौ तु रतिकोशयोः ।

‘अञ्चैः कल्पितमङ्गलप्रतिसराः स्त्रीहस्तरत्नोत्पल-

व्यक्तोत्तंसमृतः पिनद्धशिरसा हृत्पुण्डरीकस्रजः ।

एताः शोणितपङ्ककुङ्कुमजुषः संभूय कान्तैः पिब-

न्त्यस्थिस्नेहसुरां कपालचपकैः प्रीताः पिशाचाङ्गनाः ॥’

(मालती० ५।१८)

इत्यादावेकाश्रयत्वेन रतिजुगुप्सयोः ।

‘एकं ध्याननिमीलनान्मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुनः

पार्वत्या वदनाम्बुजस्तनतटे शृङ्गारभारालसम् ।

अन्यदूरनिकृष्टचापमदनकोधानलोदीपितं

शम्भोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु वः ॥’

इत्यादौ शमरतिकोधानाम् ।

‘एकेनाक्षणा प्रविततरुषा वीक्षते व्योमसंस्थं

भानोर्विम्बं सजललुलितेनापरेणात्मकान्तम् ।

१ नितान्तास्फुटत्वादस्य श्लोकस्य व्याख्या न लिख्यतेऽस्माभिः.

२ ‘एकतो रोदिति प्रियान्यतः समरतूर्यनिर्घोषः ।

प्रेम्णा रणरसेन च भटस्य दोलायितं हृदयम् ॥’ इति च्छाया.

अहश्छेदे दयितविरहाशङ्किनी चक्रवाकी

द्वौ संकीर्णौ रचयति रसौ नर्तकीव प्रगल्भा ॥'

इत्यादौ रतिशोकक्रोधानां समप्राधान्येनोपनिबन्धस्तत्कथं न विरोधः ? अत्रोच्यते—अत्राप्येक एव स्थायी । तथा हि—‘एकतो रुअइ पिआ’ इत्यादौ स्थायिभूतोत्साहव्यभिचारिलक्षणवितर्कभावहेतुसंदेहकारणतया करुणसंग्रामतूर्ययोरुपादानं वीरमेव पुष्पातीति भट्टस्येत्यनेन पदेन प्रतिपादितम् । न च द्वयोः समप्रधानयोरन्योन्यसुपकार्योपकारकभावरहितयोरेकवाक्यभावो युज्यते । किंचोपक्रान्ते संग्रामे सुभटानां कार्यान्तरकरणेन प्रस्तुतसंग्रामौदासीन्येन महदनौचित्यम् । अतो भर्तुः संग्रामैकरसिकतया शौर्यमेव प्रकाशयन्प्रियतमाकरुणो वीरमेव पुष्पाति । ए३म् ‘मात्सर्यम्—’ इत्यादावपि चिरप्रवृत्तरतिवासनाया हेयतयोपादानाच्छमैकपरत्वम् ‘आर्याः समर्यादम्’ इत्यनेन प्रकाशितम् । एवम् ‘इयं सा लोलाक्षी’ इत्यादावपि रावणस्य प्रतिपक्षनायकतया निशाचरत्वेन मायाप्रधानतया च रौद्रव्यभिचारिविषादविभाववितर्कहेतुतया रतिक्रोधयोरुपादानं रौद्रपरमेव । ‘अन्त्रैः कल्पितमङ्गलप्रतिसराः’ इत्यादौ हास्यरसैकपरत्वमेव । ‘एकं ध्याननिमीलनात्’ इत्यादौ शंभोर्भावान्तरैरनाक्षिप्ततया शमस्थस्यापि योग्यन्तरशमाद्वैलक्ष्यप्रतिपादनेन शमैकपरतैव ‘समाधिसमये’ इत्यनेन स्फुटीकृता । ‘एकेनाक्ष्णा’ इत्यादौ तु समस्तमपि वाक्यं भविष्यद्विप्रलम्भविषयमिति न क्वचिदनेकतात्पर्यम् । यत्र तु श्लेषादिवाक्येष्वनेकतात्पर्यमपि तत्र वाक्यार्थभेदेन स्वतन्त्रतया चार्थद्वयपरतेत्यदोषः । यथा—

‘श्लाघ्याशेषतनुं सुदर्शनकरः सर्वाङ्गलीलाजित-

त्रैलोक्यां चरणारविन्दललितेनाक्रान्तलोको हरिः ।

विभ्राणां मुखमिन्दुसुन्दररुचं चन्द्रात्सचक्षुर्द्ध-

त्स्थाने यां स्वतनोरपश्यदधिकां सा रुक्मिणी वोऽवतात् ॥'

इत्यादौ । तदेवमुक्तप्रकारेण रत्याद्युपनिबन्धे सर्वत्राविरोधः । यथा वा श्रूयमाणरत्यादिपदेष्वपि वाक्येषु तत्रैव तात्पर्यं तथाप्रे दर्शयिष्यामः ।

ते च—

रत्युत्साहजुगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः ।

शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ॥ ३५ ॥

इह शान्तरसं प्रति वादिनामनेकविधा विप्रतिपत्तयः । तत्र केचिदाहुः—नास्त्येव शान्तो रसः । तस्याचार्येण विभावाद्यप्रतिपादनाल्लक्षणाकरणात् । अन्ये तु वस्तुतस्तस्याभावं वर्णयन्ति । अनादिकालप्रवाहायारागद्वेषयोरुच्छेत्तुमशक्यत्वात् । अन्ये तु वीरवीभत्सादावन्तर्भावं वर्णयन्ति । एवं वदन्तः शममपि नेच्छन्ति । यथा तथास्तु । सर्वथा नाटकादावभिनयात्मनि स्थायित्वमस्माभिः शमस्य निषिध्यते । तस्य समस्तव्यापारप्रविलयरूपस्याभिनयायोगात् । यत्तु कैश्चिन्नागानन्दादौ शमस्य स्थायित्वमुपवर्णितम्, तत्तु मलयवलयनुरागेणाप्रबन्ध-

प्रवृत्तेन विद्याधरचक्रवर्तित्वप्राप्त्याऽविरुद्धम् । न ह्येकानुकार्यविभावालम्बनौ विष-
यानुरागापरागावुपलब्धौ । अतो दयावीरोत्साहस्यैव तत्र स्थायित्वम् । तत्रैव
शृङ्गारस्याङ्गत्वेन चक्रवर्तित्वावाप्तेश्च फलत्वेनाविरोधादीप्सितमेव च सर्वत्र कर्त-
व्यमिति परोपकारप्रवृत्तस्य विजिगीषोर्नान्तरीयकत्वेन फलं संपद्यत इत्यावेदित-
मेव प्राक् । अतोऽष्टावेव स्थायिनः । ननु च 'रसनाद्रसत्वमेषां मधुरादीना-
मिवोक्तमाचार्यैः । निर्वेदादिष्वपि तत्प्रकाममस्तीति तेऽपि रसाः ॥' इत्यादिना
रसान्तराणामप्यन्यैरभ्युपगतत्वात्स्थायिनोऽप्यन्ये कल्पिता इत्यवधारणानुपपत्तिः ।

अत्रोच्यते—

निर्वेदादिरताद्रूप्यादस्थायी खदते कथम् ।

वैरस्यायैव तत्पोषस्तेनाष्टौ स्थायिनो मताः ॥ ३६ ॥

विरुद्धाविरुद्धाविच्छेदित्वस्य निर्वेदादीनामभावादस्थायित्वम् । अत एव ते
चिन्तादिस्वस्वव्यभिचार्यन्तरिता अपि परितोषं नीयमाना वैरस्यमावहन्ति । न
च निष्फलावसानत्वमेतेषामस्थायित्वनिवन्धनं हास्यादीनामप्यस्थायित्वप्रसङ्गात् ।
पारम्पर्येण तु निर्वेदादीनामपि फलवत्त्वात् । अतो निष्फलत्वमस्थायित्वे प्रयोजकं
न भवति । किंतु विरुद्धैरविरुद्धैर्भावैरतिरस्कृतत्वम् । न च निर्वेदादीनामिति न ते
स्थायिनः । ततो रसत्वमपि न तेषामुच्यते । अतोऽस्थायित्वादेवैतेषामरसता । कः
पुनरेतेषां काव्येनापि संबन्धः ? न तावद्वाच्यवाचकभावः, स्वशब्दैरनावेदितत्वात् ।
न हि शृङ्गारादिशब्देषु काव्येषु शृङ्गारादिशब्दा रत्यादिशब्दा वा श्रूयन्ते । येन
तेषां तत्परिपोषस्य वाभिधेयत्वं स्यात् । यत्रापि च श्रूयन्ते तत्रापि विभावाद्विद्वा-
रकमेव रसत्वमेतेषां न स्वशब्दाभिधेयत्वमात्रेण । नापि लक्ष्यलक्षकभावस्तत्सा-
मान्याभिधायिनस्तु लक्षकस्य पदस्याप्रयोगात् । नापि लक्षितलक्षणया तत्प्रति-
पत्तिः । यथा 'गङ्गायां घोषः' इत्यादौ । तत्र हि स्वार्थे स्रोतोलक्षणे घोषस्याव-
स्थानासंभवात्स्वार्थे स्वलङ्घतिर्गङ्गाशब्दः स्वार्थं विना भूतार्थोपलक्षितं तदमुप-
लक्षयति । अत्र तु नायकादिशब्दाः स्वार्थेऽस्वलङ्घतयः कथमिवार्थान्तरमुपल-
क्षयेयुः ? को वा निमित्तप्रयोजनाभ्यां विना मुख्ये सत्युपचरितं प्रयुज्जीत ?
'सिंहो माणवकः' इत्यादिवत् । अत एव गुणवृत्त्यापि नेयं प्रतीतिः । यदि वाच्य-
त्वेन रसप्रतिपत्तिः स्यात्तदा केवलवाच्यवाचकभावमात्रव्युत्पन्नचेतसामप्य-
रसिकानां रसास्वादो भवेत् ! न च काल्पनिकत्वमविगानेन सर्वसहृदयानां
रसास्वादोद्भूतेः । अतः केचिदभिधालक्षणागौणीभ्यो वाच्यान्तरपरिकल्पितश-
क्तिभ्यो व्यतिरिक्तं व्यञ्जकत्वलक्षणं शब्दव्यापारं रसालंकारवस्तुविषयमिच्छन्ति ।
तथा हि—विभावानुभावव्यभिचारिमुखेन रसादिप्रतिपत्तिरुपजायमाना कथमिव
वाच्या स्यात् ? यथा कुमारसंभवे (३।६८)—

‘विवृण्वती शैलमुतापि भावमङ्गैः स्फुटद्वालकदम्बकल्पैः ।

साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥’

इत्यादावनुरागजन्यावस्थाविशेषानुभाववद्विरिजालक्षणविभावोपवर्णनादेवाऽशब्दापि
शृङ्गारप्रतीतिरुदेति । रसान्तरेष्वप्ययमेव न्यायः । न केवलं रसेष्वेव यावद्व-
स्तुमात्रेऽपि । यथा (गाथा० २।७५)—

‘भ्रम धम्मिअ वीसद्धो सो सुण्हो अज्ज मारिओ तेण ।

गोलाणइक्कच्छकुडंगवासिणा दरिअसीहेण ॥’

इत्यादौ निषेधप्रतिपत्तिरशब्दापि व्यञ्जकशक्तिमूलैव । तथालंकारेष्वपि—

‘लावण्यकान्तिपरिपूरितदिङ्मुखेऽस्मिन्स्मेरेऽधुना तव मुखे तरलायताक्षि ।

क्षोभं यदेति न मनागपि तेन मन्ये सुव्यक्तमेव जलराशिरयं पयोधिः ॥’

इत्यादिषु चन्द्रतुल्यं तन्वीवदनारविन्दमित्याद्युपमावलंकारप्रतिपत्तिर्व्यञ्जकत्वनि-
बन्धनीति । न चासावर्थपत्तिजन्या । अनुपपद्यमानार्थापेक्षाभावात् । नापि
वाक्यार्थत्वम्, व्यङ्ग्यस्य तृतीयकक्षाविषयत्वात् । तथाहि—‘भ्रम धार्मिक’ इत्यादौ
पदार्थविषयाभिधालक्षणप्रथमकक्षातिक्रान्तक्रियाकारकसंसर्गात्मकविविधविषयवा-
क्यार्थकक्षातिक्रान्ततृतीयकक्षाक्रान्तो निषेधात्मा व्यङ्ग्यलक्षणोऽर्थो व्यञ्जकश-
क्त्यधीनः स्फुटमेवावभासते । अतो नासौ वाक्यार्थः । ननु च तृतीयकक्षावि-
षयत्वमश्रूयमाणपदार्थतात्पर्येषु ‘विषं भुङ्क्ष्व’ इत्यादिवाक्येषु निषेधार्थविषयेषु
प्रतीयत एव वाक्यार्थः । न चात्र व्यञ्जकत्वादिनापि वाक्यार्थत्वं नेष्यते तात्प-
र्यादन्यात्वाद्धनेः । तत्र स्वार्थस्य द्वितीयकक्षायामविश्रान्तस्य तृतीयकक्षाभा-
वात् । सैव निषेधकक्षा तत्र द्वितीयकक्षाविधौ क्रियाकारकसंसर्गानुपपत्तेः । प्रक-
रणात्पितरि वक्तुरि पुत्रस्य विषमक्षणनियोगाभावात् । रसवद्वाक्येषु च विभाव-
प्रतिपत्तिलक्षणद्वितीयकक्षायां रसानवगमात् । तदुक्तम्—

‘अप्रतिष्ठमविश्रान्तं स्वार्थं यत्परतामिदम् ।

वाक्यं विगाहते तत्र न्याय्या तत्परतास्य सा ॥

यत्र तु स्वार्थविश्रान्तं प्रतिष्ठां तावदागतम् ।

तत्प्रसर्पति तत्र स्यात्सर्वत्र ध्वनिना स्थितिः ॥’

इत्येवं सर्वत्र रसानां व्यङ्ग्यत्वमेव । वस्त्वलंकारयोस्तु कचिद्वाच्यत्वं कचिद्व्यङ्ग्य-
त्वम् । तत्रापि यत्र व्यङ्ग्यस्य प्राधान्येन प्रतिपत्तिस्तत्रैव ध्वनिः, अन्यत्र गुणी-
भूतव्यङ्ग्यत्वम् । तदुक्तम्—

‘यत्रार्थः शब्दो वा यमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।

व्यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥

प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गं तु रसादयः ।

काव्ये तस्मिन्नलंकारो रसादिरिति मे मतिः ॥’

यथा—‘उपोढरागेण’ इत्यादि । तस्य च ध्वनेर्विवक्षितवाच्याविवक्षितवा-
च्यत्वेन द्वैविध्यम् । अविवक्षितवाच्योऽत्यन्ततिरस्कृतस्वार्थोऽर्थान्तरसंक्रमितवा-

१ ‘भ्रम धार्मिक विश्रव्यः स श्वाऽद्य मारितस्तेन ।

गोदावरीनदीकच्छकुटङ्गवासिना दरीसिहेन ॥’ इति च्छाया.

च्यश्चेति द्विधा । विवक्षितवाच्यश्च असंलक्षितक्रमः क्रमद्योल्यश्चेति द्विविधः । तत्र रसादीनामसंलक्ष्यक्रमे ध्वनित्वं प्राधान्यप्रतीतौ सत्यामङ्गलेन प्रतीतौ रसवदलंकार इति ।

अत्रोच्यते—

वाच्या प्रकरणादिभ्यो बुद्धिस्था वा यथा क्रिया ।

वाक्यार्थः कारकैर्युक्ता स्थायी भावस्तथेतरेः ॥ ३७ ॥

यथा लौकिकवाक्येषु श्रूयमाणक्रियेषु 'गामभ्याज—' इत्यादिष्वश्रूयमाणक्रियेषु च 'द्वारं द्वारम्' इत्यादिषु स्वशब्दोपादानात्प्रकरणादिवशाद्बुद्धिसंनिवेशिनी क्रियैव कारकोपचिता वाक्यार्थस्तथा काव्येष्वपि स्वशब्दोपादानात्कचित् 'प्रीत्यै नवोढा प्रिया' इत्येवमादौ, कचिच्च प्रकरणादिवशान्नियताविहितविभावाद्यविनाभावाद्वा साक्षाद्भावकचेतसि विपरिवर्तमानो रत्नादिः स्थायी स्वस्वविभावानुभावव्यभिचारिभिस्तत्तच्छब्दोपनीतैः संस्कारपरम्परया परं प्रौढिमान्नीयमानो रत्नादिवाक्यार्थः । न चापदार्थस्य वाक्यार्थत्वं नास्तीति वाच्यम् । कार्यपर्यवसायित्वात्तात्पर्यशक्तेः । तथा हि—पौरुषेयमपौरुषेयं वाक्यं सर्वं कार्यपरम् । अतत्परत्वेऽनुपादेयत्वादुन्मत्तादिवाक्यवत्काव्यशब्दानां चान्वयव्यतिरेकाभ्यां निरतिशयसुखास्वादव्यतिरेकेण प्रतिपाद्यप्रतिपादकयोः प्रवृत्तिविषययोः प्रयोजनान्तरानुपलब्धेः स्वानन्दोद्भूतिरेव कार्यत्वेनावधार्यते । तदुद्भूतिनिमित्तत्वं च विभावादिसंस्पृष्टस्य स्थायिन एवावगम्यते । अतो वाक्यस्याभिधानशक्तिस्तेन तेन रसेनाकृष्यमाणा तत्तत्स्वार्थापेक्षितावान्तरविभावादिप्रतिपादनद्वारा स्वपर्यवसायितामानीयते । तत्र विभावादयः पदार्थस्थानीयास्तत्संस्पृष्टो रत्नादिर्वाक्यार्थः । तदेतत्काव्यवाक्यं, यदीयं ताविनौ पदार्थवाक्यार्थौ । न चैवं सति गीतादिवत्सुखजनकत्वेऽपि वाच्यवाचकभावानुपयोगः । विशिष्टविभावादिसामग्रीविदुषामेव तथाविधरत्नादिभावनावतामेव स्वादोद्भूतेस्तदनेनान्तिप्रसङ्गोऽपि निरस्तः । ईदृशि च वाक्यार्थनिरूपणे परिकल्पिताभिवादिशक्तिवशेनैव समस्तवाक्यार्थावगतेः शक्त्यन्तरपरिकल्पनं प्रयासः । यथावोचामकाव्यनिर्णये—

‘तात्पर्यानतिरेकाच्च व्यञ्जकत्वस्य न ध्वनिः ।

किमुक्तं स्यादश्रुतार्थतात्पर्यंऽन्योक्तिरूपिणि ॥’

विषं भक्षय पूर्वं यश्चैवं परमुतादिषु ।

प्रसह्यते प्रधानत्वाद्भ्रान्तित्वं केन वार्यते ॥

ध्वनिश्चेत्स्वार्थविश्रान्तं वाक्यमर्थान्तराश्रयम् ।

तत्परत्वं त्वविश्रान्तौ तन्न विश्रान्त्यसंभवात् ॥

एतावत्येव विश्रान्तिस्तात्पर्यस्येति किं कृतम् ।

यावत्कार्यप्रसारित्वात्तात्पर्यं न तुलाधृतम् ॥

भ्रमधार्मिकविश्रब्धमिति भ्रमिकृतास्पदे ।

निर्व्यावृत्ति कथं वाक्यं निषेधमुपसर्पति ॥

प्रतिपाद्यस्य विश्रान्तिरपेक्षापूरणाद्यदि ।
 वक्तुर्विवक्षितप्राप्तेरविश्रान्तिर्न वा कथम् ॥
 पौरुषेयस्य वाक्यस्य विवक्षापरतन्त्रता ।
 वक्त्रभिप्रेततात्पर्यमतः काव्यस्य युज्यते ॥'

इति । अतो न रसादीनां काव्येन सह व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावः । किं तर्हि भाव्यभावकसंबन्धः ? काव्यं हि भावकम् । भाव्या रसादयः । ते हि स्वतो भवन्त एव भावकेषु विशिष्टविभावादिमता काव्येन भाव्यन्ते । न चान्यत्र शब्दान्तरेषु भाव्यभावकलक्षणसंबन्धाभावात्काव्यशब्देऽपि तथा भाव्यमिति वाच्यम् । भावनाक्रियावादिभिस्तथाङ्गीकृतत्वात् । किंच मा चान्यत्र तथास्त्वन्वयव्यतिरेकाभ्यामिह तथावगमात् । तदुक्तम्—

‘भावाभिनयसंबन्धान्भावयन्ति रसानिमान् ।
 यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाढ्ययोक्तृभिः ॥’

इति । कथं पुनरगृहीतसंबन्धेभ्यः पदेभ्यः स्याद्यादिप्रतिपत्तिरिति चेन्नोक्ते तथाविधचेष्टायुक्तस्त्रीपुंसादिषु रत्याद्यविनाभावदर्शनादिहापि तथोपनिबन्धे सति रत्याद्यविनाभूतचेष्टादिप्रतिपादकशब्दश्रवणादभिधेया विनाभावेन लाक्षणिकी रत्यादिप्रतीतिः । यथा च काव्यार्थस्य रसभावकत्वं तथाप्रे वक्ष्यामः ।

रसः स एव स्वाद्यत्वाद्रसिकस्यैव वर्तनात् ।

नानुकार्यस्य वृत्तत्वात्काव्यस्यातत्परत्वतः ॥ ३८ ॥

द्रष्टुः प्रतीतिर्वीडिर्ग्यारागद्वेषप्रसङ्गतः ।

लौकिकस्य स्वरमणीसंयुक्तस्येव दर्शनात् ॥ ३९ ॥

काव्यार्थोपप्लावितो रसिकवर्ती रत्यादिः स्थायीभावः स इति प्रतिनिर्दिश्यते । स च स्वाद्यतां निर्भरानन्दसंविदात्मतामापाद्यमानो रसो रसिकवर्तीति वर्तमानत्वाच्चानुकार्यरामादिवर्ती वृत्तत्वात्तस्य । अथ शब्दोपहितरूपत्वेनावर्तमानस्यापि वर्तमानवदवभासनमिष्यत एव । तथापि तदवभासस्यास्मदादिभिरनुभूयमानत्वादसन्समतैकास्वादं प्रति विभावत्वेन तु रामादेर्वर्तमानवदवभासनमिष्यत एव । किंच न काव्यं रामादीनां रसोपजननाय कविभिः प्रवर्त्यते । अपि तु सहृदयानानन्दयितुम् । स च समस्तभावकस्वसंवेद्य एव । यदि चानुकार्यस्य रामादेः शृङ्गारः स्यात्ततो नाटकादौ तद्दर्शने लौकिक इव नायके शृङ्गारिणि स्वकान्तासंयुक्ते दृश्यमाने शृङ्गारवानयमिति प्रेक्षकाणां प्रतीतिमात्रं भवेन्न रसानां स्वादः सत्पुरुषाणां च लज्जेतरेषां त्वसूयानुरागापहारेच्छादयः प्रसज्येरन् । एवं च सति रसादीनां व्यङ्ग्यत्वमपास्तम् । अन्यतो लब्धसत्ताकं वस्त्वन्येनापि व्यज्यते । प्रदीपेनेव घटादि । न तु तदानीमेवाभिव्यञ्जकत्वाभिमतैरापाद्य स्वभावम् । भाव्यन्ते च विभावादिभिः प्रेक्षकेषु रसा इत्यावेदितमेव ।

ननु च सामाजिकाश्रयेषु रसेषु को विभावः ? कथं सीतादीनां देवीनां विभावलेनाविरोधः ? उच्यते—

धीरोदात्ताद्यवस्थानां रामादिः प्रतिपादकः ।

विभावयति रत्यादीन्स्वदन्ते रसिकस्य ते ॥ ४० ॥

न हि कवयो योगिन इव ध्यानचक्षुषा ध्यात्वा प्रातिस्विकीं रामादीनामवस्थां इतिहासवदुपनिबध्नन्ति । किं तर्हि सर्वलोकसाधारणाः स्वोत्प्रेक्षाकृतसन्निधयो धीरोदात्ताद्यवस्थाः क्वचिदाश्रयमात्रदायिन्यो दधति ।

ता एव च परित्यक्तविशेषा रसहेतवः ।

तत्र सीतादिशब्दाः परित्यक्तजनकतनयादिविशेषाः स्त्रीमात्रवाचिनः किमिवा-
निष्टं कुर्युः । किमर्थं तर्ह्युपादीयन्ते इति चेदुच्यते—

क्रीडतां मृण्मयैर्यद्वद्रालानां द्विरदादिभिः ॥ ४१ ॥

स्वोत्साहः स्वदते तद्वच्छ्रोतृणामर्जुनादिभिः ।

एतदुक्तं भवति । नात्र लौकिकशृङ्गारादिवत्ख्यादिविभावादीनामुपयोगः । किं तर्हि प्रतिपादितप्रकारेण लौकिकरसविलक्षणत्वं नाट्यरसानाम् । यदाह—
'अष्टौ नाट्यरसाः स्मृताः' इति ।

काव्यार्थभावनास्वादो नर्तकस्य न वार्यते ॥ ४२ ॥

नर्तकोऽपि न लौकिकरसेन रसवान्भवति । तदानीं भोग्यत्वेन स्वमहिला-
देरग्रहणात् काव्यार्थभावनायां लसदादिवत्काव्यरसास्वादोऽस्यापि न वार्यते ।

कथं च काव्यात् स्वादोद्भूतिः, किमात्मा चासाविति व्युत्पाद्यते—

स्वादः काव्यार्थसंभेदादात्मानन्दसमुद्भवः ।

विकाशविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः ॥ ४३ ॥

शृङ्गारवीरवीर्यभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात् ।

हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि ॥ ४४ ॥

अतस्तज्जन्यता तेषामत एवावधारणम् ।

काव्यार्थेन विभावादिसंस्पृष्टाध्यात्मकेन भावकचेतसः संभेदेऽन्योन्यसं-
चलने प्रत्यस्तमितस्वपरविभागे सति प्रबलतरस्वानन्दोद्भूतिः=स्वादः । तस्य च
सामान्यात्मकत्वेऽपि प्रतिनियतविभावादिकारणजन्यत्वेन संभेदेन चतुर्धा चित्त-
भूमयो भवन्ति । तद्यथा—शृङ्गारे विकासः, वीरे विस्तरः, वीर्यभत्से क्षोभः,
रौद्रे विक्षेप इति, तदन्येषां चतुर्णां हास्याद्भुतभयानककरुणानां स्वसामग्रीलब्ध-
परिपोषाणां त एव चत्वारो विकासाद्याश्चेतसः संभेदाः । अत एव—

'शृङ्गारादि भवेद्भास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।

वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्वीर्यभत्साच्च भयानकः ॥'

इति । हेतुहेतुमद्भाव एव संभेदापेक्षया दर्शितो न कार्यकारणभावाभिप्रायेण तेषां
कारणान्तरजन्यत्वात् ।

'शृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्य इति कीर्तितः ।'

इत्यादिना विकासादिसंभेदैकत्वस्यैव स्फुटीकरणादवधारणमप्यत एवाष्टाविति
संभेदानां भावात् । ननु च युक्तं शृङ्गारवीरहास्यादिषु प्रमोदात्मकेषु वाक्यार्थ-
द० ९

संभेदादानन्दोद्भव इति । करुणादौ तु दुःखात्मकत्वे कथमिवासौ प्रादुःभ्यात् । तथा हि—तत्र करुणात्मककाव्यश्रवणादुःखाविर्भावोऽश्रुपातादयश्च रसिकानामपि प्रादुर्भवन्ति । न चैतदानन्दात्मकत्वे सति युज्यते । सत्यमेतत् । किंतु तादृश एवासावानन्दः सुखदुःखात्मको यथा प्रहरणादिषु संभोगावस्थायां कुट्टमिते स्त्रीणामन्यश्च लौकिकात्करुणात् काव्यकरुणः । तथा हि—अत्रोत्तरोत्तरारसिकानां प्रवृत्तयः । यदि वा लौकिककरुणवद्दुःखात्मकत्वमेवेह स्यात्तदा न कश्चित्तत्र प्रवर्तेत । ततः कारुण्यैकरसानां रामायणादिमहाप्रबन्धानामुच्छेद एव भवेदश्रुपातादयश्चेति वृत्तवर्णनाकर्णनेन विनिपातितेषु लौकिकवैकल्यदर्शनादिवत् प्रेक्षकाणां प्रादुर्भवन्तो न विरुध्यन्ते । तस्माद्रसान्तरवत् करुणस्याप्यानन्दात्मकत्वमेव ।

ननु शान्तरसस्यानभिधेयत्वाद्यद्यपि नाव्येऽनुप्रवेशो नास्ति तथापि सूक्ष्मातीतादिवस्तूनां सर्वेषामपि शब्दप्रतिपाद्यताया विद्यमानत्वात् काव्यविषयत्वं न निवार्यते । अतस्तदुच्यते—

शमप्रकर्षो निर्वाच्यो मुदितादेस्तदात्मता ॥ ४५ ॥

शान्तो हि यदि तावत्—

‘न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा ।

रसस्तु शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शमप्रधानः ॥’

इत्येवंलक्षणः, तदा तस्य मोक्षावस्थायामेवात्मस्वरूपापत्तिलक्षणायां प्रादुर्भावात्तस्य च स्वरूपेणानिर्वचनीयता । तथा हि—श्रुतिरपि ‘स एष नेति नेति’ इत्यन्यापोहरूपेणाह । न च तथाभूतस्य शान्तरसस्य सहृदयाः स्वादयितारः सन्त्यथ तदुपायभूतो मुदितामैत्रीकरुणोपेक्षादिलक्षणस्तस्य च विक्रशविस्तारक्षोभविक्षेपरूपतैवेति । तदुक्त्यैव शान्तरसास्वादो निरूपितः ।

इदानीं विभावादिविषयावान्तरकाव्यव्यापारप्रदर्शनपूर्वकः प्रकरणेनोपसंहारः प्रतिपाद्यते—

पदार्थैरिन्दुनिर्वेदरोमाञ्चादिस्वरूपकैः ।

काव्याद्विभावसंचार्यनुभावप्रख्यतां गतैः ॥ ४६ ॥

भावितः खदते स्थायी रसः स परिकीर्तितः ।

अतिशयोक्तिरूपकाव्यव्यापाराहितविशेषैश्चन्द्राद्यैरुद्दीपनविभावैः प्रमदाप्रभृतिभिरालम्बनविभावैर्निर्वेदादिभिर्व्यभिचारिभावै रोमाञ्चाश्रुभूक्षेपकटाक्षाद्यैरनुभावैरवान्तरव्यापारतया पदार्थभूतैर्वाक्यार्थः स्थायीभावो विभावितो भावरूपतामानीतः खदते स रस इति प्राक्प्रकरणे तात्पर्यम् ।

विशेषलक्षणान्युच्यन्ते—तत्राचार्येण स्थायिनां रत्यादीनां शृङ्गारादीनां च पृथग्लक्षणानि विभावादिप्रतिपादनेनोदितानि । अत्र तु—

लक्षणैक्यं विभावैक्यादभेदाद्रसभावयोः ॥ ४७ ॥

क्रियत इति वाक्यशेषः ।

तत्र तावच्छृङ्गारः—

रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः ।

प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः ।

प्रहृष्यमाणा शृङ्गारो मधुराङ्गविचेष्टितैः ॥ ४८ ॥

इत्थमुपनिबध्यमानं काव्यं शृङ्गारास्वादाय प्रभवतीति । कव्युपदेशपरमेतत् ।

तत्र देशविभावो यथोत्तररामचरिते (१।२६)—

‘स्मरसि सुतनु तस्मिन्मर्वते लक्ष्मणेन प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि ।

स्मरसि सरसतीरां तत्र गोदावरीं वा स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि ॥’

कलाविभावो यथा—

‘हस्तैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः

पादन्यासैर्लयमुपगतस्तन्मयत्वं रसेषु ।

शाखायोनिर्मृदुरभिनयः षड्विकल्पोऽनुवृत्तै-

र्भावे भावे नुदति विषयान् रागबन्धः स एव ॥’

यथा च (नागा० १।१५)—

‘व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धामुना

विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधाऽयं लयः ।

गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण गतयस्तिष्ठोऽपि संपादिता-

स्तत्त्वौघानुगताश्च बाद्यविधयः सम्यक् त्रयो दर्शिताः ॥’

कालविभावो यथा कुमारसंभवे (३।२६)—

‘असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि ।

पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां संपर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥’

इत्युपक्रमे,—

‘मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।

शृङ्गेण संस्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥’ (कुमार० ३।३६)

वेषविभावो यथा तत्रैव (कुमार० ३।५३)—

‘अशोकनिर्भर्त्सितपद्मरागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम् ।

मुक्ताकलापीकृतसिन्दुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती ॥’

उपभोगविभावो यथा—

‘चक्षुर्लुप्तमधीकणं कवलितस्ताम्बूलरागोऽधरे

विश्रान्ता कबरी कपोलफलके लुप्तेव गात्रद्युतिः ।

जाने संप्रति मानिनि प्रणयिना कैरप्युपायक्रमै-

र्भग्नो मानमहातरुस्तरुणि ते चेतःस्थलीवर्धितः ॥’

प्रमोदात्मा रतिर्यथा मालतीमाधवे (१।३९)—

‘जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः

प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये ।

मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ॥'

युवतिविभावो यथा मालविकाग्निमित्रे (२।३)—

‘दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति वदनं बाहू नतावंसयोः
संक्षिप्तं निविडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव ।
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालाङ्गुली
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसः स्पष्टं तथास्या वपुः ॥’

यूनोर्विभावो यथा मालतीमाधवे (१।१८)—

‘भूयो भूयः सविधनगरीरथ्यया पर्यटन्तं
दृष्ट्वा दृष्ट्वा भवनवलमीतुङ्गवातायनस्था ।
साक्षात्कामं नवमिव रतिर्मालतीमाधवं य-
द्वाढोत्कण्ठा ललितललितैरङ्गकैस्ताम्यतीति ॥’

अन्योन्यानुरागो यथा तत्रैव (मालती० १।३२)—

‘यान्या मुहुर्वलितकन्धरमाननं तदावृत्तवृत्तशतपत्रनिभं वहन्त्या ।
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पद्मलाक्ष्या गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः ॥’

मधुराङ्गविचेष्टितं यथा तत्रैव (मालती० १।३०)—

‘स्तिमितविकसितानामुलसद्भूलतानां मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजाम् ।
प्रतिनयननिपाते किञ्चिदाकुञ्चितानां विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥’

ये सत्त्वजाः स्थायिन एव चाष्टौ त्रिंशत्रयो ये व्यभिचारिणश्च ।
एकोनपञ्चाशदमी हि भावा युक्त्या निबद्धाः परिपोषयन्ति ।
आलस्यमौर्ध्यं मरणं जुगुप्सा तस्याश्रयाद्वैतविरुद्धमिष्टम् ॥ ४९ ॥

त्रयस्त्रिंशद्व्यभिचारिणश्चाष्टौ स्थायिन अष्टौ सार्विकाश्चैत्येकोनपञ्चाशत् ।
युक्ताङ्गलेनोपनिबध्यमानाः शृङ्गारं संपादयन्त्यालस्यौर्ध्यजुगुप्सामरणादीन्ये-
कालम्बनविभावाश्रयलेन साक्षादङ्गलेन चोपनिबध्यमानानि विरुध्यन्ते ।
प्रकारान्तरेण चाविरोधः प्राक्प्रतिपादित एव ।

विभागस्तु—

अयोगो विप्रयोगश्च संभोगश्चेति स त्रिधा ।

अयोगविप्रयोगविशेषत्वाद्विप्रलम्भस्यैतत्सामान्याभिधायिलेन विप्रलम्भशब्द
उपचरितवृत्तिर्मा भूदिति न प्रयुक्तः । तथा हि—दत्त्वा संकेतमप्राप्तेऽवध्यति-
क्रमे साध्येन नायिकान्तरानुसरणाच्च विप्रलम्भशब्दस्य मुख्यप्रयोगो वञ्च-
नार्थत्वात् ।

तत्रायोगोऽनुरागोऽपि नवयोरेकचित्तयोः ॥ ५० ॥

पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः ।

योगः=अन्योन्यस्वीकारः, तदभावः=अयोगः । पारतन्त्र्येण विप्रकर्षादैवपित्राद्या-

यत्तत्वात् सागरिकामालयोर्वत्सराजमाधवाभ्यामिव दैवाद्गौरीशिवयोरिवासमागमः= अयोगः ।

दशावस्थः स तत्रादावभिलाषोऽथ चिन्तनम् ॥ ५१ ॥

स्मृतिर्गुणकथोद्वेगप्रलापोन्मादसंज्वराः ।

जडता मरणं चेति दुर्वस्थं यथोत्तरम् ॥ ५२ ॥

अभिलाषः स्पृहा तत्र कान्ते सर्वाङ्गसुन्दरे ।

दृष्टे श्रुते वा तत्रापि विस्मयानन्दसाध्वसाः ॥ ५३ ॥

साक्षात्प्रतिकृतिस्वप्नच्छायामायासु दर्शनम् ।

श्रुतिर्व्याजात्सखीगीतमागधादिगुणस्तुतेः ॥ ५४ ॥

अभिलाषो यथा शाकुन्तले (१।१९)—

‘असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।

सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥’

विस्मयो यथा—

‘स्तनावालोक्य तन्वङ्ग्याः शिरः कम्पयते युवा ।

तयोरन्तरनिर्मन्नां दृष्टिमुत्पाटयन्निव ॥’

आनन्दो यथा विद्वशालभञ्जिकायाम्—

‘सुधावद्धग्रासैरुपवनचकोरैः कवलितं

किरन् ज्योत्स्नामच्छां लवलिलफलपाकप्रणयिनीम् ।

उपप्राकाराग्रं ग्रहिणु नयने तर्कय मना-

गनाकाशे कोऽयं गलितहरिणः शीतकिरणः ॥’

साध्वसं यथा कुमारसंभवे (५।८५)—

‘तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥’

यथा वा (कुमार० ८।२)—

‘व्याहृता प्रतिवचो न संदधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।

सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥’

सानुभावविभावास्तु चिन्ताद्याः पूर्वदर्शिताः ।

गुणकीर्तनं तु स्पष्टत्वाच्च व्याख्यातम् ।

दशावस्थत्वमाचार्यैः प्रायो वृत्त्या निदर्शितम् ॥ ५५ ॥

महाकविप्रैर्वन्धेषु दृश्यते तदनन्तता ।

दिङ्मात्रं तु—

दृष्टे श्रुतेऽभिलाषाच्च किं नौत्सुक्यं प्रजायते ॥ ५६ ॥

अप्राप्तौ किं न निर्वेदो ग्लानिः किं नातिचिन्तनात् ।

शेषं प्रच्छन्नकामितादि कामसूत्रादवगन्तव्यम् ।

अथ विप्रयोगः—

विप्रयोगस्तु विश्लेषो रूढविस्मम्भयोर्द्विधा ॥ ५७ ॥

मानप्रवासमेदेन मानोऽपि प्रणयेर्ष्ययोः ।

प्राप्तयोरप्राप्तिः=विप्रयोगः । तस्य द्वौ भेदौ—मानः, प्रवासश्च । मानविप्रयो-
गोऽपि द्विविधः—प्रणयमानः, ईर्ष्यामानश्चेति ।

तत्र प्रणयमानः स्यात्कोपावसितयोर्द्वयोः ॥ ५८ ॥

प्रेमपूर्वको वशीकारः=प्रणयः, तद्भङ्गो मानः=प्रणयमानः । स च द्वयोर्नायक-
योर्भवति । तत्र नायकस्य यथोत्तररामचरिते (३।३७)—

‘अस्मिन्नेव लतागृहे लमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः

सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद्गोदावरीसैकते ।

आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया

कातर्यादरविन्दकुङ्कुमलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः ॥’

नायिकाया यथा श्रीवाक्पतिराजदेवस्य—

‘प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवीं ससंभ्रमविस्मित-

त्रिभुवनगुरुर्भाल्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत् ।

नमितशिरसो गङ्गालोके तथा चरणाहता-

ववतु भवतस्त्र्यक्षस्यैतद्विलक्षमवस्थितम् ॥’

उभयोः प्रणयमानो यथा—

‘पैणअकुविआण दोण्हवि अलिअपमुत्ताण माणइंताणं ।

णिचलणिरुद्धणीसासदिण्णअण्णाण को मल्लो ॥’

स्त्रीणामीर्ष्याकृतो मानः कोपोऽन्यासङ्गिनि प्रिये ।

श्रुते वाऽनुमिते दृष्टे श्रुतिस्तत्र सखीमुखात् ॥ ५९ ॥

उत्स्वप्रायितभोगाङ्गोत्रस्खलनकल्पितः ।

त्रिधानुमानिको दृष्टः साक्षादिन्द्रियगोचरः ॥ ६० ॥

ईर्ष्यामानः पुनः स्त्रीणामेव नायिकान्तरसङ्गिनि स्वकान्ते उपलब्धे सत्य-
न्यासङ्गः श्रुतो वानुमितो दृष्टो वा स्यात् । तत्र श्रवणं सखीवचनात्तस्या विश्वा-
सत्वात् । यथा ममैव—

‘सुभु त्वं नवनीतकल्पहृदया केनापि दुर्मन्त्रिणा

मिथ्यैव प्रियकारिणा मधुमुखेनास्मासु चण्डीकृता ।

किं त्वेदद्विमृश क्षणं प्रणयिनामेणाक्षि कस्ते हितः

किं धात्रीतनया वयं किमु सखी किं वा किमस्मत्सुहृत् ॥’

१ ‘कोपावेशित’ इति पाठः.

२ ‘प्रणयकुपितयोर्द्वयोरप्यलीकसुप्तयोर्मानवतोः ।

निश्चलनिरुद्धनिश्वासदत्तकर्णयोः को मल्लः ॥’ इति च्छाया.

उत्स्वप्नायितो यथा रुद्रस्य—

‘निर्ममेन मयाम्भसि स्मरभरादाली समालिङ्गिता
केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे मुधा नाम्न्यसि ।
इत्युत्स्वप्नपरम्परासु शयने श्रुत्वा वचः शार्ङ्गिणः
सव्याजं शिथिलीकृतः कमलया कण्ठग्रहः पातु वः ॥’

भोगाङ्गानुमितो यथा—

‘नवनखपदमङ्गं गोपयस्यंशुकेन स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम् ।
प्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गशंसी विसर्पञ्जवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥’

गोत्रस्खलनकल्पितो यथा—

‘केलीगोत्रस्खलने विकुप्ये केअवं अआणंती ।
दुष्ट उअसु परिहासं जाआ सच्चं विअ परुणा ॥’

दृष्टो यथा श्रीमुञ्जस्य—

‘प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवीं ससंभ्रमविस्मित-
स्त्रिभुवनगुरुर्भात्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत् ।
नमितंशिरसो गङ्गालोके तथा चरणाहता-
ववतु भवतल्लयक्षयैतद्विलक्षमवस्थितम् ॥’

एषाम्—

यथोत्तरं गुरुः षड्भिरुपायैस्तमुपाचरेत् ।
साम्ना भेदेन दानेन नत्युपेक्षारसान्तरैः ॥ ६१ ॥
तत्र प्रियवचः साम भेदस्तत्सख्युपाज्जनम् ।
दानं व्याजेन भूषादेः पादयोः पतनं नतिः ॥ ६२ ॥
सामादौ तु परिक्षीणे स्यादुपेक्षावधीरणम् ।
रभसत्रासहर्षादेः कोपभ्रंशो रसान्तरम् ॥ ६३ ॥
कोपचेष्टाश्च नारीणां प्रागेव प्रतिपादिताः ।

तत्र प्रियवचः साम यथा ममैव—

‘स्मितज्योत्स्नाभिस्ते धवलयति विश्वं मुखशशी
दृशस्ते पीयूषद्रवमिव विमुञ्चन्ति परितः ।
वपुस्ते लावण्यं किरति मधुरं दिक्षु तदिदं
कुतस्ते पारुष्यं सुतनु हृदयेनाद्य गुणितम् ॥’

यथा वा—

‘इन्दीवरेण नयनं मुखमम्बुजेन कुन्देन दन्तमधरं नवपल्लवेन ।
अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय वेधाः कान्ते कथं रचितवानुपलेन चेतः ॥’

१ ‘केलीगोत्रस्खलने विकुप्यति कैतवमजानन्ती ।

दुष्ट पदय परिहासं जाया सत्यमिव प्ररुदिता ॥’ इति च्छाया.

नायिकासखीसमावर्जनभेदो यथा ममैव—

‘कृतेऽप्याज्ञामङ्गे कथमिव मया ते प्रणतयो

धृताः स्मिता हस्ते विस्तृजसि रुषं सुभ्रु बहुशः ।

प्रकोपः कोऽप्यन्यः पुनरयमसीमाऽयं गुणितो

वृथा यत्र स्निग्धाः प्रियसहचरीणामपि गिरः ॥’

दानं व्याजेन भूषादेर्यथा माघे (७।५५)—

‘मुहुरुपहसितामिवालिनार्दैर्यितरसि नः कलिकां किमर्थमेनाम् ।

अधिरजनि गतेन धाम्नि तस्याः शठ कलिरेव महांस्त्वयाऽयं दत्तः ॥’

पादयोः पतनं नतिर्यथा—

‘णैर्कोटिविलगं चिकुरं दइअस्स पाअपडिअस्स ।

हिअअं माणपडत्थं उम्मोअं ति च्चिअ कहेइ ॥’

उपेक्षा तदवधीरणं यथा—

‘किं गतेन न हि युक्तमुपैतुं नेश्वरे परुषता सखि साध्वी ।

आनयैनमनुनीय कथं वा विप्रियाणि जनयन्ननुनेयः ॥’

रभसत्रासहर्षादे रसान्तरात्कोपभ्रंशो यथा ममैव—

‘अभिव्यक्तालीकः सकलविफलोपायविभव-

श्चिरं ध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरम्भनिपुणम् ।

इतः पृष्ठे पृष्ठे किमिदमिति संत्रास्य सहसा

कृताश्लेषां धूर्तः स्मितमधुरमालिङ्गति वधूम् ॥’

अथ प्रवासविप्रयोगः—

कार्यतः संभ्रमाच्छापात् प्रवासो भिन्नदेशता ॥ ६५ ॥

द्वयोस्तत्राश्रुनिःश्वासकार्यलम्बालकादिता ।

स च भावी भवन्भूतस्त्रिधाऽऽद्यो बुद्धिपूर्वकः ॥ ६५ ॥

आद्यः कार्यजः समुद्रगमनसेवादिकार्यवशप्रवृत्तौ बुद्धिपूर्वकत्वाद्भूतभविष्य-
द्वर्तमानतया त्रिविधः ।

तत्र यास्यत्प्रवासो यथा—

‘होतैपहिअस्स जाआ आउच्छणजीअधारणरहस्सं ।

पुच्छंती भमइ घरं घरेसु पिअविरहसहिरीआ ॥’

गच्छत्प्रवासो यथामरुशतके (श्लो० १२)—

‘प्रहरविरतौ मध्ये बाह्वस्ततोऽपि परेऽथवा

दिनकृति गते वास्तं नाथ लमय समेष्यसि ।

१ ‘नूपुरकोटिविलगं चिकुरं दयितस्य पादपतितस्य ।

हृदयं मानपदोत्थमुन्मुक्तमित्येव कथयति ॥’ इति च्छाया.

२ ‘भविष्यत्पथिकस्य जाया आयुःक्षणजीवधारणरहस्यम् ।

पृच्छन्ती भ्रमति गृहाद्गृहेषु प्रियविरहसहीका ॥’ इति च्छाया.

इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य यियासतो

हरति गमनं बालाऽऽलापैः सबाष्पगलज्जलैः ॥'

यथा वा तत्रैव—

‘देशैरन्तरिता शतैश्च सरितामुर्वीभृतां काननै-

र्यलेनापि न याति लोचनपथं कान्तेति जानन्नपि ।

उद्वीधश्चरणार्धरुद्धवसुधः कृत्वाश्रुपूर्णे दृशौ

तामाशां पथिकस्तथापि किमपि ध्यात्वा चिरं तिष्ठति ॥’ (अमर० श्लो० ९९)

गतप्रवासो यथा मेघदूते (उत्तर० श्लो० २३)—

‘उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां

मद्गोत्राङ्गं विरचितपदं गेयमुद्रातुकामा ।

तन्म्रीमार्द्रा नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचि-

द्भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥’

आगच्छदगतयोस्तु प्रवासाभावादेष्यत्प्रवासस्य च गतप्रवासाविशेषात्रै-

विध्यमेव युक्तम् ।

द्वितीयः सहस्रोत्पन्नो दिव्यमानुषविप्लवात् ।

उत्पातनिर्घातवातादिजन्यविप्लवात् परचक्रादिजन्यविप्लवाद्वाऽबुद्धिपूर्वकत्वादेकरूप एव संप्रमजः प्रवासः । यथोर्वशीपुरुषरवसोर्विकमोर्वश्याम् । यथा च कपालकुण्ड-
लापहृतायां मालयां मालतीमाधवयोः ।

स्वरूपान्यत्वकरणाच्छापजः सन्निधावपि ॥ ६६ ॥

यथा कादम्बर्या वैशंपायनस्येति ।

मृते त्वेकत्र यत्रान्यः प्रलपेच्छोक एव सः ।

व्याश्रयत्वाच्च शृङ्गारः प्रत्यापन्ने तु नेतरः ॥ ६७ ॥

यथेन्दुमतीमरणादजस्य करुण एव रघुवंशे । कादम्बर्या तु प्रथमं करुण
आकाशसरस्वतीवचनादूर्ध्वं प्रवासश्चङ्गार एवेति ।

तत्र नायिकां प्रति नियमः—

प्रणयायोगयोस्तुका प्रवासे प्रोषितप्रिया ।

कलहान्तरितेर्ष्यायां विप्रलब्धा च खण्डिता ॥ ६८ ॥

अथ संभोगः—

अनुकूलौ निषेवेते यत्रान्योन्यं विलासिनौ ।

दर्शनस्पर्शनादीनि स संभोगो मुदान्वितः ॥ ६९ ॥

यथोत्तररामचरिते (१।२७)—

‘किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगादविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।

सपुलकपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोरविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥’

अथवा । 'प्रिये, किमेतत्,—

‘विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणे

विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च कुरुते ॥’ (उत्तर० १।३५)

यथा च ममैव—

‘लावण्यामृतवर्षिणि प्रतिदिशं कृष्णागरुश्यामले

वर्षाणामिव ते पयोधरभरे तन्वङ्गि दूरोन्नते ।

नासावंशमनोज्ञकेतकतनुर्भूपत्रगर्भोल्लस-

त्पुष्पश्रीस्तिलकः सहेलमलकैर्भृङ्गैरिवापीयते ॥’

चेष्टास्तत्र प्रवर्तन्ते लीलाद्या दश योषिताम् ।

दाक्षिण्यमार्दवप्रेम्णामनुरूपाः प्रियं प्रति ॥ ७० ॥

ताश्च सोदाहृतयो नायकप्रकाशे दर्शिताः ।

रमयेच्चाटुकृतकान्तः कलाक्रीडादिभिश्च ताम् ।

न ग्राम्यमाचरेत्किञ्चिन्नर्मभ्रंशकरं न च ॥ ७१ ॥

ग्राम्यः संभोगो रङ्गे निषिद्धोऽपि काव्येऽपि न कर्तव्य इति पुनर्निषिध्यते ।
यथा रत्नावल्याम् (१।२१)—

‘स्पृष्टस्त्वयैष दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन ।

उङ्गिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोकः ॥’

इत्यादि । नायकनायिकाकैशिकीवृत्तिनाटकनाटिकालक्षणद्युक्तं कविपरम्परा-
वगतं स्वयमौचित्यसंभावनानुगुण्येनोत्प्रेक्षितं चानुसंधानः सुकविः शृङ्गार-
मुपनिबध्नीयात् ।

अथ वीरः—

वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्व-

मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः ।

उत्साहभूः स च दयारणदानयोगा-

त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः ॥ ७२ ॥

प्रतापविनयादिभिर्विभावितः करुणायुद्धदानाद्यैरनुभावितो गर्वधृतिहर्षा-
मर्षस्मृतिमतिवितर्कप्रभृतिभिर्भावित उत्साहः स्थायी खदते भावक्रमनोवि-
स्तारानन्दाय प्रभवतीत्येष वीरः । तत्र दयावीरो यथा नागानन्दे जीमूत-
वाहनस्य । युद्धवीरो वीरचरिते रामस्य । दानवीरः परशुरामबलिप्रभृतीनाम् ।
‘ल्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः’ इति ।

‘खर्वग्रन्थिविमुक्तसंधिविकसद्रक्षःस्फुरत्कौस्तुभं

निर्यन्नाभिसरोजकुड्मलकुटीगम्भीरसामध्वनि ।

पात्रावासिसमुत्सुकेन बलिना सानन्दमालोकितं

पायादः क्रमवर्धमानमहिमाश्चर्यं मुरारेर्वपुः ॥'

यथा च ममैव—

‘लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्गकुङ्कुमारुणितो हरेः ।

बलिरेष स येनास्य भिक्षापात्रीकृतः करः ॥’

विनयादिषु पूर्वमुदाहृतमनुसंधेयम् । प्रतापगुणावर्जनादिना वीराणामपि भावात्रैधं प्रायोवादः । प्रखेदरक्तवदननयनादिक्रोधानुभावरहितो युद्धवीरः, अन्यथा रौद्रः ।

अथ वीभत्सः—

वीभत्सः कृमिपूतिगन्धिवमथुप्रायैर्जुगुप्सैकभू-

रुद्वेगी रुधिरान्त्रकीकसवसामांसादिभिः क्षोभणः ।

वैराग्याजघनस्तनादिषु घृणाशुद्धोऽनुभावैर्वृतो

नासावक्रविकूणनादिभिरिहावेगार्तिशङ्कादयः ॥ ७३ ॥

अत्यन्ताह्वैः कृमिपूतिगन्धिप्रायविभावैरुद्धृतो जुगुप्सास्थायिभावपरिपोषण-
लक्षण रुद्वेगी=वीभत्सः । यथा मालतीमाधवे (५।१९)—

‘उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूच्छोपभूयांसि मांसा-

न्यंसस्फिक्पृष्ठपिण्डाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ।

आर्तः पर्यस्तेनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का-

दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥’

रुधिरान्त्रवसाकीकसमांसादिविभावः क्षोभणो वीभत्सः ।

यथा वीरचरिते (१।३५)—

‘अन्त्रप्रोतवृहत्कपालनलकक्रूरकणत्कङ्कण-

प्रायप्रेङ्खितभूरिभूपणरवैराघोषयन्त्यम्बरम् ।

पीतोच्छिदितरक्तकर्दमघनप्राग्भारघोरोलस-

ब्यालोलस्तनभारभैरववपुर्बन्धोद्धतं धावति ॥’

रम्येष्वपि रमणीयजघनस्तनादिषु वैराग्याद्धृणाशुद्धः=वीभत्सः । यथा—

‘लालां वक्त्रासवं वेत्ति मांसपिण्डौ पयोधरौ ।

मांसास्थिकूटं जघनं जनः कामग्रहातुरः ॥’

न चायं शान्त एव विरक्तो यतो वीभत्समानो विरज्यते ।

अथ रौद्रः—

क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतमयैः पोपोऽस्य रौद्रोऽनुजः

क्षोभः स्वाघरदंशकम्पभुङ्कुटिस्वेदास्यरागैर्युतः ।

शस्त्रोल्लासविकृत्यनांसधरणीघातप्रतिज्ञाग्रहै-

रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलतासूयौश्रयवेगादयः ॥ ७४ ॥

मात्सर्यविभावो रौद्रो यथा वीरचरिते (३।४४)—

‘लं ब्रह्मवर्चसधरो यदि वर्तमानो यद्वा स्वजातिसमयेन धनुर्धरः स्याः ।
उग्रेण भोस्तव तपस्तपसा ददामि पक्षान्तरस्य सदृशं परशुः करोति ॥’

वैरिवैकृतादिर्यथा वेणीसंहारे (१।८)—

‘लाक्षागृहानलविषाज्ञसभाप्रवेशैः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।
आकृष्टपाण्डववधूपरिधानकेशाः स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ॥’
इत्येवमादिविभावैः प्रस्तेदरक्तवदननयनाद्यनुभावैरमर्षादिव्यभिचारिभिः क्रोध-
परिपोषः=रौद्रः । परशुरामभीमसेनदुर्योधनादिव्यवहारेषु वीरचरितवेणीसंहारा-
देरनुगन्तव्यः ।

अथ हास्यः—

विकृताकृतिवाग्देहात्मनोऽथ परस्य वा ।

हासः स्यात्परितोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः ॥ ७५ ॥

आत्मस्थान्विकृतवेषभाषादीन्परस्थान् वा विभावानवलम्बमानः=हासः, तत्परि-
पोषात्मा हास्यो रसो ब्यधिष्ठानो भवति । स चोत्तममध्यमाधमप्रकृतिभेदा-
त्पञ्चिधः ।

आत्मस्थो यथा रावणः—

‘जातं मे परुषेण भस्मरजसा तच्चन्दनोद्भूतं
हारो वक्षसि यज्ञसूत्रमुचितं क्लृष्टा जटाः कुन्तलाः ।
रुद्राक्षैः सकलैः सरत्नवलयं चित्रांशुकं वल्कलं
सीतालोचनहारि कल्पितमहो रम्यं वपुः कामिनः ॥’

परस्थो यथा—

‘भिक्षो मांसनिषेवणं प्रकुरुषे किं तेन मद्यं विना
किं ते मद्यमपि प्रियं प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह ।
वेद्या द्रव्यरुचिः कुतस्तव धनं द्यूतेन चौर्येण वा
चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतो दासस्य काऽन्या गतिः ॥’
स्मितमिह विकासिनयनं किञ्चिल्लक्ष्यद्विजं तु हसितं स्यात् ।
मधुरस्वरं विहसितं सशिरःकम्पमिदमुपहसितम् ॥ ७६ ॥
अपहसितं सास्त्राक्षं विक्षिप्ताङ्गं भवत्यतिहसितम् ।
द्वे द्वे हसिते चैषां ज्येष्ठे मध्येऽधमे क्रमशः ॥ ७७ ॥

उत्तमस्य स्वपरस्थविकारदर्शनात् स्मितहसिते मध्यमस्य विहसितोपहसितेऽध-
मस्यापहसितातिहसिते । उदाहृतयः स्वयमुत्प्रेक्षाः । व्यभिचारिणश्चास्य—

निद्रालस्यश्रमग्लानिमूर्च्छाश्च सहचारिणः ।

अथाद्भुतः—

अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः ॥ ७८ ॥

कर्माऽस्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेदगद्गदाः ।

हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः ॥ ७९ ॥

लोकसीमातिवृत्तपदार्थवर्णनादिविभावितः साधुवादाद्यनुभावपरिपुष्टो विस्मयः
स्थायिभावो हर्षावेगादिविभावितो रसः=अद्भुतः । यथा—

‘दोर्दण्डाद्वितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्धत-

ष्टङ्कारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिण्डिमः ।

द्राक्पर्याप्तकपालसंपुटमिलद्द्रुहाण्डभाण्डोदर-

भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमसौ नाद्यापि विश्राम्यति ॥’

इत्यादि ।

अथ भयानकः—

विकृतस्वरसत्त्वादेर्भयभावो भयानकः ।

सर्वाङ्गवेपथुस्वेदशोषैवैचित्त्यलक्षणः ।

दैन्यसंभ्रमसंमोहत्रासादिस्तत्सहोदरः ॥ ८० ॥

रौद्रशब्दश्रवणाद्रौद्रसत्त्वदर्शनाच्च भयस्थायिभावप्रभवो भयानको रसः ।
तत्र सर्वाङ्गवेपथुप्रभृतयोऽनुभावाः । दैन्यादयस्तु व्यभिचारिणः । भयानको यथा
प्रागुदाहृतः—

‘शस्त्रमेतत्समुत्सृज्य कुर्व्वाभूय शनैः शनैः ।

यथायथागतेनैव यदि शक्नोषि गम्यताम् ॥’

यथा च रत्नावल्याम्—‘नष्टं वर्षवरैः’ (२।३) इत्यादि ।

यथा च—

‘स्वगेहात्पन्थानं तत उपचितं काननमथो

गिरिं तस्मात्सान्द्रद्रुमगहनमस्मादपि शुहाम् ।

तदन्वज्ञान्यङ्गैरभिनिविशमानो न गणय-

त्यरातिः कालीये तव विजययात्रा चकितधीः ॥’

अथ करुणः—

इष्टनाशादनिष्टासौ शोकात्मा करुणोऽनु तम् ।

निःश्वासोच्छ्वासरुदितस्तम्भप्रलपितादयः ॥ ८१ ॥

स्वापापस्मारदैन्याधिमरणालस्यसंभ्रमाः ।

विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः ॥ ८२ ॥

इष्टस्य बन्धुप्रभृतेर्विनाशादनिष्टस्य तु बन्धनादेः प्राप्या शोकप्रकर्षजः=
करुणः । तमन्विति तदनुभावनिःश्वासादिकथनम् । व्यभिचारिणश्च स्वापा-
पस्मारादयः । इष्टनाशात्करुणो यथा कुमारसंभवे (४।३)—

१ ‘वमथु’ इति पाठः. २ ‘वैवर्ण्य’ इति पाठः. ३ ‘आप्तेः’ इति पाठः.

‘अयि जीवितनाथ जीवसीत्यभिधायोत्थितया तथा पुरः ।
ददशे पुरुषाकृतिः क्षितौ हरकोपानलभस्म केवलम् ॥’

इत्यादिरतिप्रलपः । अनिष्टावाप्तेः सागरिकाया बन्धनायथा रत्नावल्याम् ।

प्रीतिभक्त्यादयो भावा मृगयाक्षादयो रसाः ।
हर्षोत्साहादिषु स्पष्टमन्तर्भावाच्च कीर्तिताः ॥ ८३ ॥
स्पष्टम् ।

षट्त्रिंशद्भूषणादीनि सामादीन्येकविंशतिः ।
लक्ष्यसंध्यन्तराङ्गानि सालंकारेषु तेषु च ॥ ८४ ॥

‘विभूषणं चाक्षरसंहतिश्च शोभाभिमानौ गुणकीर्तनं च’ इत्येवमादीनि
षट्त्रिंशत्कव्यलक्षणानि । ‘साम भेदः प्रदानं च’ इत्येवमादीनि संध्यन्तराण्ये-
कविंशतिरूपमादिष्विवालंकारेषु हर्षोत्साहादिष्वन्तर्भावाच्च पृथगुक्तानि ।

रम्यं जुगुप्सितमुदारमथापि नीच-
मुग्रं प्रसादि गहनं विकृतं च वस्तु ।

यद्वाप्यवस्तु कविभावकभाव्यमानं
तन्नास्ति यच्च रसभावमुपैति लोके ॥ ८५ ॥

विष्णोः सुतेनापि धनंजयेन विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः ।
आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठीवैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् ॥ ८६ ॥

इति श्रीविष्णुसूनुर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोके
रसविचारो नाम चतुर्थः प्रकाशः समाप्तः ।



अथ भारतीयनाट्यशास्त्रस्थं दशरूपम् ।

कथयिष्याम्यहं विप्रा दशरूपविकल्पनम् ।
नामतः कर्मतश्चैव तथा चैव प्रयोगतः ॥ १ ॥
नाटकं सप्रकरणमङ्को व्यायोग एव च ।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः ॥ २ ॥
ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्यलक्षणे ।
एतेषां लक्षणमहं व्याख्यास्याम्यनुपूर्वशः ॥ ३ ॥
सर्वेषामेव काव्यानां मातृका वृत्तयः स्मृताः ।
आभ्यो विनिःसृतं ह्येतद्दशरूपं प्रयोगतः ॥ ४ ॥
एतेषां चातिभिश्चैव स्वरा ग्रामत्वमागताः ।
यथा तथा वृत्तिभेदैः काव्यवन्धा भवन्ति हि ॥ ५ ॥
ग्रामौ पूर्णस्वरौ द्वौ तु यथा वै पद्मजमध्यमौ ।
सर्ववृत्तिविनिष्पन्नौ काव्यवन्धौ तथा त्विमौ ॥ ६ ॥
ज्ञेयं प्रकरणं चैव तथा नाटकमेव च ।
पूर्ववृत्तिविनिष्पन्नं नानावन्धसमाश्रयम् ॥ ७ ॥
भाणः समवकारश्च तथेहामृग एव च ।
उत्सृष्टकाङ्को व्यायोगो वीथी प्रहसनं डिमः ॥ ८ ॥
कैशिकीवृत्तिहीनानि रूपाण्येतानि कारयेत् ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि काव्यवन्धविकल्पनम् ॥ ९ ॥
प्रख्यातवस्तुविषये प्रख्यातोदात्तनायकं चैव ।
राजर्षिवंशचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम् ॥ १० ॥
नानाविभूतिसंयुतमृद्धिविलासादिभिर्गुणैश्चैव ।
अङ्कप्रवेशकाव्यं भवति हि तन्नाटकं नाम ॥ ११ ॥
नृपतीनां यच्चरितं नानारसभावसंभृतं बहुधा ।
सुखदुःखोत्पत्तिकृतं भवति हि तन्नाटकं नाम ॥ १२ ॥
अङ्कावस्थोपेतं कार्यं प्रसमीक्ष्य बिन्दुविस्तारात् ।
कर्तव्योऽङ्कस्तज्ज्ञैः स तु सम्यङ् नाटके विधिवत् ॥ १३ ॥
अङ्क इति रूढिशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद्भवेदङ्कः ॥ १४ ॥
[अङ्कसमाप्तिः काव्यच्छेदो न बीजसंहारः ।
वस्तुव्यापी बिन्दुः काव्यसमुत्थोऽत्र नित्यं स्यात् ॥ १५ ॥]
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः ॥ १६ ॥
ये नायका निगदितास्तेषां प्रत्यक्षचरितसंयोगः ।
नानावस्थान्तरितः कार्यस्त्वङ्को विकृष्टस्तु ॥ १७ ॥

नायकदेवीपरिजनपुरोहितामात्यसार्थवाहानाम् ।
 नैकरसान्तरविहितो ह्यङ्क इति स वेदितव्यस्तु ॥ १८ ॥
 [पञ्चावरा दशपरा ह्यङ्काः] स्युर्नाटके प्रकरणे च ।
 निष्क्रामः सर्वेषां यस्मिन्नङ्कः स विज्ञेयः ॥ १९ ॥]
 क्रोधप्रमादशोकाः शापोत्सर्गोऽध्वविद्रवोद्वाहौ ।
 अद्भुतसंश्रयदर्शनमङ्के प्रत्यक्षजानि स्युः ॥ २० ॥
 युद्धं राज्यभ्रंशो मरणं नगरोपरोधनं चैव ।
 प्रत्यक्षाणि तु नाङ्के प्रवेशकैः संविधेयानि ॥ २१ ॥
 अङ्के प्रवेशकैर्वा प्रकरणमाश्रित्य नाटके वापि ।
 न वधः कर्तव्यः स्याद्यस्तत्र स नायकः ख्यातः ॥ २२ ॥
 अवतरणमेव कार्यं संधिर्वा ग्रहणमेव वा नित्यम् ।
 बहुभिः कार्यविशेषैः प्रवेशकैः सूचयेद्वापि ॥ २३ ॥
 एकदिवसप्रवृत्तः कार्यस्त्वङ्कोऽथ बीजमाश्रित्य ।
 आवश्यककार्याणामविरोधेन प्रयोगेषु ॥ २४ ॥
 एकाङ्केन कदाचिद्बहूनि कार्याणि योजयेद्धीमान् ।
 आवश्यकविरोधेन तत्र काव्यानि कार्याणि ॥ २५ ॥
 रङ्गं तु ये प्रविष्टाः सर्वेषां भवति तत्र निष्क्रामः ।
 बीजार्थयुक्तिमुक्तं कृत्वा काव्यं यथार्थरसम् ॥ २६ ॥
 ज्ञात्वा दिवसावस्थां क्षणयाममुहूर्तलक्षणोपेताम् ।
 विभजेत्सर्वमशेषं पृथक्पृथक्काव्यमङ्केषु ॥ २७ ॥
 दिवसावसानकार्यं यद्यङ्के नोपपद्यते सर्वम् ।
 अङ्कच्छेदं कृत्वा प्रवेशकैस्तद्विधेयं हि ॥ २८ ॥
 संनिहितनायकोऽङ्कः कर्तव्यो नाटके प्रकरणे वा ।
 परिजनकथानुबन्धः प्रवेशको नाम विज्ञेयः ॥ २९ ॥
 प्रकरणविषये पञ्चाद्या.....दशपरास्तथा चैव ।
 अङ्काः कर्तव्याः स्युर्नानारसभावसंयुक्ताः ॥ ३० ॥
 अनयोरन्तरविहितः प्रवेशको यत्क्रियां समभिवीक्ष्य ।
 संक्षेपार्थः संधिस्त्वर्थानां संविधातव्यः ॥ ३१ ॥
 अनयोश्च बन्धयोगादन्यो भेदः प्रयोक्तृभिः कार्यः ।
 प्रख्यातस्त्वितरो वा नारीसंज्ञाश्रिते काव्ये ॥ ३२ ॥
 अङ्कच्छेदं कृत्वा मासकृतं वर्षसंचितं वापि ।
 तत्सर्वं कर्तव्यं वर्षादूर्ध्वं न तु कदाचित् ॥ ३३ ॥
 यः कश्चित्कार्यवशाद्गच्छति पुरुषः प्रकृष्टमध्वानम् ।
 तत्राप्यङ्कच्छेदः कर्तव्यः पूर्ववत्तज्ज्ञैः ॥ ३४ ॥
 अङ्कान्तरानुसारी संक्षेपार्थमधिकृत्य बिन्दूनाम् ।
 प्रकरणनाटकविषयप्रवेशकः संविधातव्यः ॥ ३५ ॥

नोत्तममध्यमपुरुषैराचरितो नाप्युदात्तवचनकृतः ।
 प्राकृतभाषाचारः प्रवेशको नाम विज्ञेयः ॥ ३६ ॥
 कालोत्थानगतिरसौ व्यत्यासारम्भकार्यविषयाणाम् ।
 अर्थाभिधानपूर्वः प्रवेशकः स्यादनेकार्थः ॥ ३७ ॥
 टठडढणा मूर्धन्या अन्तःस्था यरलवाश्चेति ।
 विसर्जनीयः..... ॥ ३८ ॥
 यस्मिन्स्थाने तु समो विज्ञेयः सवर्णसंज्ञोऽसौ ।
 शब्दप्रयोगविषये स्वरांस्तु भूयः प्रवक्ष्यामि ॥ ३९ ॥
 य इमे स्वराश्चतुर्दश निर्दिष्टास्तत्र वै दश समानाः ।
 पूर्वो ह्रस्वस्तेषां परश्च दीर्घो विधातव्यः ॥ ४० ॥
 ।
 ए पे कण्ठतालव्यौ ओ औ तु कण्ठौष्ठ्याविति च ॥ ४१ ॥
 इत्थं व्यञ्जनयोगैः स्वरैश्च साख्यातनामपदविहितैः ।
 काव्यनिबन्धाश्च स्युर्धातुनिपातोपसर्गैस्तु ॥ ४२ ॥
 उद्दिष्टं शब्दानां लक्षणमेतत्समासयोगेन ।
 प्रकरणवशाद्धि तदहं विस्तरतः संप्रवक्ष्यामि ॥ ४३ ॥
 तत्प्राहुः सप्तविधं पट्टकारकसंयुतं प्रथितसाध्यम् ।
 वचनं नामसमेतं पुरुषविभक्तं तथा ख्यातम् ॥ ४४ ॥
 प्रातिपदिकार्थयुक्ता धात्वर्थानुपसृजन्ति ये स्वार्थे ।
 उपसर्गा ह्युद्दिष्टास्तस्मात्संस्कारतस्तस्मिन् ॥ ४५ ॥
 प्रातिपदिकार्थयोगाद्धानुच्छन्दो निरुक्तयुक्त्या च ।
 यस्मिन्निपतति पादे तस्मात्प्रोक्ता निपातास्तु ॥ ४६ ॥
 लोके प्रकृतिप्रत्ययविभागसंयोगतत्त्ववचनैस्तु ।
 ते ते पूर्यन्तेऽर्थास्तेषु हि तत्तद्धितस्तस्मात् ॥ ४७ ॥
 एकस्य बहूनां वा धातोर्लिङ्गस्य वा पदानां वा ।
 यस्माद्विभजन्त्यर्थान्विभक्तयः कीर्तितास्तस्मात् ॥ ४८ ॥
 विशिष्टास्तु स्वरा यत्र व्यञ्जनं वापि योगतः ।
 संधीयते पदे यस्मात्तस्मात्संधिः प्रकीर्तितः ॥ ४९ ॥
 एभिः शब्दविधानैर्विस्तारव्यञ्जनार्थसंयुक्तैः ।
 पदबन्धाः कर्तव्या निबद्धबन्धास्तु चूर्णा वा ॥ ५० ॥
 विभक्त्यन्तं पदं ज्ञेयं निबद्धं चूर्णमेव च ।
 तत्र चूर्णपदस्येह संनिबोधत लक्षणम् ॥ ५१ ॥
 अनिवद्धपदच्छन्दस्तथा चानियताक्षरम् ।
 अर्थापेक्षाक्षरस्यूतं ज्ञेयं चूर्णपदं बुधैः ॥ ५२ ॥
 निबद्धाक्षरसंयुक्तं यतिच्छेदसमन्वितम् ।
 निबद्धं तु पदं ज्ञेयं प्रमाणनियतात्मकम् ॥ ५३ ॥

एवं नानार्थसंयुक्तैः पदैर्वर्णविभूषितैः ।
 चतुर्भिस्तु भवेद्युक्तं छन्दोवृत्ताभिधानवत् ॥ ५४ ॥
 षड्विंशतिः शतान्येभिः पादैश्छन्दांसि संज्ञया ।
 सममर्धसमं चैव तथा विषममेव च ॥ ५५ ॥
 छन्दो ज्ञेयं समासेन त्रिविधं वृत्तमिष्यते ।
 नानावृत्तविनिष्पन्ना शब्दस्यैषा तनुः स्मृता ॥ ५६ ॥
 छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्दवर्जितम् ।
 एवं तूभयसंयोगो नाद्यास्याद्योनकस्मृतः (?) ॥ ५७ ॥
 एकाक्षरं भवेदुक्तमत्युक्तं द्व्यक्षरं भवेत् ।
 मध्यं त्र्यक्षरमित्याहुः प्रतिष्ठा चतुरक्षरा ॥ ५८ ॥
 सुप्रतिष्ठा भवेत्पञ्च षड्भायत्री भवेदिह ।
 सप्ताक्षरा भवेदुष्णिगद्यौ वानुष्टुबिष्यते ॥ ५९ ॥
 नवाक्षरा तु बृहती पङ्क्तिश्चैव दशाक्षरा ।
 एकादशाक्षरा त्रिष्टुब्जगती द्वादशाक्षरा ॥ ६० ॥
 त्रयोदशातिजगती शकरीति चतुर्दश ।
 अतिशकरी पञ्चदश षोडशाष्टिः प्रकीर्त्यते ॥ ६१ ॥
 अत्यष्टिः स्यात्सप्तदश धृतिरष्टादशाक्षरा ।
 एकोनविंशतिरति(धृतिः) कृतिर्विंशतिरेव च ॥ ६२ ॥
 प्रकृतिरेकविंशत्या द्वाविंशत्याकृतिस्तथा ।
 त्रयोविंशतिर्विकृतिरधिकैका तु संकृतिः ॥ ६३ ॥
 एकाधिका चातिकृतिः षड्विंशल्यक्षरोत्कृतिः ।
 अत ऊर्ध्वाक्षरं छन्दो मालावृत्तमिति स्मृतम् ॥ ६४ ॥
 छन्दसां तु यथान्येषां भेदाः प्रस्तारयोगतः ।
 असंख्येयपरीमाणा वृत्तसंख्या समाश्रिता ॥ ६५ ॥
 गायत्री प्रकृतिश्चैषां प्रमाणं संप्रचक्षते ।
 प्रयोगजानि पूर्वाणि प्रायशो न भवन्ति हि ॥ ६६ ॥
 तिस्रः कोट्यो दश तथा सहस्राणां शतानि तु ।
 चत्वारिंशत्तथा द्वे च सहस्राणि दशैव तु ॥ ६७ ॥
 सप्तभिः सहितान्येव सप्त चैव शतानि च ।
 षड्विंशतिर(रिहा)न्यानि व्याख्यातानि समासतः ॥ ६८ ॥
 सर्वेषां छन्दसामेव त्रिकैर्वृत्तं प्रयोजयेत् ।
 ज्ञेया अष्टौ त्रिकास्तत्र संज्ञाभिः स्थानमक्षरम् ॥ ६९ ॥
 वर्णाक्षरो विधिवृत्तमिति छन्दोगतो विधिः ।
 नैवातिरिक्तं हीनं वा यत्र संपद्यते स्वरम् ॥ ७० ॥
 विधाने छन्दसामेषां संपदेताभिसंज्ञिता ।
 यत्रार्थस्य समाप्तिः स्यात्स विराम इति स्मृतः ॥ ७१ ॥

पादस्य पद्यतेर्धातोश्चतुर्भागः प्रकीर्तितः ।
 अश्यादिदैवतं प्रोक्तं स्थानं द्विविधमुच्यते ॥ ७२ ॥
 शरीराश्रयसंभूतं दिगाश्रयमथापि च ।
 ह्रस्वं दीर्घं सुतं चैव त्रिविधं चाक्षरं स्मृतम् ॥ ७३ ॥
 श्वेतादयस्तथा वर्णा विज्ञेयाश्छन्दसामिह ।
 तारश्चैव हि मन्द्रश्च मध्यश्च त्रिविधः स्वरः ॥ ७४ ॥
 भुवाभिधाने चैवास्य संप्रवक्ष्यामि लक्षणम् ।
 विधिर्गणकृतश्चैव तथा पद्यकृतोऽपि च ॥ ७५ ॥
 वृत्तमर्थसमं चैव विषमं सममेव च ।
 सर्वेषामेव वृत्तानां तज्ज्ञेयैर्गणाख्यैः ॥ ७६ ॥
 दिव्यो दिव्येतरश्चैव दिव्यमानुष एव च ।
 गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥ ७७ ॥
 त्रिष्टुप् च जगती चैव दिव्योऽयं प्रथमो गणः ।
 तथातिजगती चैव शक्करी ह्यतिशक्करी ॥ ७८ ॥
 अष्टिरत्यष्टिरितरो धृतिश्चातिधृतिर्गणः ।
 कृतिश्च प्रकृतिश्चैव ह्याकृतिर्विकृतिस्तथा ॥ ७९ ॥
 संकृत्यतिकृती चैव [ह्युत्कृति]र्दिव्यमानुषः ।
 एतेषां छन्दसां भूयः प्रस्तारविधिसंश्रयम् ॥ ८० ॥
 लक्षणं संप्रवक्ष्यामि नष्टमुद्दिष्टमेव च ।
 प्रस्तारोऽक्षरमुद्दिष्टो मात्रोक्तश्च तथैव हि ॥ ८१ ॥
 द्विकौ ग्लौ विनिपणोक्ता (?) मिश्रौ चेत्यपि मात्रिकौ ।
 गुर्वधस्ताल्लघुं न्यस्य ततो द्विद्विर्यथोचितम् ॥ ८२ ॥
 न्यस्येत्प्रस्तारभागोऽयमक्षरोक्तस्तु नित्यशः ।
 मात्रासंख्या विनिर्दिष्टा गणो मात्राविकल्पितः ॥ ८३ ॥
 मिश्रौ ग्लौ विनिर्दिष्टौ पृथग्लक्ष्यविभागतः ।
 मात्रागणो गुरुण्येव लघुनीयैर्धुकैक च (?) ॥ ८४ ॥
 आर्याणां स चतुर्मात्रा प्रस्तारः परिकीर्तितः ।
 गीतकप्रभृतीनां च पञ्चमात्रः स इष्यते ॥ ८५ ॥
 वेताली..... ।
 ॥ ८६ ॥
 बह्वाश्रयमपि कार्यं प्रवेशकैः संक्षिपेत्तु संधिषु च ।
 बहुपूर्णपद्यवृत्तं जनयति खेदं प्रयोगस्य ॥ ८७ ॥
 यत्रार्थस्य समाप्तिर्न भवत्यङ्के प्रयोगबाहुल्यात् ।
 वृत्तान्तः स्वल्पकयैः प्रवेशकैः सोऽभिधातव्यः ॥ ८८ ॥
 मध्यमपात्रैः कार्यो नित्यं विष्कम्भकस्तु विज्ञेयः ।
 संस्कृतवचनानुगतः संक्षितार्थः प्रवेशकवत् ॥ ८९ ॥

शुद्धः संकीर्णो वा द्विविधः खलु नाटके प्रयोगज्ञैः ।
 मध्यमपात्रैः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमकृतः ॥ ९० ॥
 अङ्कान्तरे मुखे वा प्रकरणमाश्रित्य नाटके वापि ।
 विष्कम्भकस्तु नियतः कर्तव्यो मध्यमैरधमैः ॥ ९१ ॥
 न महाजनपरिवारं कर्तव्यं नाटकं प्रकरणं वा ।
 येनात्र कार्यपुरुषाश्चत्वारः पञ्च वा ते स्युः ॥ ९२ ॥
 कार्यं गोपुच्छाग्रं कर्तव्यं काव्यबन्धमासाद्य ।
 ये चोदात्ता भावास्ते सर्वे पृष्ठतः कार्याः ॥ ९३ ॥
 सर्वेषां काव्यानां नानारसभावयुक्तियुक्तानाम् ।
 निर्वहणे कर्तव्यो नित्यं हि रसोऽद्भुतस्तज्ज्ञैः ॥ ९४ ॥
 नाटकलक्षणमेतन्मया समासेन कीर्तितं विधिवत् ।
 प्रकरणमतः परमहं लक्षणयुक्त्या प्रवक्ष्यामि ॥ ९५ ॥
 यत्र कविरात्मबुद्ध्या वस्तु शरीरं च नाटकं चैव ।
 औत्पत्तिकं प्रकुरुते प्रकरणमिति तद्बुधैर्ज्ञेयम् ॥ ९६ ॥
 यदनर्थमपाहार्यं काव्यं कुरुते प्रभूतगुणयुक्तम् ।
 उत्पन्नबीजवस्तु प्रकरणमिति तदपि विज्ञेयम् ॥ ९७ ॥
 यन्नाटके मयोक्तं वस्तु शरीरं च वृत्तिभेदाश्च ।
 तत्प्रकरणेऽपि कार्यं केवलमुत्पाद्यवस्तु स्यात् ॥ ९८ ॥
 विप्रवणिकसच्चिवानां पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम् ।
 चरितं यत्रैकविधं ज्ञेयं तत्प्रकरणं नाम ॥ ९९ ॥
 नोदात्तनायककृतं न दिव्यचरितं न राजसंभोगः ।
 बाह्यजनसंप्रयुक्तं ज्ञेयं तत्प्रकरणं नाम ॥ १०० ॥
 दासविटश्रेष्ठियुतं वेशरूपपचारकरणोपेतम् ।
 मन्दकुलस्त्रीचरितं काव्यं कार्यं प्रयोगे तु ॥ १०१ ॥
 सचिवश्रेष्ठिब्राह्मणपुरोहितामात्यसार्थवाहानाम् ।
 गृहवार्ता यत्र भवेन्न तत्र वेश्याङ्गना कार्या ॥ १०२ ॥
 यदि वेशयुवतियुक्तं न कुलस्त्रीसङ्गमर्हति ततः ।
 अत्र कुलजनप्रयुक्तं न वेशयुवतिर्भवेत्तत्र ॥ १०३ ॥
 यदि वा प्रकरणयुक्त्या वेशकुलस्त्रीकृतोपचारं(रः?) स्यात् ।
 अविकृतभाषाचारं तत्र तु पाठ्यं प्रयोक्तव्यम् ॥ १०४ ॥
 प्रकरणनाटकविषये पञ्चाद्या दश परास्तथा चैव ।
 अङ्काः कर्तव्याः स्युर्नानारसभावसंयुक्ताः ॥ १०५ ॥
 मध्यमपुरुषैर्नित्यं योज्यो विष्कम्भकोऽपि तत्त्वज्ञैः ।
 संस्कृतवचनानुगतः संक्षिप्तार्थः प्रवेशकवत् ॥ १०६ ॥
 शुद्धः संकीर्णो वा द्विविधो विष्कम्भकोऽपि विज्ञेयः ।
 मध्यमपात्रैः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमकृतः ॥ १०७ ॥

अङ्कान्तरालविहितः प्रवेशकार्यक्रियां समभिवीक्ष्य ।
 संक्षेपात्संधीनामर्थानां चैव कर्तव्यः ॥ १०८ ॥
 अनयोश्च बन्धयोगादन्यो भेदः प्रयोक्तृभिः कार्यः ।
 प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटीसंज्ञाश्रिते काव्ये ॥ १०९ ॥
 स्त्रीप्राया चतुरङ्गा ललिताभिनयात्मिका सुविहिताङ्गी ।
 बहुगीतनृत्यवाद्यरतिसंभोगात्मिका चैव ॥ ११० ॥
 राजोपचारयुक्ता प्रसादनक्रोधदम्भसंयुक्ता ।
 [नायकदूती चापि देवीसंबन्धी नाटिका ज्ञेया ॥ १११ ॥
 अन्तर्भावगता ह्येषा भावयोरुभयोरपि ।
 अथ दशैतानि रूपाणि इत्युदितानि तु ॥ ११२ ॥]
 प्रकरणनाटकनाटीलक्षणमुक्तं मया समासेन ॥ ११३ ॥
 वक्ष्याम्यतः परमहं लक्षणयुक्त्या समवकारम् ।
 देवासुरबीजकृतः प्रख्यातोदात्तनायकश्चैव ॥ ११४ ॥
 ज्यङ्गस्तथा त्रिकपटः त्रिविद्रवः स्यात्त्रिशृङ्गारः ।
 द्वादशनायकबहुलो ह्यष्टादशनाटिकाप्रमाणश्च ॥ ११५ ॥
 वक्ष्याम्यस्याङ्कविधिं यावत्यो नाटिका यत्र ।
 [अङ्कस्तु सप्रहसनः कालस्य यन्मुहूर्तमिति ।
 तन्नाटिकाप्रमाणं यथोक्तमङ्केषु संयोज्यम् ॥ ११६ ॥
 या नाटिकेति संज्ञा कालविभागे क्रियाभिसंपन्ना ।
 कार्या च सा प्रयत्नाद् यथाक्रमेणैव शास्त्रोक्ता ॥]
 अङ्कस्तु सप्रहसनः सविद्रवः सकपटः सवीथीकः ॥ ११७ ॥
 द्वादशनाडीविहितः प्रथमः कार्यः क्रियोपेतः ।
 कार्यस्तथा द्वितीयः समाश्रितो नाटिकाश्चतस्रश्च ॥ ११८ ॥
 वस्तुसमापनविहितो द्विनाटिकः स्यात्तृतीयस्तु ।
 नाडीसंज्ञा ज्ञेया मानं कालस्य यन्मुहूर्तार्धम् ॥ ११९ ॥
 तन्नाटिकाप्रमाणं यथोक्तमङ्केषु संयोज्यम् ।
 अङ्कोऽङ्कस्त्वन्यार्थः कर्तव्यः काव्यबन्धमासाद्य ॥ १२० ॥
 अर्थं हि समवकारे ह्यप्रतिसंधानमिच्छन्ति ॥ १२१ ॥
 युद्धजलसंभवो वा वाय्वग्निजलेन्द्रसंभवो वापि ।
 नगरोपरोधजो वा विज्ञेयो विद्रवस्त्रिविधः ॥ १२२ ॥
 यस्तु गतिक्रमविहितो दैववशाद्वा परप्रयुक्तो वा ।
 सुखदुःखोत्पत्तिकृतस्त्रिविधः कपटाश्रयो ज्ञेयः ॥ १२३ ॥
 त्रिविधश्चात्र विधिज्ञैः पृथक्पृथक्कार्ययोगविहितार्थः ।
 शृङ्गारः कर्तव्यो धर्मे चार्थे च कामे च ॥ १२४ ॥
 यत्र तु धर्मसमापकमात्महितं भवति साधनं बहुधा ।
 व्रतनियमतपोयुक्तो ज्ञेयोऽसौ धर्मशृङ्गारः ॥ १२५ ॥

अर्थस्येच्छायोगाद्बहुधा चैवार्थतोऽर्थशृङ्गारः ।
 स्त्रीसंप्रयोगविषयेष्वयथार्थमपीष्यते हि रतिः ॥ १२६ ॥
 कन्याविलोभनकृतं प्राप्तौ स्त्रीपुंसयोस्तु रम्यं वा ।
 निभृतं सावेगं वा यस्य भवेद्वा कामशृङ्गारः ॥ १२७ ॥
 उष्णिग्गायत्री वा वृत्तानि च यानि बन्धकुटिलानि ।
 तान्यत्र समवकारे कविभिः सम्यक्प्रयोज्यानि ॥ १२८ ॥
 एवं कार्यस्तज्ज्ञैः सुखदुःखसमाश्रयः समवकारः ।
 वक्ष्याम्यतः परमहं लक्षणमीहामृगस्यापि ॥ १२९ ॥
 दिव्यपुरुषाश्रय[कृतो दिव्यस्त्रीकारणोपगतयुद्धः ।
 सुविहितवस्तुनिबन्धो विप्रात्ययकारक]श्चैव ॥ १३० ॥
 उद्धतपुरुषप्रायः स्त्रीरोषग्रथितकाव्यबन्धश्च ।
 संक्षोभविद्रवकृतः संफेटकृतस्तथा चैव ॥ १३१ ॥
 स्त्रीभेदनापहरणा[प?]मर्दनप्राप्तवस्तुशृङ्गारः ।
 [यत्र तु वधेप्सितानां बन्धोऽप्युदश्रयो भवेत्तु पुरुषाणाम्] ।
 ईहामृगस्तु कार्यश्चतुरङ्गविभूषितश्चैव ॥ १३२ ॥
 यद्यायोगे कार्यं ये पुरुषा वृत्तयो रसाश्चैव ।
 ईहामृगेऽपि तत्स्यात्केवलमत्र स्त्रिया योगः ॥ १३३ ॥
 किञ्चिद्व्याजं कृत्वा तेषां युद्धं शमयितव्यम् ॥ १३४ ॥
 ईहामृगस्य लक्षणमुक्तं विप्राः समासयोगेन ।
 अथ वै डिमस्य लक्षणमतः परं प्रवक्ष्यामि ॥ १३५ ॥
 प्रख्यातवस्तुविषयः प्रख्यातोदात्तनायकश्चैव ।
 षट्त्रिंशलक्षणयुक् चतुरङ्गो वै डिमः कार्यः ॥ १३६ ॥
 शृङ्गारहास्यवर्जं शेषैरन्यै रसैः समायुक्तः ।
 दीप्तरसकाव्ययोनिर्नार्नाभावोपसंपन्नः ॥ १३७ ॥
 निर्घातोल्कापातैरुपरागेणेन्दुसूर्ययोर्युक्तः ।
 युद्धनियुद्धप्रहरणसंफेटकृतश्च कर्तव्यः ॥ १३८ ॥
 मायेन्द्रजालबहुलो बहुपुरुषोत्थानयुक्तश्च ।
 देवभुजगेन्द्रराक्षसयक्षपिशाचावकीर्णश्च ॥ १३९ ॥
 षोडशनायकबहुलः सात्वत्यारभटिवृत्तिसंपन्नः ।
 कार्या डिमः प्रयत्नान्नानाश्रयभावसंपन्नः ॥ १४० ॥
 [डिमलक्षणमित्युक्तं मया समासेन लक्षणानुगतम् ।
 व्यायोगस्य तु लक्षणमतः परं संप्रवक्ष्यामि ॥ १४१ ॥]
 व्यायोगस्तु विधिज्ञैः कार्यः प्रख्यातनायकशरीरः ।
 अल्पस्त्रीजनयुक्तस्त्वेकाहकृतस्तथा चैव ॥ १४२ ॥
 बहवस्तत्र च पुरुषाः कविभिः कार्या यथा समवकारे ।
 न च तत्प्रमाणयुक्ताः कार्या एकाङ्क एवायम् ॥ १४३ ॥

न च दिव्यनायककृतः कार्यो राजर्षिनायकनिबद्धः ।
 युद्धनियुद्धाक(घ)र्षणसंह(घ)र्षकृतश्च कर्तव्यः ॥ १४४ ॥
 एवंविधस्तु कार्यो व्यायोगो दीप्तकाव्यरसयोनिः ।
 वक्ष्याम्यतः परमहं लक्षणमुत्सृष्टिकाङ्कस्य ॥ १४५ ॥
 प्रख्यातवस्तुविषयस्त्वप्रख्यातः कदाचिदेव स्यात् ।
 दिव्यपुरुषैर्वियुक्तः शेषैरन्यै(र्युक्तो)र्म(भ)वेत्पुंभिः ॥ १४६ ॥
 करुणरसप्रायकृतो निवृत्तयुद्धोद्धतप्रहारश्च ।
 स्त्रीपरिदेवितवहुलो निर्वेदितभाषितश्चैव ॥ १४७ ॥
 नानाव्याकुलचेष्टः सात्वत्यारभटिकैशिकीहीनः ।
 कार्यः काव्यविधिज्ञैः सततं ह्युत्सृष्टिकाङ्कस्तु ॥ १४८ ॥
 यदिव्यनायककृतं काव्यं संग्रामबन्धवधयुक्तम् ।
 तद्भारते तु वर्षे कर्तव्यं काव्यबन्धेषु ॥ १४९ ॥
 कस्माद्भारतमिष्टं वर्षेष्वन्येषु देवविहितेषु ।
 हृद्या सर्वा भूमिः शुभगन्धा काञ्चनी यस्मात् ॥ १५० ॥
 उपवनगमनक्रीडाविहारनारीरतिप्रमोदाः स्युः ।
 तेषु हि वर्षेषु सदा न तत्र दुःखं न वा शोकः ॥ १५१ ॥
 ये तेषामपि(धि)वासाः पुराणवादिषु पर्वताः प्रोक्ताः ।
 संभोगस्तेषु भवेत्कर्मारम्भो भवेदस्मिन् ॥ १५२ ॥
 [अङ्कस्य लक्षणगतं व्याख्यातं शेषमात्रगतम् ।
 प्रहसनमतः परमहं सलक्षणं संप्रवक्ष्यामि ॥ १५३ ॥]
 प्रहसनमपि विज्ञेयं द्विविधं शुद्धं तथा च संकीर्णम् ।
 वक्ष्यामि तयोर्युक्त्या पृथक्पृथग्लक्षणविशेषम् ॥ १५४ ॥
 भगवत्तापसविप्रैरन्यैरपि हास्यवादसंबद्धम् ।
 कापुरुषसंप्रयुक्तं परिहासाभाषणप्रायम् ॥ १५५ ॥
 अविहृतभाषाचारं विशेषभावोपपन्नरचित(चरित)पदम् ।
 नियतगतिवस्तुविषयं शुद्धं ज्ञेयं प्रहसनं तु ॥ १५६ ॥
 वेश्याचेटनपुंसकविटधूर्ता बन्धकी च यत्र स्युः ।
 अनिभृतवेषपरिच्छदचेष्टितकरणैस्तु संकीर्णम् ॥ १५७ ॥
 लोकोपचारयुक्ता या वार्ता यश्च दम्भसंयोगः ।
 तत्प्रहसनेषु योज्यं धूर्तोक्तविवादसंयुक्तम् ॥ १५८ ॥
 वीथ्यङ्गैः संयुक्तं कर्तव्यं प्रहसनं यथायोगम् ।
 भाणस्यापि तु लक्षणमतः परं संप्रवक्ष्यामि ॥ १५९ ॥
 आत्मानुभूतशंसी परसंश्रयवर्णनाविशेषेषु (वस्तु) ।
 द्वि(वि)विधाश्रयो हि भाणो विज्ञेयस्त्वेकहार्थश्च ॥ १६० ॥
 परवचनमात्मसंस्थं प्रतिवचनैरुत्तरोत्तरग्रथिते(तैः) ।
 आकाशपुरुषकथितैरङ्गविकारैरभिनयै[श्चैव] ॥ १६१ ॥

धूर्तविटसंप्रयोज्यो नानावस्थान्तरात्मकश्चैव ।
 एकाङ्गो बहुचेष्टः सततं कार्यो बुधैर्माणः ॥ १६२ ॥
 [भाणस्यापि हि निखिलं लक्षणमुक्तं तथागमानुगतम् ।
 वीथ्याः संप्रति निखिलं कथयामि यथाक्रमं विप्राः ॥ १६३ ॥]
 अधमोत्तममध्याभिर्युक्ता स्यात् प्रकृतिभिस्तिष्ठभिः ।
 वीथी स्यादेकाङ्गा तथैकहार्या द्विहार्या वा ॥ १६४ ॥
 सर्वैरसलक्षणाढ्या युक्ता ह्यङ्गैस्त्रयोदशभिः ।
 अङ्गानां वक्ष्येऽहं लक्षणमखिलं यथादेशम् ॥ १६५ ॥
 उद्धात्यकावलितता (लगिता) वस्यन्दिताल्पसत्प्रलापाश्च ।
 वाक्केल्यथ प्रपञ्चो मृदवाधिवले छलत्रिगते ॥ १६६ ॥
 व्याहारो गण्डश्च त्रयोदशाङ्गान्युदाहृतान्यस्याः ।
 अथ वीथी संप्रोक्ता लक्षणमेषां प्रवक्ष्यामि ॥ १६७ ॥
 पदानि त्वगतार्थानि यत्तरां ('ये नराः') पुनरादरात् ।
 योजयन्ति पदैरन्यैस्तदुद्धात्यकमुच्यते ॥ १६८ ॥
 यत्रान्यस्मिन्समावेश्य कार्यमन्यत्प्रसाध्यते ।
 तच्चावलगितं नाम विज्ञेयं नाट्ययोक्तृभिः ॥ १६९ ॥
 आक्षिप्तार्थं (तेऽर्थं) तु कस्मिंश्चिच्छुभाशुभसमुत्थितम् (ते) ।
 कौशलारू (दु) च्यतेऽन्यार्थं (न्योऽर्थः) तदवस्पन्दितं भवेत् ॥
 असंबद्धं तु यद्वाक्यमसम्बद्धमथोत्तरम् ।
 असत्प्रला (ल ?) पितं चैव वीथ्यां सम्यक् प्रयोजयेत् ॥ १७१ ॥
 मूर्खजनसंनिकर्षे विद्वानन्यत्र भाषते सम्यक् ।
 वचनं न गृह्यतेऽस्य संज्ञेयोऽसत्प्रलापस्तु ॥ १७२ ॥
 यदसद्भूतं वचनं संस्तवयुक्तं द्वयोः परस्परतः ।
 एकस्य चार्थहेतोः सहास्यजननः प्रपञ्चस्तु ॥ १७३ ॥
 हास्येनोपगतार्था प्रहेलिका नालिकेति विज्ञेया ।
 एकद्विप्रतिवचना वाक्केली स्यात्प्रयोगेऽस्मिन् ॥ १७४ ॥
 मूर्खजनसंनिकर्षे हितमपि यत्र प्रभाषते विद्वान् ।
 न च गृह्यतेऽस्य वचनं विज्ञेयोऽसत्प्रलापोऽसौ ॥ १७५ ॥
 यदतो संभृत (यदसद्भूतं) वचनं
 संश्र (स्त) वयुक्तं द्वयोः परस्परं यत् ।
 एकस्य चार्ष (र्थ) हेतोः
 स हास्यजननः प्रपञ्चः स्यात् ॥ १७६ ॥
 यत्कारणाहुणानां दोषीकरणं भवेद्विवादकृतम् ।
 दोषगुणीकरणं वा तन्मृदवं नामापि विज्ञेयम् ॥ १७७ ॥
 परवचनमात्मनश्चोत्तरोत्तरसमुद्भवं द्वयोर्यत्र ।
 अन्योन्यार्थविशेषकमधिबलमिति तद्बुधैर्ज्ञेयम् ॥ १७८ ॥

अन्यार्थमेव वाक्यं छलमभिसंधानहास्यरोषकरम् ।
 श्रुतिसारूप्यार्थात्मनि बहवोऽर्था युक्तिभिर्नियुज्यन्ते ॥ १७९ ॥
 एतद्धास्य(यद्धास्य)महास्यं वा त्रिगतं नामापि विज्ञेयम् ।
 प्रत्यक्षवृत्तिरुक्तो व्याहारो हास्यलेशार्थः ॥ १८० ॥
 संरम्भसंभ्रमयुतं विवादयुक्तं तथापवादकृतम् ।
 बहुवचनाक्षेपकृतं गण्डं प्रवदन्ति तत्त्वज्ञाः ॥ १८१ ॥
 (अन्यान्यपि लास्यविधावङ्गानि तु नाटकोपयोगानि ।
 अस्माद्विनिःसृतानि तु भाण इवैकप्रयोज्यानि ॥ १८२ ॥
 गेयपदं स्थितपाठ्यमासीनं पुष्पगण्डिका ।
 प्रच्छेदकत्रिमूढाख्यं सैन्धवं च द्विमूढकम् ॥ १८३ ॥
 उत्तमोत्तमकं चैव उक्तप्रत्युक्तमेव च ।
 लास्ये दशविधं ह्येतदङ्गनिर्देशलक्षणम् ॥ १८४ ॥
 आसनेषूपविष्टैर्यत्तन्त्रीभाण्डोपबृंहितम् ।
 गायनैर्गीयते शुष्कं तद्वेयपदमुच्यते ॥ १८५ ॥
 प्राकृतं या वियुक्ता तु पठेदासनसंस्थिता ।
 मदनानलतप्ताङ्गी स्थितिपाठ्यं तदुच्यते ॥ १८६ ॥
 आसीनमास्यते यत्र चिन्ताशोकसमन्वितम् ।
 अप्रसारितगात्रं च जिह्मदृष्टिनिरीक्षितम् ॥ १८७ ॥
 यत्र स्त्री नरवेषेण ललितं संस्कृतं पठेत् ।
 सखीनां तु विनोदाय सा ज्ञेया पुष्पगन्धिका ॥ १८८ ॥
 प्रच्छेदकः स विज्ञेयो यत्र चन्द्रातपाहता ।
 स्त्रियः प्रियेषु सज्जन्ते ह्यपि विप्रियकारिषु ॥ १८९ ॥
 अनिष्ठुरस्वल्पपदं समवृत्तैरलंकृतम् ।
 नाट्यं पुरुषभावाढ्यं त्रिमूढकमुदाहृतम् ॥ १९० ॥
 पात्रविस्मृतसंकेतं सुव्यक्तकरुणान्वितम् ।
 प्राकृतैर्वचनैर्युक्तं विदुः सैन्धवं बुधाः ॥ १९१ ॥
 शुभार्थगीताभिनयं चतुरस्रपदक्रमम् ।
 स्पष्टभावरसोपेतं व्याजचेष्टं द्विमूढकम् ॥ १९२ ॥
 उत्तमोत्तमकं विद्यादनेकरससंश्रयम् ।
 विचित्रैः श्लोकवन्धैश्च हेलाभावविभूषितम् ॥ १९३ ॥
 [यदि प्रतिकृतिं दृष्ट्वा विनोदयति मानसम् ।
 मदनानलतप्तं तु विचित्रपदमुच्यते ॥ १९४ ॥]
 कोपप्रसादजनितं साधिक्षेपपदाश्रयम् ।
 उक्तप्रत्युक्तमेव स्यात् किंतु गीतार्थयोजितम् ॥ १९५ ॥
 [दृष्ट्वा स्वप्ने प्रियं यत्र मदनानलतापिता ।
 करोति विविधान् भावान् तद्वै भावितमुच्यते ॥ १९६ ॥]

एतद्वै लास्यविधौ लक्षणमुक्तं मया तु विस्तरतः ।
 तद(दि)हैव तु यन्नोक्तं प्रसङ्गविनिवृत्तिहेतोस्तु ॥ १९७ ॥)
 इति दशरूपविधानं सर्वं प्रोक्तं मयातिलक्षणतः ।
 इतिवृत्तद्विविधानं संधिविधौ लक्षणं वक्ष्ये ॥ १९८ ॥

इति भारतीये नाट्यशास्त्रे दशरूपलक्षणं नामाध्यायोऽष्टादशः ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

इतिवृत्तं तु नाट्यस्य शरीरं परिकीर्तितम् ।
 पञ्चभिः संधिभिस्तस्य विभागः संप्रकल्पितः ॥ १ ॥
 इतिवृत्तं द्विधा चैव बुधस्तु परिकल्पयेत् ।
 आधिकारिकमेकं तु प्रासङ्गिकमथापरम् ॥ २ ॥
 यत् कार्यं हि फलप्राप्त्या समर्थं परिकल्प्यते ।
 तदाधिकारिकं ज्ञेयमन्यत् प्रासङ्गिकं विदुः ॥ ३ ॥
 कवेः प्रयत्नान्नेतृणां युक्तानां विध्यपाश्रयात् ।
 कल्प्यते हि फलप्राप्तिः समुत्कर्षात् फलस्य च ॥ ४ ॥
 कारणात् फलयोगस्य वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ।
 तस्योपकरणार्थं तु कीर्त्यते ह्यानुषङ्गिकम् ॥ ५ ॥
 [लौकिकसुखदुःखाख्या यथावस्था रसोद्भवा ।
 दशधा मन्मथावस्था व्यवस्था त्रिविधा मता ॥ ६ ॥]
 संसाध्ये फलयोगे तु व्यापारः साधकस्य यः ।
 तस्यानुपूर्व्या विज्ञेयाः पञ्चावस्थाः प्रयोक्तृभिः ॥ ७ ॥
 [नाट्यप्रकरणा भावा अवस्थास्ता मता इह ।
 धर्मार्थकामसंबन्धः फलयोगस्तु कथ्यते ॥ ८ ॥]
 प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च तथा प्राप्तिश्च संभवः ।
 नियता च फलप्राप्तिः फलयोगश्च पञ्चमः ॥ ९ ॥
 औत्सुक्यमात्रं बन्धस्य यद् बीजस्य निबध्यते ।
 महतः फलयोगस्य सोऽत्र प्रारम्भ इष्यते ॥ १० ॥
 अपश्यतः फलप्राप्तिं यो व्यापारः फलं प्रति ।
 परं चौत्सुक्यगमनं प्रयत्नः परिकीर्तितः ॥ ११ ॥
 ईषत्प्राप्तिर्यदा काचित्फलस्य परिकल्प्यते ।
 भावमात्रेण सं (तं) प्राहुर्विधिज्ञाः प्राप्तिसंभवम् ॥ १२ ॥
 नियतां तु फलप्राप्तिं यदा भावेन पश्यति ।
 नियतां तां फलप्राप्तिं सगुणाः परिचक्षते ॥ १३ ॥
 अभिप्रेतं समग्रं च प्रतिरूपं क्रियाफलम् ।
 इतिवृत्ते भवेद्यस्मिन् फलयोगः प्रकीर्तितः ॥ १४ ॥

सर्वस्ये(स्यै)व हि कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।
 एता अनुक्रमेणैव पञ्चावस्था भवन्ति हि ॥ १५ ॥
 तासां स्वभावभिन्नानां परस्परसमागमात् ।
 विन्यास एकभावेन फलहेतुः प्रकीर्तितः ॥ १६ ॥
 इतिवृत्तं समाख्यातं प्रत्यगेवाधिकारिकम् ।
 तदारम्भादि कर्तव्यं फलान्तं च यथा भवेत् ॥ १७ ॥
 पूर्णसंधि तु तत्कार्यं हीनसंध्यपि वा पुनः ।
 नियमात्पञ्चसंधि स्याद्धीनसंध्यथ कारणात् ॥ १८ ॥
 चतुर्थस्यैकलोपे तु द्विलोपे त्रिचतुर्थयोः ।
 द्वितीयत्रिचतुर्थानां त्रिलोपे लोप इष्यते ॥ १९ ॥
 प्रासङ्गिके परार्थत्वाच्च ह्येष नियमो भवेत् ।
 यद्वृत्तं संभवेत्तत्र तद्योज्यमविरोधतः ॥ २० ॥
 इतिवृत्ते यथावस्थाः पञ्चारम्भादिकाः स्मृताः ।
 अर्थप्रकृतयः पञ्च तथा बीजादिका अपि ॥ २१ ॥
 बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।
 अर्थप्रकृतयः पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि ॥ २२ ॥
 खल्पमात्रं समुत्सृष्टं बहुधा यद्विसर्पति ।
 फलावसानं तच्चैव बीजं तदिह कीर्तितम् ॥ २३ ॥
 प्रयोजनानां विच्छेदे यद्विच्छेदकारणम् ।
 यावत्समाप्तिर्वन्धस्य स बिन्दुः परिकीर्तितः ॥ २४ ॥
 यद्वृत्तं हि परार्थं स्यात्प्रधानस्योपकारकम् ।
 प्रधानवच्च कल्प्येत सा पताकेति कीर्तिता ॥ २५ ॥
 फलं प्रकल्प्यते यस्याः परार्थं केवलं बुधैः ।
 अनुबन्धविहीनं स्यात्प्रकरीमिति निर्दिशेत् ॥ २६ ॥
 यदाधिकारिकं वृत्तं सम्यक्प्राज्ञैः प्रयुज्यते ।
 तदर्थो यः समारम्भस्तत्कार्यं परिकीर्तितम् ॥ २७ ॥
 पतेषां यस्य येनार्थो यतश्च गुण इष्यते ।
 तत्प्रधानं तु कर्तव्यं गुणभूतान्यतः परम् ॥ २८ ॥
 एकोऽनेकोऽपि वा संधिः पताकायां तु यो भवेत् ।
 प्रधानार्थानुयायित्वादनुसंधिः प्रकीर्त्यते ॥ २९ ॥
 आगर्भादाविमर्शाद्वा पताका विनिवर्तते ।
 कस्माद्यस्मान्निबन्धोऽस्याः परार्थः परिकीर्त्यते ॥ ३० ॥
 यत्रान्यस्मिन् युज्यमाने तल्लिङ्गेभ्यः (ङ्गोऽन्यः) प्रयुज्यते ।
 आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ॥ ३१ ॥
 सहसैवार्थसंपत्तिर्गुणवत्युपकारतः ।
 पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम् ॥ ३२ ॥

वचः सातिशयं श्लिष्टं काव्यबन्धसमाश्रयम् ।
 पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥ ३३ ॥
 अर्थोपक्षेपणं यत्र लीनं सविनयं भवेत् ।
 श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमिष्यते ॥ ३४ ॥
 द्वयो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः ।
 उपन्यासः संयुतश्च तच्चतुर्थमुदाहृतम् ॥ ३५ ॥
 चतुःपताकापरमं नाटके काव्यमिष्यते ।
 पञ्चभिः संधिभिर्युक्तं तांश्च वक्ष्याम्यतः पुनः ॥ ३६ ॥
 मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्शश्च तथैव हि ।
 तथा निर्वहणं चेति नाटके पञ्च संघयः ॥ ३७ ॥
 पञ्चभिः संधिभिर्युक्तं प्रधानमनुकीर्त्यते ।
 शेषाः प्रधानसंधीनामनुग्राह्यास्तु संघयः ॥ ३८ ॥
 यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा ।
 काव्ये शरीरानुगता तन्मुखं परिकीर्तितम् ॥ ३९ ॥
 बीजस्योद्घाटनं यत्तु दृष्टनष्टमिव क्वचित् ।
 मुखन्यस्तस्य सर्वत्र तद्वै प्रतिमुखं स्मृतम् ॥ ४० ॥
 उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव वा ।
 पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भ इति संज्ञितः ॥ ४१ ॥
 गर्भाभिर्भिन्नबीजार्थो विलोभनकृतोऽपि वा ।
 क्रोधव्यसनजो वापि स विमर्श इति स्मृतः ॥ ४२ ॥
 समानं च समर्थानां मुख्यार्थानां सबीजिनाम् ।
 नानाभावोऽन्तराणां यद्भवेन्निर्वहणं तु तम् ॥ ४३ ॥
 एते तु संघयो ज्ञेया नाटकस्य प्रयोक्तृभिः ।
 तथा प्रकरणस्यापि शेषाणां विनिवोधत ॥ ४४ ॥
 [व्यायोगेहामृगौ चापि त्रिसंधी परिकीर्तितौ ।]
 न तयोरवमर्शस्तु कर्तव्यः कविभिः सदा ॥ ४५ ॥
 द्विमः समवकारश्च चतुःसंधी प्रकीर्तितौ ।
 गर्भाविमर्शौ न स्यातां न च वृत्तिस्तु कैशिकी ॥ ४६ ॥
 द्विसंधि तु प्रहसनं वीथ्यङ्गो भाण एव च ।
 मुखनिर्वहणे स्यातां तेषां वृत्तिश्च भारती ॥ ४७ ॥
 एवं हि संघयः कार्या दशरूपे प्रयोक्तृभिः ।
 पुनरेषां तु संधीनामङ्गकल्पं निवोधत ॥ ४८ ॥
 संधीनां यानि वृत्तानि प्रदेशेष्वनुपूर्वशः ।
 स्वसंपद्गुणयुक्तानि तान्यङ्गान्युपधारयेत् ॥ ४९ ॥
 इष्टस्यार्थस्य रचना वृत्तान्तस्यानुपक्षयः ।
 रागप्राप्तिः प्रयोगस्य गुह्यानां चैव गूहनम् ॥ ५० ॥

आश्चर्यवदभिख्यातं प्रकाश्यानां प्रकाशनम् ।
 अङ्गहीनो नरो यद्वद् युद्धारम्भेऽक्षमो भवेत् ।
 अङ्गहीनं तथा काव्यं न प्रयोगक्षमं भवेत् ॥ ५१ ॥
 काव्यं यदपि हीनार्थं सम्यगङ्गैः समन्वितम् ।
 दीप्तत्वात्तु प्रयोगस्य शोभामेति न संशयः ॥ ५२ ॥
 उदात्तमपि यत्काव्यं स्यादङ्गैः परिवर्जितम् ।
 हीनत्वात्तु प्रयोगस्य न सतां रञ्जयेन्मनः ॥ ५३ ॥
 [तस्मात्संधिप्रयोगेषु यथादेशं यथारसम् ।
 कविनाङ्गानि कार्याणि प्रदेशांस्तु निबोधत ॥ ५४ ॥]
 उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम् ।
 युक्तिः प्राप्तिः [समाधानं विधानं परिभावना ॥ ५५ ॥
 उद्भेदः करणं भेदो द्वादशाङ्गानि वै मुखे ।
 तथा प्रतिमुखे चैव वक्ष्याम्यङ्गानि नामतः ॥ ५६ ॥]
 विलासः परिसर्पश्च विधूतं तापनं तथा ।
 नर्म नर्मद्युतिश्चैव तथा प्रशमनं पुनः ॥ ५७ ॥
 निरोधश्चैव विज्ञेयः पर्युपासनमेव च ।
 पुष्पं वज्रमुपन्यासो वर्णसंहार एव च ॥ ५८ ॥
 एतानि वै प्रतिमुखे गर्भेऽङ्गानि निबोधत ।
 अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः ॥ ५९ ॥
 संग्रहश्चानुमानं च प्रार्थना क्षितिरेव च ।
 तोटकाधिवले चैव चोद्भेदो विद्रवस्तथा ॥ ६० ॥
 एतान्यङ्गानि वै गर्भे विमर्शे च निबोधत ॥ ६१ ॥
 अपवादश्च संफेटो विद्रवः शक्तिरेव च ।
 प्रसङ्गो व्यवसायश्च युतिः खेदो निषेधनम् ॥ ६२ ॥
 विरोध[न ?]मथादानं छादनं च प्ररोचना ।
 एतान्यवमृशेऽङ्गानि भूयो निर्वहणे शृणु ॥ ६३ ॥
 संधिनिरोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणम् ।
 धृतिः प्रसाद आनन्दः समयश्चोपगूहनम् ॥ ६४ ॥
 भाषणं पूर्ववाक्यं च कार्यसंहार एव च ।
 प्रशस्तिरिति संहारे ज्ञेयान्यङ्गानि नामतः ॥ ६५ ॥
 चतुःषष्टिर्वृद्धैर्ज्ञेयान्येतान्यङ्गानि संधिषु ।
 [संपादनार्थं बीजस्य सम्यक्संधिकराणि तु ॥ ६६ ॥
 कार्याण्येतानि कविभिर्विस्पष्टार्थानि नाटके] ।
 एतेषां तु पुनर्वक्ष्ये लक्षणानि यथाक्रमम् ॥ ६७ ॥
 काव्यार्थस्य समुत्पत्तिरुपक्षेप इति स्मृतः ।
 समुत्पन्नार्थवाहुल्यं ज्ञेयः परिकरस्तु सः ॥ ६८ ॥

तन्निवृत्तिः परिन्यासो विज्ञेयः कविभिः सदा ।
 गुणनिर्वर्णनं चैव विलोभनमिति स्मृतम् ॥ ६९ ॥
 संप्रधारणमर्थानां युक्तिरित्यभिधीयते ।
 सुखार्थस्याभिगमनं प्राप्तिरित्यभिधीयते ॥ ७० ॥
 वीजार्थस्योपगमनं तत्समाधानमुच्यते ।
 सुखदुःखकृतो योऽर्थस्तद्विधानमिति स्मृतम् ॥ ७१ ॥
 कुतूहलोत्तरावेशो विज्ञेया परिभावना ।
 वीजार्थस्य प्ररोहो यः स उद्भेद इति स्मृतः ॥ ७२ ॥
 प्रकृतार्थसमारम्भः करणं नाम तद्भवेत् ।
 संघातभेदनार्थो यः स भेद इति कीर्तितः ॥ ७३ ॥
 समीहा रतिभोगार्था विलास इति कीर्तितः ।
 दृष्टनष्टानुसरणं परिसर्प इति स्मृतः ॥ ७४ ॥
 कृतस्यानुनयस्यादौ विधूतमपरिग्रहः ।
 अपायदर्शनं यत्तत्तापनं नाम तद्भवेत् ॥ ७५ ॥
 क्रीडार्थं विहितं यत्र हास्यं नर्मेति तत् स्मृतम् ।
 दोषप्रच्छादनार्थं तु हास्यं नर्मद्युति स्मृतम् ॥ ७६ ॥
 उत्तरोत्तरवाक्यं तु भवेत्प्रशमनं बुधाः ।
 या तु व्यसनसंप्राप्तिर्निरोधः स तु कीर्तितः ॥ ७७ ॥
 कुद्धस्यानुनयो यस्तु भवेत्तत्पर्युपासनम् ।
 विशेषवचनं यत्तु तत्पुष्पमिति संज्ञितम् ॥ ७८ ॥
 प्रत्यक्षरूपं यद्वाक्यं तद्वज्रमिति संज्ञितम् ।
 उपपत्तिकृतो योऽर्थ उपन्यासस्तु स स्मृतः ॥ ७९ ॥
 चातुर्वर्ण्याभिगमनं वर्णसंहार इष्यते ।
 एतानि तु प्रतिमुखे गर्भे चापि निबोधत ॥ ८० ॥
 कपटाद्याश्रयं वाक्यमभूताहरणं विदुः ।
 तत्त्वार्थवचनं चैव मार्ग इत्यभिधीयते ॥ ८१ ॥
 चित्रार्थसमवायो यस्तद्रूपमिति कीर्तितम् ।
 यत्सातिशयवद्वाक्यं तदुदाहरणं स्मृतम् ॥ ८२ ॥
 भावतत्त्वोपलब्धिस्तु क्रम इत्यभिधीयते ।
 सामदानार्थसंयुक्तः संग्रहः परिकीर्तितः ॥ ८३ ॥
 रूपानुरूपगमनमनुमानमिति स्मृतम् ।
 रतिहर्षोत्सवार्थानां प्रार्थना प्रार्थना भवेत् ॥ ८४ ॥
 गर्भस्योद्भेदनं यत्स्यात् क्षित्तिरित्यभिधीयते ।
 संरम्भवचनप्रायं तोटकं त्विति संज्ञितम् ॥ ८५ ॥
 कपटेनाभिसंधानं ब्रुवतेऽधिबलं बुधाः ।
 भयं नृपारिदस्यूतमुद्वेगः परिकीर्तितः ॥ ८६ ॥

नृपाग्निभयसंयुक्तः संभवो विद्रवः स्मृतः ।
 [एतान्यङ्गानि गर्भे स्युरविमर्शे निबोधत ॥ ८७ ॥
 दोषप्रख्यापनं यत् स्यात् सोऽपवादः प्रकीर्तितः ।
 रोषप्रथितवाक्यं तु संफेदः परिकीर्तितः ॥ ८८ ॥
 गुरुव्यतिक्रमो यस्तु विज्ञेयोऽभिद्रवस्तु सः ।
 विरोधप्रशमो यस्तु सा शक्तिः परिकीर्तिता ॥ ८९ ॥
 प्रसङ्गश्चैव विज्ञेयो गुरुणां परिकीर्तनम् ।
 व्यवसायश्च विज्ञेयः प्रतिज्ञाहेतुसंभवः ॥ ९० ॥
 वाक्यमाघर्षणकृतं च (बु ?) तिस्तज्जैरुदाहृतम् (ता ?) ।
 मनश्चेष्टाविनिष्पन्नः श्रमः खेद उदाहृतः ॥ ९१ ॥
 ईप्सितार्थप्रतीघातो निषेधः स तु कीर्तितः ।
 विरोधनं तु संरम्भादुत्तरोत्तरभाषणम् ॥ ९२ ॥
 बीजकार्योपगमनमादानमिति संज्ञितम् ।
 अवमानात् कृतं वाक्यं कार्यार्थं छादनं भवेत् ॥ ९३ ॥
 प्ररोचना च विज्ञेया संभारार्थप्रकाशिनी ।
 एतान्यवमृशाङ्गानि संहारे तु निबोधत ॥ ९४ ॥
 मुखबीजोपगमनं संधिरित्यभिधीयते ।
 कार्यस्यान्वेषणं युक्त्या निरोध इति कीर्तितः ॥ ९५ ॥
 उपक्षेपस्तु कार्याणां ग्रथनं परिकीर्तितम् ।
 अनुभूतार्थकथनं निर्णयः समुदाहृतः ॥ ९६ ॥
 परिवादकृतं यत् स्यात् तदाहुः परिभाषणम् ।
 लब्धस्यार्थस्य शमनं धृतिमाचक्षते पुनः ॥ ९७ ॥
 शुश्रूषाद्युपसंपन्नः प्रसादः प्रीतिरुच्यते ।
 समागमस्तु योऽर्थानामानन्दः परिकीर्तितः ॥ ९८ ॥
 दुःखस्यापगमश्चैव समयोऽथ निगद्यते ।
 अद्भुतस्य च संप्राप्तिर्भवेत्तदुपगूहनम् ॥ ९९ ॥
 सामदानादिसंपन्नं भाषणं समुदाहृतम् ।
 पूर्ववाक्यं तु विज्ञेयं यथार्थोक्तार्थदर्शनम् ॥ १०० ॥
 वरप्रसादसंप्राप्तिः काव्यसंहार इष्यते ।
 नृपदेवप्रशस्तिश्च प्रशस्तिरभिधीयते ॥ १०१ ॥
 यथासंधि तु कर्तव्यान्येतान्यङ्गानि नाटके ।
 कविभिः काव्यकुशलै रसभावानवेक्ष्य तु ॥ १०२ ॥
 सर्वाङ्गानि कदाचित्तु द्वित्रियोगेन वा पुनः ।
 ज्ञात्वा कार्यमवस्थां च योज्यान्यङ्गानि संधिषु ॥ १०३ ॥
 (एतेषामेव चाङ्गानां संबद्धान्यर्थयुक्तितः ।
 संध्यन्तराणि वक्ष्यामि त्वर्थोपक्षेपकाणि च ॥ १०४ ॥

साम भेदस्तथा दण्डः प्रदानं वध एव च ।
 प्रत्युत्पन्नमतित्वं च गोत्रस्वलितमेव च ॥ १०५ ॥
 साहसं च भयं चैव ह्रीर्माया क्रोध एव च ।
 ओजःसंवरणं भ्रान्तिस्तथा हेत्ववधारणम् ॥ १०६ ॥
 दूतो लेखस्तथा स्वप्नश्चित्तं मद इति स्मृतम् ।
 संध्यन्तराणि संधीनां विशेषास्त्वेकविंशतिः ॥ १०७ ॥)
 विष्कम्भशूलिका चैव तथा चैव प्रवेशकः ।
 अङ्गावतारोऽङ्गमुखमर्थोपक्षेपपञ्चकम् ॥ १०८ ॥
 मध्यमपुरुषनियोज्यो नाटकमुखसंधिमात्रसंचारः ।
 विष्कम्भकस्तु संस्कृतपुरोहितामात्यकञ्चुकिभिः ॥ १०९ ॥
 शुद्धः संकीर्णो वा द्विविधो विष्कम्भकस्तु विज्ञेयः ।
 मध्यमपात्रैः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यकृतः ॥ ११० ॥
 अन्तर्यवनिकासंस्थैः शून्यादिभिरनेकधा ।
 अर्थोपक्षेपणं यत्तु क्रियते सा हि चूलिका ॥ १११ ॥
 अङ्गान्तरानुसारी संक्षेपार्थमधिकृत्य बिन्दूनाम् ।
 प्रकरणनाटकविषये प्रवेशको नाम विज्ञेयः ॥ ११२ ॥
 नोत्तममध्यमपुरुषैराचरितो नाप्युदात्तवचनकृतः ।
 प्राकृतभाषाचारः प्रवेशको नाम विज्ञेयः ॥ ११३ ॥
 [प्राकृतभाषाग्रथितः संस्कृते प्राकृतस्य लोकस्य ।
 नीचस्याचरणकृतः प्रवेशको नाम विज्ञेयः ॥ ११४ ॥]
 अङ्गान्तरेऽथवाङ्गे निपतति यस्मिन् प्रयोगमासाद्य ।
 बीजार्थयुक्तियुक्तो ज्ञेयो ह्यङ्गावतारोऽसौ ॥ ११५ ॥
 विम्लिष्टमुखमङ्गस्य स्त्रिया वा पुरुषेण वा ।
 यत्र संक्षिप्यते पूर्वं तदङ्गमुखमिष्यते ॥ ११६ ॥
 वृत्तिवृत्त्यङ्गसंपन्नपदार्थप्रकृतिक्षमम् ।
 पञ्चावस्थाभिनिष्पन्नैः पञ्चभिः संधिभिर्युतम् ॥ ११७ ॥
 संध्यन्तरैकविंशत्या चतुःषष्ट्यङ्गसंयुतम् ।
 षट्त्रिंशल्लक्षणोपेतं गुणालंकारभूषितम् ॥ ११८ ॥
 महारसं महाभोगमुदात्तवचनान्वितम् ।
 महापुरुषसंचारं साध्वाचारजनप्रियम् ॥ ११९ ॥
 सुम्लिष्टसंधिसंयोगं सुप्रयोगं सुखाश्रयम् ।
 मृदुशब्दाभिधानं च कविः कुर्यात्तु नाटकम् ॥ १२० ॥
 अवस्था या हि लोकस्य सुखदुःखसमुद्भवा ।
 नानापुरुषसंचारा नाटके संभवेदिह ॥ १२१ ॥
 न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
 न तत्कर्म न योगोऽसौ नाटके यन्न दृश्यते ॥ १२२ ॥

योऽयं स्वभावो लोकस्य नानावस्थान्तरात्मकः ।
 सोऽङ्गाद्यभिनयैर्युक्तो नाट्यमित्यभिधीयते ॥ १२३ ॥
 देवतानामृषीणां च राज्ञां लोकस्य चैव हि ।
 पूर्ववृत्तानुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत् ॥ १२४ ॥
 यस्मात् स्वभावः संहृत्य साङ्गोपाङ्गगतिक्रमैः ।
 अभिनीयते गम्यते च तस्माद्वै नाटकं स्मृतम् ॥ १२५ ॥
 सर्वभावैः सर्वैरसैः सर्वकर्मप्रवृत्तिभिः ।
 नानावस्थान्तरोपेतं नाटकं संविधीयते ॥ १२६ ॥
 यान्येकशिल्पजातानि ह्येककर्मकृतानि च ।
 तानि शेषाणि रूपाणि प्रयोज्यानि प्रयोक्तृभिः ॥ १२७ ॥
 लोकस्वभावं संप्रेक्ष्य नराणां च बलाबलम् ।
 संभोगं चैव युक्तिं च ततः कुर्यात्तु नाटकम् ॥ १२८ ॥
 भविष्यति युगे प्रायो भविष्यन्त्यबुधा नराः ।
 ये चापि हि भविष्यन्ति तेऽप्यल्पश्रुतबुद्ध्यः ॥ १२९ ॥
 बुद्ध्यः कर्म शिल्पानि वैचक्षण्यं कलासु च ।
 सर्वाण्येतानि नश्यन्ति यदा लोकः प्रणश्यति ॥ १३० ॥
 तदेवं लोकभावानां प्रसमीक्ष्य बलाबलम् ।
 मृदुशब्दं सुखार्थं च कविः कुर्यात्तु नाटकम् ॥ १३१ ॥
 चेक्रीडिताद्यैः शब्दैस्तु काव्यबन्धा भवन्ति ये ।
 वेद्या इव न शोभन्ते कमण्डलुधरैर्द्विजैः ॥ १३२ ॥
 इतिवृत्तं ससंध्यङ्गं मया प्रोक्तं द्विजोत्तमाः ।
 अतः परं प्रवक्ष्यामि वृत्तीनामिह लक्षणम् ॥ १३३ ॥
 इति भारतीये नाट्यशास्त्रे संध्यङ्गविकल्पो नामैकोनविंशोऽध्यायः ।

अथ विंशोऽध्यायः ।

समुत्थानं तु वृत्तीनां व्याख्यास्याम्यनुपूर्वशः ।
 यथावस्तूद्भवं चैव काव्यानां च विकल्पनम् ॥ १ ॥
 एकार्णवं जगत् कृत्वा भगवानच्युतो यदा ।
 शेते स नागपर्यङ्के लोकान् संक्षिप्य मायया ॥ २ ॥
 अथ वीर्यमदोन्मत्तावसुरौ मधुकैटभौ ।
 तर्जयामासतुर्देवं तरसा युद्धकाङ्क्षिणौ ॥ ३ ॥
 निजबाहुविसृष्टौ तौ भूतभावनमक्षयम् ।
 जानुभिर्मुष्टिभिश्चैव योधयामासतुः प्रभुम् ॥ ४ ॥
 अभिद्रवन्तावन्योन्यं वाक्यैश्च परुषैस्तदा ।
 नानाविक्षेपचनैः कम्पयन्ताविवोदधिम् ॥ ५ ॥

तयोर्नानाप्रकाराणि श्रुत्वा वाक्यानि गर्जतोः ।
 किञ्चिदाकम्पितमना द्रुहिणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥
 किमियं भारती वृत्तीर्वाग्भिरेव प्रवर्तते ।
 उत्तरोत्तरसंवृद्धा नन्विमौ निधनं नय ॥ ७ ॥
 पितामहवचः श्रुत्वा प्रोवाच मधुसूदनः ।
 कार्यहेतोर्मया ब्रह्मन् भारतीयं विनिर्मिता ॥ ८ ॥
 भाष्यतो वाक्यभूयिष्ठा भारतीयं भविष्यति ।
 अहमेतौ निहन्म्यद्य इत्युक्त्वा वचनं हरिः ॥ ९ ॥
 शुद्धैरविकृतैरङ्गैः साङ्गहारैस्तदा भृशम् ।
 योधयामास तौ दैत्यौ युद्धमार्गविशारदौ ॥ १० ॥
 भूमिसंस्थानसंयोगैः पदन्यासैस्तदा हरेः ।
 अतिभारोऽभवद्भूमेर्भारती तत्र निर्मिता ॥ ११ ॥
 बलितैः शार्ङ्गधनुषस्तीव्रैर्दीप्तिकरैरथ ।
 सत्त्वाधिकैरसंभ्रान्तैः सात्त्वती तत्र निर्मिता ॥ १२ ॥
 विचित्रैरङ्गहारैस्तु देवो लीलासमुद्भवैः ।
 बबन्ध यच्छिखापाशं कैशिकी तत्र निर्मिता ॥ १३ ॥
 संरम्भावेगबहुलैर्नानाचारीसमुत्थितैः ।
 नियुद्धकरणैश्चित्रैर्निर्मितारभटी ततः ॥ १४ ॥
 यां यां देवः समाचष्टे क्रियां वृत्तिसमुत्थिताम् ।
 तां तदर्थानुगैर्वाक्यैर्द्रुहिणः प्रत्यपूजयत् ॥ १५ ॥
 यदा हतौ तावसुरौ हरिणा मधुकैटभौ ।
 उक्तवांस्तु तदा ब्रह्मा नारायणमरिंदमम् ॥ १६ ॥
 अहो विचित्रैर्विशदैः स्फुटैः सुललितैरपि ।
 अङ्गहारैः कृतं देव त्वया दानवनाशनम् ॥ १७ ॥
 तस्मादयं सर्वलोके नियुद्धसमयक्रमः ।
 सर्वशास्त्रविमोक्षेषु न्यायसंज्ञो भविष्यति ॥ १८ ॥
 न्यायाश्रितैरङ्गहारैर्न्यायाच्चैव समुत्थितैः ।
 यस्माद् युद्धं कृतं हेतुत्तस्मान्नायः प्रकीर्तितः ॥ १९ ॥
 [ततो देवेषु निक्षिप्ता द्रुहिणेन महात्मना ।
 पुनर्नाट्यप्रयोगे च नानाभावरसान्विता ॥ २० ॥
 वृत्तिसंज्ञा कृता ह्येषा नानाभावरसाश्रया ।
 चरितैस्तस्य देवस्य द्रव्यं यद् यादृशं कृतम् ॥ २१ ॥
 ऋषिभिस्तादृशी वृत्तिः कृता वाक्याङ्गसंभवा ।
 नाट्यवेदसमुत्पन्ना वागङ्गाभिनयात्मिका ॥ २२ ॥
 पुनरिष्टसुजातेन नानाचारीसमाकुले ।
 मया काव्यक्रियाहेतोः प्रक्षिप्ता द्रुहिणाज्ञया ॥ २३ ॥

ऋग्वेदाद्भारती वृत्तिर्यजुर्वेदात्तु सात्वती ।
कैशिकी सामवेदाच्च शेषा चाथर्वणात्तथा ॥ २४ ॥

या वाक्प्रधाना पुरुषप्रयोज्या
स्त्रीवर्जिता संस्कृतवाक्ययुक्ता ।
स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता

सा भारती नाम भवेत्तु वृत्तिः ॥ २५ ॥
भेदास्तस्यास्तु विज्ञेयाश्चत्वारोऽङ्गत्वमागताः ।
प्ररोचनामुखं चैव वीथी प्रहसनं तथा ॥ २६ ॥
जय(यि?)न्युदयिनी चैव मङ्गल्या विजयावहा ।
सर्वपापप्रशमनी पूर्वरेङ्गे प्ररोचना ॥ २७ ॥
नदी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥ २८ ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैर्वाथ्यङ्गैरन्यथापि वा ।
आमुखाङ्गान्यतो वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः ॥ २९ ॥
उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ।
प्रवृत्तिकावलगिते आमुखाङ्गानि पञ्च वै ॥ ३० ॥
उद्घात्यकावलगितयोर्लक्षणं कथितं मया ।
शेषाणां लक्षणमहं व्याख्यास्याम्यनुपूर्वशः ॥ ३१ ॥
सूत्रधारस्य वाक्यं वा यत्र वाक्यार्थमेव वा ।
गृहीत्वा प्रविशेत् पात्रं प्रयोगातिशयो हि सः ॥ ३२ ॥
प्रवृत्तं कार्यमाश्रित्य सूत्रभृद् यत्र वर्णयेत् ।
तदाश्रयाच्च पात्रस्य प्रवेशस्तत् प्रवृत्तकम् ॥ ३३ ॥
एषामन्यतमं श्लिष्टं योजयित्वा तु युक्तिभिः ।
पात्रग्रन्थैरसंबाधं प्रकुर्यादामुखं बुधः ॥ ३४ ॥
एवमेतद् बुधैर्ज्ञेयमामुखं विबुधाश्रयम् ।
लक्षणं पूर्वमुक्तं तु वीथ्याः प्रहसनस्य च ॥ ३५ ॥
इत्यष्टार्थविकल्पा वृत्तिरियं भारती मया प्रोक्ता ।
सात्वत्यास्तु विधानं लक्षणयुक्त्या प्रवक्ष्यामि ॥ ३६ ॥
या सात्वतेनेह गुणेन युक्ता
न्यायेन वृत्तेन समन्विता च ।
हर्षोत्कटा संहतशोकभावा
सा सात्वती नाम भवेत्तु वृत्तिः ॥ ३७ ॥
वागङ्गाभिनयवती सत्त्वोन्धानवचनप्रकरणेषु ।
सत्त्वाधिकारयुक्ता विज्ञेया सात्वती वृत्तिः ॥ ३८ ॥
वीराद्भुतरौद्ररसा विज्ञेया ह्यल्पकरुणशृङ्गारा ।
उद्धतपुरुषप्राया परस्पराधर्षणकृता च ॥ ३९ ॥

उत्थापकश्च परिवर्तकश्च संलापकः ससंघातः ।
 चत्वारोऽस्या भेदा विज्ञेया नाट्यतत्त्वज्ञैः ॥ ४० ॥
 अहमप्युत्थास्यामि त्वं तावद्दर्शयात्मनः शक्तिम् ।
 इति संघर्षसमाश्रयमुत्थितमुत्थापको ज्ञेयः ॥ ४१ ॥
 उत्थानसमारब्धानर्थानुत्सृज्य योऽर्थयोगवशात् ।
 अन्यानर्थान् भजते स चापि परिवर्तको ज्ञेयः ॥ ४२ ॥
 साधर्षजो निराधर्षजो वापि विविधवचनसंयुक्तः ।
 साधिक्षेपालापो ज्ञेयः संलापकः सोऽपि ॥ ४३ ॥
 मित्रार्थवाक्ययुक्त्या दैववशादात्मदोषयोगाद्वा ।
 संघातभेदजननस्तज्ज्ञैः संघातको ज्ञेयः ॥ ४४ ॥
 इत्यष्टार्धविकल्पा वृत्तिरियं सात्त्वती मयाभिहिता ।
 कैशिक्यास्त्वह लक्षणमतः परं संप्रवक्ष्यामि ॥ ४५ ॥

या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा

स्त्रीसंयुता या बहुनृत्तगीता ।

कामोपभोगप्रभवोपचारा

तां कैशिकीं वृत्तिमुदाहरन्ति ॥ ४६ ॥

नर्म च नर्मस्फुजो नर्मस्फोटोऽथ नर्मगर्भश्च ।
 कैशिक्याश्चत्वारो भेदा ह्येते समाख्याताः ॥ ४७ ॥
 आस्थापितशृङ्गारं विशुद्धकरणं निवृत्तवीररसम् ।
 हास्यप्रवचनबहुलं नर्मं त्रिविधं विजानीयात् ॥ ४८ ॥
 ईर्ष्याक्रोधप्रयासोपालम्भवचनानुविद्धं च ।
 आत्मोपक्षेपकृतं सविप्रलम्भं स्मृतं नर्मं ॥ ४९ ॥
 नवसंगमसंभोगो रतिसमुद्यवाक्यवेषसंयुक्तः ।
 ज्ञेयो नर्मस्फुजो ह्यवसानभयानकश्चैव ॥ ५० ॥
 विविधानां भावानां लवैर्लवैर्भूषितो बहुविशेषैः ।
 असमग्राक्षिप्तरसो नर्मस्फोटस्तु विज्ञेयः ॥ ५१ ॥
 विज्ञानरूपसंभावनादिभिर्नायको गुणैर्यत्र ।
 प्रच्छन्नं व्यवहरते कार्यवशाच्चर्मगर्भोऽसौ ॥ ५२ ॥
 [पूर्वस्थितानिपद्येत(?) यत्र चान्यतमनायकस्तिष्ठेत् ।
 तमपीह नर्मगर्भं वदन्ति नाट्यप्रयोगेऽस्मिन् ॥ ५३ ॥]
 इत्यष्टार्धविकल्पा वृत्तिरियं कैशिकी मया प्रोक्ता ।
 अत ऊर्ध्वमुद्धतरसामारभटीं संप्रवक्ष्यामि ॥ ५४ ॥
 आरभटप्रायगुणा तथैव बहुकपटवञ्चनोपेता ।
 दम्भानृतवचनवती त्वारभटी नाम विज्ञेया ॥ ५५ ॥
 प्रस्तावपातप्लुतलङ्घितानि चान्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम् ।
 चित्राणि युक्तानि च यत्र नित्यं तां तादृशीमारभटीं वदन्ति ५६

संक्षिप्तकावपातौ वस्तूत्थापनमथापि संफेदः ।
 एते ह्यस्या भेदा लक्षणमेषां प्रवक्ष्यामि ।
 अन्वर्थशिल्पयुक्तो बहुपुस्तोत्थानचित्रनेपथ्यः ।
 संक्षिप्तवस्तुविषयो ज्ञेयः संक्षिप्तको नाम ॥ ५७ ॥
 भयहर्षसमुत्थानं विद्रुतसंभ्रान्तविविधवचनं च ।
 क्षिप्रप्रवेशनिर्गमवपातमिमं विजानन्ति ॥ ५८ ॥
 सर्वरससमासकृतं सविद्रवाविद्रवाश्रयं वापि ।
 नाट्यं विभाव्यते यत्तद्वस्तूत्थापनं ज्ञेयम् ॥ ५९ ॥
 संरम्भसमायुक्तो बहुयुद्धनियुद्धकपटनिर्भेदः ।
 शस्त्रप्रहारबहुलः संफेदो नाम विज्ञेयः ॥ ६० ॥
 एवमेता बुधैर्ज्ञेया वृत्तयो नाट्यसंश्रयाः ।
 रसप्रयोगमासां च कीर्त्यमानं निबोधत ॥ ६१ ॥
 शृङ्गारे चैव हास्ये च वृत्तिः स्यात् कैशिकीति सा ।
 सात्त्वती नाम सा ज्ञेया वीररौद्राद्भुताश्रया ॥ ६२ ॥
 भयानके च बीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत् ।
 भारती चापि विज्ञेया करुणाद्भुतसंश्रया ॥ ६३ ॥
 [न ह्येकरसजं काव्यं किञ्चिदस्ति प्रयोगतः ।
 भावोऽपि रसो वापि प्रवृत्तिरेव वा(?) ॥ ६४ ॥
 सर्वेषां समवेतानां रूपं यस्य भवेद्बहु ।
 स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः संचारिणो मताः ॥ ६५ ॥]
 वृत्त्यन्त एषोऽभिनयो मयोक्तो
 वागङ्गसत्त्वप्रभवो यथावत् ।
 आहार्यमेवाभिनयं प्रयोगे
 वक्ष्यामि नेपथ्यकृतं पुनश्च ॥ ६६ ॥
 इति भारतीये नाट्यशास्त्रे वृत्तिविकल्पो नाम विशोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

समासतस्तु त्रिविधा प्रकृतिः परिकीर्तिता ।
 स्त्रीणां च पुरुषाणां च उत्तमाधममध्यमाः ॥ १ ॥
 नाट्ये चत्वार एवैते नायकाः परिकीर्तिताः ।
 तत्रोत्तमायां प्रकृतौ नानालक्षणलक्षिताः ॥ २ ॥
 धीरोद्धतो धीरललितो धीरोदात्तस्तथैव च ।
 धीरप्रशान्तश्चैवेति नायका नाटकाश्रयाः ॥ ३ ॥
 देवा धीरोद्धता ज्ञेयाः स्युर्धीरललिता नृपाः ।
 सेनापतिरमात्याश्च धीरोदात्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ४ ॥

ब्राह्मणा वणिजश्चैव प्रोक्ता धीरप्रशान्तकाः ।
 एतेषां च पुनर्ज्ञेयाश्चत्वारोऽथ विदूषकाः ॥ ५ ॥
 एते तु नायका ज्ञेयाः काव्यबन्धेषु सर्वदा ।
 नायिकाश्चैव वक्ष्यामि चतस्रः पुनरेव तु ॥ ६ ॥
 दिव्या च नृपपत्नी च कुलस्त्री गणिका तथा ।
 एतास्तु नायिका ज्ञेया नानाप्रकृतिलक्षणाः ॥ ७ ॥
 धीराश्च ललिताश्चैव उदात्ता निभृतास्तथा ।
 दिव्या राजाङ्गना हेता गुणैर्युक्ता भवन्ति हि ॥ ८ ॥
 उदात्ता निभृता चैव भवेत्तु कुलजाङ्गना ।
 गणिका शिल्पकारी च उदात्तललिते स्मृते ॥ ९ ॥
 प्रेक्ष्या चैव हि विज्ञेया संकीर्णप्रकृतावपि ।
 नपुंसकश्च विज्ञेयः संकीर्णोऽधम एव च ॥ १० ॥
 संकरे स्थविरश्चैव ये चान्येऽप्यधमा नराः ।
 संकीर्णास्तेऽपि विज्ञेया नाटकेषु द्विजोत्तमाः ॥ ११ ॥
 एते ज्ञेयाः प्रकृत्या तु पुरुषस्त्रीनपुंसकाः ।
 एतेषां चैव वक्ष्यामि विभागं शीललक्षणैः ।
 सर्वासां प्रकृतीनां तु प्रकारो द्विविधः स्मृतः ॥ १२ ॥
 तत्र राजोपचारो यो भवेदभ्यन्तरस्तु सः ।
 बाह्योपचारो यस्तस्माद्विज्ञेयो बाह्य एव सः ॥ १३ ॥
 तस्माद्राजोपचारेषु पुनरभ्यन्तराश्रयम् ।
 स्त्रीविभागं प्रवक्ष्यामि उपचारं तथैव च ॥ १४ ॥
 महादेवी तथा देवी स्वामिनी स्थायिनी तथा ।
 भोगिनी शिल्पकारी च नाटकीयाथ नर्तकी ॥ १५ ॥
 अनुचारी तथायुक्ता तथा च परिचारिका ।
 तथा संचारिणी चैव तथा प्रेषणकारिका ॥ १६ ॥
 महत्तरा प्रतीहारी कुमारी स्थविरा तथा ।
 आयुक्तिकास्तु भूपानामेष आभ्यन्तरो गणः ॥ १७ ॥
 तथा मूर्धावसिक्ता च कुलशीलविभूषिता ।
 समतुल्यचरित्रा च वयस्या क्रोधवर्जिता ॥ १८ ॥
 अनीर्ण्या नृपशीलज्ञा समदुःखसुखास्पदा ।
 शान्तिस्वस्त्ययनैर्नित्यं भर्तृमङ्गलकाङ्क्षिणी ॥ १९ ॥
 पतिव्रता क्षमायुक्ता अन्तःपुरहिते रता ।
 एभिर्गुणैस्तु संयुक्ता महादेवी प्रकीर्तिता ॥ २० ॥
 एभिरेव गुणैर्युक्ता बहुमानविवर्जिता ।
 गर्विता राजपुत्री च रतिसंभोगतत्परा ॥ २१ ॥

बाला नित्योज्ज्वलगुणा प्रतिपक्षेष्वसूयिका ।
 यौवनादिगुणोन्मत्ता सा देवीत्यभिधीयते ॥ २२ ॥
 सेनापतेरमात्यानां दण्डिता तत्पराश्च या ।
 तनया नामतश्चैव स्वामिनीत्यभिसंज्ञिता ॥ २३ ॥
 शीलरूपगुणैर्या तु संयुक्ता नृपवल्लभा ।
 स्वामिसत्कारसंपन्ना स्वामिनीति हि संज्ञिता ॥ २४ ॥
 रूपयौवनसंपन्ना कर्कशा ललिता तथा ।
 रतिसंभोगकुशला प्रतिपक्षेऽभ्यसूयिका ॥ २५ ॥
 दक्षा स्फुटा हुदात्ता च गन्धमाल्योज्ज्वला तथा ।
 नृपतिच्छन्दवृत्ता च सर्वत्रेष्ट्याविवर्जिता ।
 उपस्थिता चाप्रमत्ता निद्रालस्या ह्यनिष्ठुरा ॥ २६ ॥
 मान्यामान्यविशेषज्ञा स्थायिनी संप्रकीर्तिता ।
 सुशीला लघुसंमाना मृदुर्नात्युद्धता तथा ।
 मध्यस्था निभृता क्षान्ता योगिनीति हि सा स्मृता ॥ २७ ॥
 नानाकलाविशेषज्ञा नानाशिल्पविचक्षणा ।
 गन्धशिल्पविभागज्ञा नानालेख्यविशारदा ॥ २८ ॥
 शयनासनयानज्ञा चतुरा चतुरा तथा ।
 दक्षा चित्रास्फुटा श्लक्ष्णा निभृता शिल्पकारिका ॥ २९ ॥
 ग्रहमोक्षलयज्ञा च रसभावविभाविका ।
 परभावेङ्गितज्ञा च आचार्यानुगता तथा ॥ ३० ॥
 चतुराभिनयज्ञा च ऊहापोहविचक्षणा ।
 निपुणा भाण्डवाद्येषु नाटकीया प्रकीर्तिता ।
 यौवनादिगुणोन्मत्ता नृत्तगीतविचक्षणा ॥ ३१ ॥
 सदा प्रगल्भा च तथा त्यक्तालस्या जितश्रमा ।
 समागतासु नारीषु रूपयौवनकान्तिषु ॥ ३२ ॥
 न दृश्यन्ते गुणैस्तुल्या नर्तकी सा प्रकीर्तिता ।
 सर्वावस्थाप्रचारेषु अनुगच्छति या नृपम् ॥ ३३ ॥
 विज्ञेयं नाम तस्यास्तु नृपतेरनुचारिका ।
 भाण्डागारे नियुक्ता च आयुधागार एव च ॥ ३४ ॥
 औषधीफलमूलेषु बीजेषु व्यापृता तथा ।
 गन्धाभरणवस्त्रेषु आख्यानकथनेषु च ॥ ३५ ॥
 बह्वर्थेषु नियुक्ता या आयुक्ता च इति स्मृता ।
 छत्रशय्यासने युक्ता तथा व्यञ्जनकर्मणि ॥ ३६ ॥
 संवाहने च गन्धे च तथा चैव प्रसाधने ।
 तथाभरणसंयोगे माल्यासंग्रहणेषु च ।
 विज्ञेया नामतः सा तु नृपतेः परिचारिका ॥ ३७ ॥

नानाकक्ष्यादिचारिण्यस्तथोपवनसंचराः ।
 देवतायतनक्रीडाप्रासादपरिसंचराः ॥ ३८ ॥
 यामेषु च नियुक्ता यास्तथा च विविधाश्रये ।
 संचारिक्यस्तु विज्ञेया नाट्यज्ञैरुपचारतः ॥ ३९ ॥
 प्रेषणैः कामसंयुक्तैर्गुह्याहुह्यसमुत्थितैः ।
 या नियुक्ता बुधैः सा तु ज्ञेयाऽन्वेषणकारिका ॥ ४० ॥
 सर्वान्तःपुररक्षायामाशीः स्वस्त्ययनादिभिः ।
 या नित्यमभिनन्दन्ति ज्ञेयास्ताः सुमहत्तराः ॥ ४१ ॥
 संधिविग्रहसंबन्धनानाकार्यसमुत्थितम् ।
 निवेदयन्ति कार्यं याः प्रतीहार्यस्तु ताः स्मृताः ॥ ४२ ॥
 अप्राप्तरतिसंभोगा असंभ्रान्ता अनुद्भटाः ।
 निभृता याः सलज्जाश्च ताः कुमार्य इति स्मृताः ॥ ४३ ॥
 पूर्वराजनयाभिज्ञाः सर्वराजसु पूजिताः ।
 पूर्वराजोपचारज्ञास्ता वृद्धा इति संज्ञिताः ॥ ४४ ॥
 समासाल्लक्षणं तासां प्रवक्ष्यामि द्विजोत्तमाः ।
 या नियोज्या नियोगेषु प्रयोगेषु तथैव हि ॥ ४५ ॥
 अनुद्भटा ह्यसंभ्रान्ताः सुवेषाचारनिष्ठुराः ।
 क्षान्ता दीनाः सुशीलाश्च जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ॥ ४६ ॥
 प्रकामानिभृताश्चैव स्त्रीदोषैश्च विवर्जिताः ।
 ता नियोगे नियोक्तव्या वनिता मदवर्जिताः ॥ ४७ ॥
 यत्स्यान्नपुंसकं नाम तृतीया प्रकृतिस्तु या ।
 साऽप्यन्तःपुरसंचारे योज्या पार्थिववेदमनि ॥ ४८ ॥
 स्नातकाः कञ्चुकीयाश्च तथा वर्षध(व)राश्च ये ।
 औपस्थायिकनिर्मुण्डाः कक्षास्थानेषु योजयेत् ॥ ४९ ॥
 अपुमांसस्तु पुरुषा ये तु स्त्रीभोगवर्जिताः ।
 एते त्वन्तःपुरचराः कार्या नित्यं हि नाटके ॥ ५० ॥
 वस्त्वन्ते(?) स्नातकं कुर्यादार्यमाचारसंयुतम् ।
 प्रेषणे वार्थसंयुक्ते कञ्चुकीयान्नियोजयेत् ॥ ५१ ॥
 तथा वर्ष(व)धरांश्चैव कामचारेषु योजयेत् ।
 औपस्थायिकनिर्मुण्डाः स्त्रीणां प्रेषणकारणे ॥ ५२ ॥
 मानकार्येषु नारीणां नियुज्जीतानुचारिकाः ।
 सद्योवृत्तान्तयोगज्ञं नाट्यागारे नियोजयेत् ॥ ५३ ॥
 ये त्वल्पसत्त्वाः कुशलाः क्लीबाश्च स्त्रीस्वभाविनः ।
 जात्या न दुष्टाः कार्ये च ते वै वर्षध(व)राः स्मृताः ॥ ५४ ॥

नपुंसका ये पुरुषाः स्त्रीस्वभावेन वर्जिताः ।
 निर्मुण्डा नामतो ज्ञेयाः कामविज्ञानवर्जिताः ॥ ५५ ॥
 ये विद्यासत्यसंपन्नाः कामदोषविवर्जिताः ।
 ज्ञानविज्ञानकुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥ ५६ ॥
 एतदष्टादशविधं प्रोक्तमन्तःपुरं मया ।
 अतः परं प्रवक्ष्यामि बाह्यं पुरुषसंचरम् ॥ ५७ ॥
 राजा सेनापतिश्चैव कुमारो मन्त्रिणस्तथा ।
 सचिवाः प्राङ्निवाकाश्च प्रयोगाधिकृतास्तथा ॥ ५८ ॥
 एते चान्ये च बहवः समा(भा)स्तारा नृपस्य तु ।
 विभागमेषां वक्ष्यामि लक्षणं च पृथक् पृथक् ॥ ५९ ॥
 शीलवान् बुद्धिसंपन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
 दक्षः प्रगल्भः स्मृतिमान् विक्रान्तो धृतिमान् शुचिः ॥ ६० ॥
 दीर्घदर्शी महोत्साहः कृतज्ञः प्रियवागपि ।
 लोकपालव्रतचरः शूरो धीरः क्षमान्वितः ॥ ६१ ॥
 उत्थितश्चाप्रमत्तश्च वृद्धः स्मृत्यर्थशास्त्रवित् ।
 नानानाट्यप्रचारज्ञ ऊहापोहविचक्षणः ॥ ६२ ॥
 परभावेज्जितज्ञश्च षाड्गुण्येनाप्यलंकृतः ।
 नानाशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो नानाशिल्पप्रयोजकः ॥ ६३ ॥
 स्थानवृद्धिक्षयज्ञश्च पररन्ध्रविचक्षणः ।
 कृतज्ञोऽव्यसनी चैव गुणैरेतैर्भवन्नृपः ॥ ६४ ॥
 शीलवान् सत्यसंपन्नस्त्यक्तालस्यः प्रियंवदः ।
 पररन्ध्रविधिज्ञश्च यात्राकालविशेषवित् ॥ ६५ ॥
 अर्थशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो ह्यनुरक्तः कुले वृतः ।
 देशवित् कालविज्ञैव भवेत् सेनापतिर्गुणैः ॥ ६६ ॥
 कुलीना बुद्धिसंपन्नाः श्रुतिनीतिविशारदाः ।
 स्वदेश्याश्चानुरक्ताश्च शुचयो धार्मिकास्तथा ॥ ६७ ॥
 अमात्या मन्त्रिणश्चैव गुणैरेतैर्भवन्ति हि ।
 व्यवहारार्थतत्त्वज्ञा बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ॥ ६८ ॥
 मध्यस्था धार्मिका रक्ताः कार्याकार्यविचक्षणाः ।
 शान्ता दान्ता जितक्रोधा नोद्धताः समदर्शिनः ॥ ६९ ॥
 ईदृशाः प्राङ्निवाकाश्च स्थाप्या धर्मासनेष्वथ ।
 उत्थिताश्चाप्रमत्ताश्च त्यक्तालस्या जितक्लमाः ॥ ७० ॥
 स्निग्धाः क्षान्ता विनीताश्च मध्यस्था निपुणास्तथा ।
 नयज्ञा विनयज्ञाश्च ऊहापोहविचक्षणाः ॥ ७१ ॥
 नानारूपैः समायुक्ता गुणैरेतैर्भवन्ति हि ।
 बृहस्पतिमतादेशाद् गुणानां प्रविभावकम् ॥ ७२ ॥

विज्ञेयं वाचि कर्मज्ञैः समास्तारादिकथनम् ।
 अत्रोच्यते यथानाट्यमाहार्यगुणसंभवम् ॥ ७३ ॥
 कथं राजगुणाः कार्या नटैरल्पपरिच्छदैः ।
 अत्रोच्यते यदा लोके नाट्यधर्माः प्रवर्तिताः ।
 तदेव सर्वसंपन्नं नाट्यमेतन्मया कृतम् ॥ ७४ ॥
 वर्णकैश्छादितस्तत्र भूपणैश्चाप्यलंकृतः ।
 गाम्भीर्यौदार्यसंपन्नो राजवत् भवेन्नटः ॥ ७५ ॥
 सप्तद्वीपाश्रयश्चैव एवमेको नटो भवेत् ।
 वर्णकैश्छादितैर्नेह कार्यं त्वर्थविचेष्टितम् ॥ ७६ ॥
 आचार्यबुद्ध्या शान्तस्तु सौष्टवाङ्गपुरस्कृतः ।
 राजवद्भरतस्तस्माद् राजापि नटवद्भवेत् ॥ ७७ ॥
 यथा नटस्तथा राजा तथा च नट उच्यते ।
 उभाभ्यां भावनिष्पत्तिः समलीलाङ्गसौष्टवा ॥ ७८ ॥
 यथाचार्योपदेशेन रङ्गशोभी भवेन्नटः ।
 एवं स्वभावतो राजा नित्यमेवोज्ज्वलो भवेत् ॥ ७९ ॥
 दिव्यानां यः परीवारः पार्थिवानां भवेदिह ।
 नाटके संप्रयोक्तव्यो वेषभाषाक्रियान्वितः ॥ ८० ॥
 यादृशं यस्य यद्रूपं प्रकृत्या तस्य तादृशम् ।
 वयोवेषविधानेन कर्तव्यं प्रयुयुष्मणा ॥ ८१ ॥
 एवं राजोपचारेषु कार्यः पुरुषसंग्रहः ।
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नानापुरुषलक्षणम् ॥ ८२ ॥
 नानाशीलगुणे लोके उत्तमाधममध्यमे ।
 प्रयोक्तव्याः पृथग्भावैर्विज्ञेया प्रकृतिर्वुधैः ॥ ८३ ॥
 नानाशिल्पादिसंपन्ना ज्ञानवन्तो जितेन्द्रियाः ।
 लोकक्रियाविशेषज्ञा धर्माधर्मविचक्षणाः ॥ ८४ ॥
 शास्त्रेतिहासकुशलाः शीलवृत्तव्यवस्थिताः ।
 अहिंसासत्त्वसंपन्नाः प्रकृत्या तूत्तमाः स्मृताः ॥ ८५ ॥
 लोकोपचारतत्त्वज्ञाः शिल्पशास्त्रविचक्षणाः ।
 मध्यप्रायगुणोपेताः प्रकृत्या मध्यमाः स्मृताः ॥ ८६ ॥
 रुक्षवाक्या दुराचारा निःसत्त्वाः स्वल्पबुद्धयः ।
 क्रोधना घातकाश्चैव कृतघ्नाश्छिद्रदर्शिनः ॥ ८७ ॥
 वृथारम्भप्रसक्ताश्च यत्किञ्चिद्वादिनोऽल्पकाः ।
 पिशुनाः पापनिरताः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥ ८८ ॥
 मान्यामान्यविशेषाणामनभिज्ञाश्च तस्कराः ।
 एभिदोषैश्च संयुक्ताः प्रकृत्यैवाधमाः स्मृताः ॥ ८९ ॥

एवं तु शीलतो ज्ञेया प्रकृतिस्त्रिविधा बुधैः ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रयोक्तृणां तु सद्गुणान् ॥ ९० ॥

तत्र सूत्रधारगुणान् वक्ष्यामः—अस्यादित एव तावल्लक्ष-
णज्ञता, अहीनो वाक्यसंस्कारः, तथा गीतकालविधानज्ञता,
स्वरवादित्रतत्त्ववादः ।

चतुरो नाट्यकुशलः शास्त्ररीतिप्रतिष्ठितः ।

नानापाषण्डकार्यज्ञो नीतिशास्त्रार्थवित्तथा ॥ ९१ ॥

वेद्योपचारनिपुणः काव्यशास्त्रविचक्षणः ।

नानागतिप्रचारज्ञो रसभावविशारदः ॥ ९२ ॥

नाट्यप्रयोगकुशलो नानाशिल्पसमन्वितः ।

छन्दोविधानतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविचक्षणः ॥ ९३ ॥

ग्रहनक्षत्रतत्त्वज्ञो देशव्याहारतत्त्ववित् ।

पृथिवीद्वीपवर्षाणां पर्वतानां जनस्य च ॥ ९४ ॥

प्रमाणाचारतज्ज्ञश्च राजवंशप्रसूतिवित् ।

श्रोता शास्त्रार्थकार्याणां श्रुत्वा चैवावधारकः ॥ ९५ ॥

अवधार्य प्रयोक्ता च शास्त्र(?)श्चैवोपदेशने ।

एवंगुणस्तथाचार्यः सूत्रधारो विधीयते ।

स्वाभाविकान् गुणांश्चैव गदतो मे निबोधत ॥ ९६ ॥

स्मृतिमान् मतिमान् धीर उदारः स्मितवाक् शुचिः ।

अरोगो मधुरः क्षान्तो दान्तश्चैव प्रियंवदः ॥ ९७ ॥

सर्वदोषविनिर्मुक्तः सत्यवाग् दक्षिणस्तथा ।

अलुब्धः प्रतिमन्ता च स्वाभाविकगुणास्त्वमी ॥ ९८ ॥

सूत्रधारगुणैश्चैव किञ्चिदूनैः समन्वितः ।

मध्यमप्रकृतिस्तज्ज्ञैर्विज्ञेयः पारिपार्श्वकः ॥ ९९ ॥

उज्ज्वलो रूपवांश्चैव दृष्टोपकरणक्रियः ।

मेधावी च विधानज्ञः स्वकर्मकुशलो दृढः ।

सूत्रधारगुणैर्युक्ताः सर्व एव प्रयोगिणः ॥ १०० ॥

वेद्योपचारकुशलो मधुरो दक्षिणः कविः ।

ऊहापोहक्षमो वाग्मी चतुरश्च विटो भवेत् ॥ १०१ ॥

उज्ज्वलवस्त्राभरणः कुप्यत्यनिमित्ततः प्रसीदति च ।

अधमो मागधभाषी भवति शकारो बहुविकारः ॥ १०२ ॥

वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजन्मा विकृताननः ।

खलतिः पिङ्गलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः ॥ १०३ ॥

कलाप्रियो बहुकथो विरूपो गन्धसेवकः ।

मान्यामान्यविशेषज्ञश्चेटो ह्येवंविधः स्मृतः ॥ १०४ ॥

एवंगुणैस्तु संयुक्तो यत्नजैश्चेतरैस्तथा ।
 अन्तःपु(तः प)रं प्रवक्ष्यामि स्त्रीणां च प्रकृतिं पुनः ॥ १०५ ॥
 मितभाषा विदग्धा च सलज्जा न च निष्ठुरा ।
 कुलशीलगुणोपेता गुरूणां शासने रता ॥ १०६ ॥
 धैर्यगाम्भीर्यसम्पन्ना उत्तमा प्रकृतिः स्मृता ।
 नानाशिल्पप्रयोगज्ञा नानाशास्त्रविचक्षणा ॥ १०७ ॥
 कलोपभोग(?)राचार्यशुश्रूषाभिरता सदा ।
 लीलया भावहावाभ्यां सत्त्वेन विनयेन च ॥ १०८ ॥
 माधुर्येण च संयुक्ता चतुःषष्टिकलान्विता ।
 नृत्तोपचारकुशला स्त्रीदोषैस्तु विवर्जिता ॥ १०९ ॥
 प्रियवादी प्रियकथा स्फुटा दक्षा जितश्रमा ।
 एभिर्गुणैस्तु संयुक्ता गणिका परिकीर्तिता ॥ ११० ॥
 रूपगुणशीलयौवनसुवर्णमाधुर्य...संपन्ना ।
 विशदा स्निग्धा मधुरा पेशलशुभरक्तकण्ठी च ॥ १११ ॥
 भाण्डौघैश्चाश्रुमिता लयतालज्ञा रसैश्च संयुक्ता ।
 एवंविधगुणयुक्ता कर्तव्या नायिका तज्ज्ञैः ॥ ११२ ॥
 समागतासु नारीषु वयोरूपवतीषु च ।
 न दृश्यते गुणैर्युक्ता सहस्रेष्वपि नर्तकी ॥ ११३ ॥
 अस्थानहासिनी रूक्षा आविद्धगतिचेष्टिता ।
 दीर्घरोषा ह्यदीना च तदा तु निभृतोद्भटा ॥ ११४ ॥
 सर्वदोषाभिसंयुक्ता गन्धमाल्योपशोभिता ।
 एवंविधा तु कर्तव्या प्रकृष्टाभिनये बुधैः ॥ ११५ ॥
 एतदेव मया प्रोक्तं प्राग्विष्णोकादिनिर्णयम् ।
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि चित्राभिनयनं मुने ॥ ११६ ॥
 इति भारतीये नाट्यशास्त्रे सामान्याभिनयो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥



दशरूपकावल्लोके प्रमाणत्वेन समुपन्यस्तानां ग्रन्थानां ग्रन्थकाराणां च नामानि ।

अमरशतकम्—३९, ४५, ४६, ४७, ४९, ५०, ५६, ५९, ८१, ८५,
८८, १०४.

उत्तरचरितम् (उत्तररामचरितं वा)—२३, ३२, ६५, ६७, ८०, ८३, ८६,
९९, १०२, १०५.

उदात्तराघवम्—६०, ६३, ७०, ८१, ८७.

कर्पूरमञ्जरी—६६.

कादम्बरी—१०५.

कामसूत्रम्—१०१.

काव्यनिर्णयः—९५.

किरातम्—८६.

कुमारसंभवम्—५२, ५४, ८६, ८९, ९३, ९९, १०१, १०८.

छलितरामम्—२२, ६६, ६८.

धनिकः—(अवलोककृत्)—३९, ४१, ४२, ४३, ४५, ५२, ५३, ५४, ५५,
५६, ५८, ७८, ८६, ८७, १०२, १०३, १०६, १०७.

नागानन्दम्—३७, ४०, ४२, ४७, ५७, ९९, १०६.

पद्मगुप्तः—५५.

पाण्डवानन्दम्—६५.

प्रियदर्शिका (प्रियदर्शना वा)—५९, ६१.

बृहत्कथा (गुणाढ्यनिर्मिता)—३४, ९०.

भट्टबाणः—५३.

भरतमुनिः—७४.

भर्तृहरिः—७७.

भर्तृहरिशतकम्—३६, ८१.

भवभूतिः—३८.

भोजप्रबन्धः—८२.

महाभारतम्—७०.

माघम्—४५, ८०, ८२, ८५, १०४.

मालतीमाघवम्—९, ३७, ४०, ५०, ५४, ५८, ६०, ८४, ९१, ९९,
१०५, १०७.

मालविकाग्निमित्रम्—३२, ३६, ५०, ५७, ५८, ६२, १००.

मुञ्जः—१०३.

मुद्राराक्षसम्—(बृहत्कथामूलम्)—३४, ६०, ६८.

मृच्छकटिका—२४, ३७, ४८, ७२.

मेघदूतम्—१०५.

रघुः (रघुवंशो वा)—३५, ८८, १०५.

रत्नावली—४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७,
१८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९,
३०, ३६, ४७, ५८, ६१, ६३, ६४, ६७, ८०, ८१,
१०६, १०९.

रामाभ्युदयम्—२४.

रामायणम्—४, ३३, ४०, ६०, ७०, ९७.

रुद्रः—१०३.

वाक्पतिराजदेवः—१०२.

विकटनितम्बा—९०.

विक्रमोर्वशी—६५, ६६, १०५.

विद्धशालभञ्जिका—१०१.

वीरचरितम्—(महावीरचरितं) ८, ३२, ३५, ४१, ४२, ५९, ६०,
७०, ८०, ८२, ८३, ८४, ८५, ८८, ८९, १०७, १०८.

वेणीसंहारम्—५, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १९, २०, २१, २२,
२३, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ६४, ८३, १०८.

शाकुन्तलम्—५२, ५३, ६३, ६९, १०१.

षट्सहस्रीकृतम्—७७.

हनुमन्नाटकम्—३६, ४१, ७९, ८४.

दशरूपके ह्युदाहरणत्वेनोपन्यस्तश्लोकानां सूचिः ।

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठे । |
|-------------------------------|-----------------------------|----------|
| अकृपणमतिः कामं जीव्यात् ... | वेणीसंहारे | ३१ |
| अच्छिन्नं नयनाम्बु | [अमरुशतके] | ८९ |
| अण्णहुणाहुमहेलिअ | | ९१ |
| अत्रान्तरे किमपि वाग्विभ ... | मालतीमाधवे | ५४ |
| अथैव किं न विसृजेयमहं ... | वेणीसंहारे | २५ |
| अद्वैतं सुखदुःखयोरनु ... | [उत्तररामचरिते] | ३९ |
| अनाघ्रातं पुष्पं किसलय ... | शाकुन्तले | ५२ |
| अन्त्रैः स्वैरपि संयताग्र ... | मम (धनिकस्य) | ४१ |
| अन्त्रैः कल्पितमङ्गल | [मालतीमाधवे] | ९१ |
| अन्यासु तावदुपमर्द | विकटनितम्बायाः | ९० |
| अन्योन्यास्फालभिन्नद्विप ... | वेणीसंहारे | ११ |
| अप्रियाणि करोल्लेष | वेणीसंहारे | २५ |
| अभिव्यक्तालीकः सकल ... | मम (धनिकस्य) | ५८, १०४ |
| अभ्युद्गते शशिनि | | ५४ |
| अभ्युन्नतस्तनमुरो नयने ... | मम (धनिकस्य) | ४५ |
| अयमुदयति चन्द्रः | | ७७ |
| अयि जीवितनाथ | कुमारसंभवे | ११० |
| आर्चिष्मन्ति विदार्य | | ६८ |
| अर्थित्वे प्रकटीकृतेऽपि ... | वीरचरिते | ८३ |
| अलसललितमुग्धान्यध्व ... | उत्तररामचरिते | ८० |
| अशोकनिर्भर्त्सितपद्म | कुमारसंभवे | ९९ |
| असंशयं क्षत्रपरिग्रह | शाकुन्तले | १०१ |
| असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः ... | कुमारसंभवे | ९९ |
| अस्तमितविषयसङ्गा | [गोवर्धनस्य] | ८२ |
| अस्तापास्तसमस्तभासि | रत्नावल्याम् | ७ |
| अस्मिन्नेव लतागृहे | उत्तररामचरिते | १०२ |
| अस्याः सर्गविधौ | [विक्रमोर्वश्याम्] | ७७ |
| आगच्छागच्छ सज्जं कुरु ... | मम (धनिकस्य) | ८७ |
| आताम्रतामपनयामि | रत्नावल्याम् | १९ |
| आत्मानमालोक्य च | कुमारसंभवे | ८९ |

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठे । |
|---------------------------------|---------------------------|----------|
| आदष्टिप्रसरात्प्रियस्य ... | अमरुशतके ... | ४९ |
| आनन्दाय च विस्मयाय ... | वीरचरिते ... | ५९ |
| अन्नप्रोतवृहत्कपाल ... | वीरचरिते ... | १०७ |
| आयस्ता कलहं पुरेव ... | [अमरुशतके] ... | ४६ |
| आयाते दयिते मरु ... | [अमरुशतके] ... | ८१ |
| आलापान्भ्रूविलासो ... | | ४४ |
| आशस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोः ... | वेणीसंहारे ... | १२ |
| आश्लिष्टभूमिं रसितारं ... | माधे ... | ८६ |
| आसादितप्रकटनिर्मल ... | | ६३, ६५ |
| आहूतस्याभिषेकाय ... | | ३७ |
| इन्दीवरेण नयनं ... | | १०३ |
| इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतं ... | उत्तरचरिते ... | ६७ |
| इयं सा लोलाक्षी त्रिभु ... | | ९१ |
| उन्वितः प्रणयो वरं विहन्तुं ... | [मालविकाग्निमित्रे] ... | ३९ |
| उच्छ्वसन्मण्डलप्रान्तरेखं ... | मम (धनिकस्य) ... | ४३ |
| उज्जुम्भाननमुल्लसत् ... | मम (धनिकस्य) ... | ७८ |
| उत्कृत्योत्कृत्य कृतिं ... | मालतीमाधवे ... | १०७ |
| उत्कृत्योत्कृत्य गर्मानपि ... | वीरचरिते ... | ८२ |
| उत्तालताडकोत्पातदर्शने ... | वीरचरिते ... | ४१ |
| उत्तिष्ठ दूति यामो यामो ... | | ४९ |
| उत्पत्तिर्जमदग्निः स ... | वीरचरिते ... | ३५ |
| उत्सङ्गे वा मलिनवसने ... | मेघदूते ... | १०५ |
| उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुर ... | [रत्नावल्याम्] ... | ४ |
| उन्मीलद्रवनेन्दुवीप्सि ... | | ५३ |
| उरसि निहितस्तारो हारः ... | अमरुशतके ... | ५० |
| एकत्रासनसंस्थितिः ... | अमरुशतके ... | ४६ |
| एकं ध्याननिमीलना ... | | ९१ |
| एकेनाक्षणा प्रवितत ... | [चन्द्रकस्य] ... | ९१ |
| एकतो रुअइ पिओ ... | | ९१ |
| एतां पश्य पुरःस्थली ... | | ४१ |
| एते वयममी दाराः ... | [कुमारसंभवे] ... | ४२ |
| एवंवादिनि देवर्षौ ... | [कुमारसंभवे] ... | ८९ |
| एवमालि निगृहीतसाध्वसं ... | कुमारसंभवे ... | ८१ |
| एष राजेव दुष्यन्तः ... | | ६५ |
| एहोहि वत्स रघुनन्दन ... | वीरचरिते ... | ८८ |
| औत्सुक्येन कृतस्वरा ... | [रत्नावल्याम्] ... | ६३ |

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठे । |
|---------------------------------|------------------------|----------|
| कः समुचिताभिषेकादार्यं ... | | ८८ |
| कण्ठे कृत्वावशेषं कनक ... | रत्नावल्याम् ... | ६१ |
| कपोले जानक्याः करि ... | [हनुमन्नाटके] ... | ४१ |
| कर्णदुःशासनवधात् ... | वेणीसंहारे ... | २२ |
| कर्णार्पितो रोध्नकषाय ... | कुमारसंभवे ... | ५४ |
| कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमय ... | वेणीसंहारे ... | ६६ |
| कस्त्वं भोः कथयामि ... | | ७९ |
| का लं शुभे कस्य ... | रघौ ... | ३५ |
| कान्ते तल्पमुपागते ... | [अमरुशतके] ... | ४५ |
| का श्लाघ्या गुणिनां ... | पाण्डवानन्दे ... | ६५ |
| किं लोमेन विलङ्घितः ... | | ८८ |
| किं गतेन न हि युक्त ... | [किरातार्जुनीये] ... | १०४ |
| किं धरणीए मिअंको ... | रत्नावल्याम् ... | २४ |
| किमपि किमपि मन्दं ... | उत्तररामचरिते ... | १०५ |
| कुलबालिआए पेच्छह ... | | ४३ |
| कृतगुरुमहदादिक्षोभ ... | वेणीसंहारे ... | ३० |
| कृतेऽप्याज्ञाभङ्गे कथमिव ... | मम (धनिकस्य) ... | १०४ |
| कृशाश्वान्तेवासी जयति ... | वीरचरिते ... | ३२ |
| कृथा केशेषु भार्या ... | वेणीसंहारे ... | २५ |
| केलीगोतकखलणे ... | | १०३ |
| कैलासोद्धारसार ... | [वीरचरिते] ... | ३८ |
| कोपात्कोमललोलबाहु ... | अमरुशतके ... | ४६ |
| कोऽपि सिंहासनस्याधः ... | छलितरामे ... | ६६ |
| कोपो यत्र भ्रुकुटिरचना ... | [अमरुशतके] ... | ४६ |
| कोधान्धैर्यस्य मोक्षात्क्षत ... | वेणीसंहारे ... | ३० |
| क्वचित्ताम्बूलाक्तः क्वचिद ... | [अमरुशतके] ... | ४६ |
| क्षितो हस्तावलग्नः प्रसभ ... | अमरुशतके ... | ८८ |
| खर्वप्रन्थिविमुक्तसंधि ... | | १०६ |
| गमनमलसं शून्या ... | मालतीमाधवे ... | ५८ |
| चक्षुर्लसमपीकणं ... | | ९९ |
| चञ्चद्भुजप्रमितचण्डगदा ... | वेणीसंहारे ... | ९, २७ |
| चलति कथंचित्पृष्ठा ... | मम (धनिकस्य) ... | ८६ |
| चाणक्यनाम्ना तेनाथ ... | बृहत्कथायाम् ... | ३४ |
| चित्रवर्तिन्यपि नृपे ... | पद्मगुप्तस्य ... | ५५ |

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठे । |
|-------------------------------------|----------------------------|----------|
| चिररतिपरिखेदप्राप्त | माधे | ८५ |
| चूर्णिताशेषकौरव्यः | वेणीसंहारे | २६ |
| जगति जयिनस्ते ते | मालतीमाधवे | ९९ |
| जं किं पि पेच्छमाणं | मम (धनिकस्य) | ५२ |
| जन्मेन्दोरमले कुले | वेणीसंहारे | २३ |
| जातं मे परुषेण भस्म | | १०८ |
| जीयन्ते जयिनोऽसान्द्र | उदात्तराधवे | ६० |
| ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता | वेणीसंहारे | २३ |
| ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रा | मालतीमाधवे | ५४ |
| गेउरकोडिबिलगं | [गाथासप्तशत्याम्] | १०४ |
| तं वीक्ष्य वेपथुमती | कुमारसंभवे | १०१ |
| तं च्चिअ वअणं ते च्चिअ | मम (धनिकस्य) | ५२ |
| तत उदयगिरेरिवैक | मालतीमाधवे | ३७ |
| ततश्चाभिज्ञाय स्फुरद | अमरुशतके (?) | ८९ |
| तथा व्रीडाविधेयापि | मम (धनिकस्य) | ५३ |
| तदवितथमवादीर्यन्मम | [माधे] | ५८ |
| तनुत्राणं तनुत्राणं शस्त्रं | | ८७ |
| तवास्मि गीतरागेण | शाकुन्तले | ६३ |
| तह झत्ति से पअत्ता | मम (धनिकस्य) | ५२ |
| तह दिड्डं तह भणिअं | मम (धनिकस्य) | ५४ |
| तां प्राञ्जुखीं तत्र निवेश्य | कुमारसंभवे | ५२ |
| ताव च्चिअ रइसमए | [गाथासप्तशत्याम्] | ४४ |
| तावन्तस्ते महात्मानो | उदात्तराधवे | ८१ |
| तिष्ठन्भाति पितुः पुरो | [नागानन्दे] | ३७, ३८ |
| तीर्णे भीष्ममहोदधौ | वेणीसंहारे | २१ |
| तीव्रः स्मरसंतापो न | रत्नावल्याम् | १७ |
| तीव्राभिषङ्गप्रभवेन | कुमारसंभवे | ८६ |
| तेनोदितं वदति याति | | ५४ |
| त्यक्त्वोत्थितः सरभसं | वेणीसंहारे | २४ |
| त्रय्याह्वाता यस्तवायं | वीरचरिते | ३५ |
| त्रस्यन्ती चलशफरी | माधे | ८२ |
| त्रैलोक्यैश्वर्यलक्ष्मी | वीरचरिते (?) | ३८ |
| खवं कर्णः शिबिर्मांसं | | ३५ |
| खं जीवितं लमसि मे | उत्तरचरिते | ६७ |
| खं ब्रह्मवर्चसधरो | वीरचरिते | १०८ |

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठे । |
|---------------------------------|--------------------------------|--------------|
| दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि | ... मालविकाग्निमित्रे ... | ५० |
| दिअहं खु दुक्खिआए | ... [गाथासप्तशत्याम्] ... | ५३ |
| दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति | ... मालविकाग्निमित्रे ... | १०० |
| दुःशासनस्य हृदयक्षतज | ... वेणीसंहारे ... | ११ |
| दुल्लहजणाणुराओ लज्जा | ... रत्नावल्याम् ... | १३ |
| दूराद्वीयो धरणीधराभं | ... वीरचरिते ... | ८० |
| दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि ... | ... [विज्जकायाः] ... | ४७ |
| दृष्टिः सालसतां विभर्ति | | ४३, ५१ |
| दृष्टिस्तृणीकृतजगत्रय ... | ... [उत्तररामचरिते] ... | ४१ |
| दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रिय | ... अमरुशतके ... | ४७, ५९ |
| देआ पसिअ णिअंतसु | | ५३ |
| देवे वर्षत्यशनपवन ... | | ८७ |
| देव्या मद्वचनाद्यथाभ्युप | ... रत्नावल्याम् ... | २६ |
| देशैरन्तरिता शतैश्च ... | ... अमरुशतके ... | १०५ |
| दोर्दण्डाद्धितचन्द्रशेखर | | १०९ |
| द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं ... | ... वेणीसंहारे ... | २५, ६७ |
| द्वीपादन्यस्मादपि ... | ... रत्नावल्याम् ... | ५, ७, ६३, ६४ |
| धिग्धिक्शकजितं ... | ... [हनुमन्नाटके] ... | ७९ |
| धृतायुधो यावदहं ... | ... वेणीसंहारे ... | १९ |
| न खलु वयममुष्य ... | ... माघे ... | ४५ |
| न च मेऽवगच्छति यथा ... | ... [माघे] ... | ५० |
| न जाने संमुखायाते ... | ... [अमरुशतके] ... | ४५ |
| नन्वेष राक्षसपतेः स्खलितः ... | ... वीरचरिते ... | ८९ |
| न पण्डिताः साहसिका ... | | ८६ |
| न मध्ये संस्कारं कुसुम ... | | ४४ |
| नवजलधरः सन्नद्धोऽयं ... | ... [विक्रमोर्वच्य्याम्] ... | ८९ |
| नवनखपदभङ्गं गोप ... | ... [माघे] ... | ४९, १०३ |
| नष्टं वर्षसुरैर्मनुष्यगणना | ... रत्नावल्याम् ... | ६१, १०९ |
| नान्दीपदानि रतिनाटक | | ५५ |
| निःश्वासा वदनं दहन्ति | ... [अमरुशतके] ... | ४९ |
| निजपाणिपल्लवतट ... | ... [माघे] ... | ४८ |
| निद्रार्धमीलितदृशो ... | ... [बिह्वणस्य] ... | ८५ |
| निर्ममेच मयाम्भसि ... | ... रुद्रस्य ... | १०३ |
| निर्वाणवैरिदहनाः प्रशमा | ... वेणीसंहारे ... | ६४ |
| नूनं तेनाथ वीरेण ... | ... वेणीसंहारे ... | २५ |

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठे । |
|-------------------------------|-----------------------------------------------|------------|
| पक्ष्माग्रप्रथिताशुबिन्दु ... | | ८२ |
| पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं ... | वेणीसंहारे | २२ |
| पटालन्ने पत्यौ नमयति ... | अमरुशतके | ८५ |
| पणअकुविआण दोह्ववि ... | [गाथासप्तशत्याम्] ... | १०२ |
| पत्युः शिरश्चन्द्रकलाम ... | [कुमारसंभवे] | ५७ |
| परिच्युतस्तत्कुचकुम्भ ... | रत्नावल्याम् | १४ |
| परिषदियमृपीणामेष ... | वीरचरिते | १५ |
| पशुपतिरपि तान्यहानि ... | कुमारसंभवे | ७ |
| पादाङ्गुष्ठेन भूमिं किस ... | [अमरुशतके] | ५६ |
| पित्रोर्विधातुं शुश्रूषां ... | [नागानन्दे] | ३७ |
| पुण्या ब्राह्मणजातिः ... | [वीरचरिते] | ३८, ६० |
| पुरस्तन्व्या गोत्रस्खलन ... | अमरुशतके | ८३ |
| पूर्यन्तां सलिलेन रत्न ... | वेणीसंहारे | २५ |
| पौलस्त्यपीनभुजसंपदु ... | | ८७ |
| प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवीं | { श्रीवाक्पतिराजदेवस्य श्रीमुञ्जस्य | १०२ १०३ |
| प्रणयविशदां दष्टिं वक्त्रे | रत्नावल्याम् | १७ |
| प्रथमजनिते बाला मन्यौ | | ४४ |
| प्रयत्नपरिबोधिता ... | वेणीसंहारे | १९ |
| प्रसीदत्यालोके किमपि ... | मम (धनिकस्य) | ३९ |
| प्रसीदेति ब्रूयामिदमति ... | रत्नावल्याम् | १४ |
| प्रहरकमपनीय स्वं ... | माघे | ८५ |
| प्रहरविरतौ मध्ये ... | अमरुशतके | १०४ |
| प्राप्ताः श्रियः सकलकाम ... | [भर्तृहरिशतके] | ७९ |
| प्राप्ता कथमपि दैवात् ... | रत्नावल्याम् | १४ |
| प्राप्य मन्मथरसादति ... | माघे | ८० |
| प्रायश्चित्तं चरिष्यामि ... | वीरचरिते | ३६, ४२, ८३ |
| प्रारब्धां तरुपुत्रकेषु ... | | ८७ |
| प्रारभ्यते न खलु विघ्न ... | भर्तृहरिशतके | ३६ |
| प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो ... | रत्नावल्याम् | ५, ७ |
| बाले नाथ विमुञ्च ... | अमरुशतके | ४५ |
| बाह्वोर्बलं न विदितं ... | हनुमन्नाटके | ३६ |
| ब्राह्मणातिक्रमत्यागो ... | वीरचरिते | ३८, ८४ |
| ब्रूत नूतनकूष्माण्ड ... | | ४३ |
| भम धम्मिअ वीसद्धो ... | गाथासप्तशत्याम् | ९४ |

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठे । |
|--------------------------------|--------------------------|----------|
| भिक्षो मांसनिषेवणं ... | समञ्जोचित ... | १०६ |
| भुक्ता हि मया गिरयः ... | ... | ६६ |
| भूमौ क्षिप्त्वा शरीरं ... | वेणीसंहारे ... | २८ |
| भूयः परिभवकान्ति ... | वेणीसंहारे ... | ९ |
| भूयो भूयः सविधनगरी ... | मालतीमाधवे ... | १०० |
| भूमङ्गे सहस्रोद्गता ... | [रत्नावल्याम्] ... | ५३ |
| मखशतपरिपूतं गोत्र ... | मृच्छकटिकायाम् ... | २४, ३७ |
| मज्झ पङ्णणा एसा ... | रत्नावल्याम् ... | २४ |
| मत्तानां कुसुमरसेन ... | विक्रमोर्वश्याम् (?) ... | ६६ |
| मध्नासि कौरवशतं समरे ... | वेणीसंहारे ... | ८ |
| मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे ... | कुमारसंभवे ... | ९९ |
| मध्याह्नं गमय त्यज ध्रुम ... | ... | ५७ |
| मनोजातिरनाधीना ... | विक्रमोर्वश्याम् ... | ६५ |
| मन्थायस्तार्णवाम्भःक्षुत ... | वेणीसंहारे ... | ८ |
| महु एहि किं णिवालअ ... | ... | ५१ |
| मा गर्वमुद्वह कपोल ... | ... | ४८ |
| मातः कं हृदये निधाय ... | ... | ५५ |
| मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य ... | [भर्तृहरिशतके] ... | ९१ |
| मुनिरयमथ वीरस्तादृश ... | वीरचरिते ... | ८४ |
| मुहुअसामलिहोइ ... | ... | ७९ |
| मुहुरुपहसितामिवा ... | माधे ... | १०४ |
| मृग्यरूपं परित्यज्य ... | उदात्तराघवे ... | ८७ |
| मृगशिशुदृशस्तस्यास्तापं ... | ... | ५० |
| मेदश्छेदकशोदरं लघु ... | शाकुन्तले ... | ६९ |
| भैनाकः किमयं रुणद्धि ... | [हनुमन्नाटके] ... | ८४ |
| यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा ... | वेणीसंहारे ... | १० |
| यदि परगुणा न क्षम्यन्ते ... | [महेन्द्रस्य] ... | ८३ |
| यद्ब्रह्मवादिभिरुपासित ... | वीरचरिते ... | ३५ |
| यद्यत्प्रयोगविषये ... | मालविकाग्निमित्रे ... | ३६ |
| यद्विस्मयस्तिमित ... | मालतीमाधवे ... | ९ |
| यातु यातु किमनेन ... | ... | ४५ |
| यातो विक्रमबाहुरात्म ... | रत्नावल्याम् ... | ३० |
| यातोऽसि पद्मनयने ... | रत्नावल्याम् ... | ४ |
| यान्त्या मुहुर्वलितकन्धर ... | मालतीमाधवे ... | ९, १०० |
| युष्मच्छासनलङ्घना ... | वेणीसंहारे ... | ८३ |

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठे । |
|--------------------------------|-----------------------|----------|
| ये चत्वारो दिनकर ... | [महानाटकात्]... | ३६ |
| येनावृत्य मुखानि साम... | छलितरामे ... | २२ |
| ये बाहवो न युधि ... | | ७९ |
| योगानन्दयशःशेषे ... | वृहत्कथायाम् ... | ३४ |
| रक्षो नाहं न भूतं रिपु... | वेणीसंहारे ... | २६ |
| रण्डा चंडा दिक्खिदा ... | कर्पूरमञ्जर्याम् ... | ६६ |
| रतिक्रीडाद्यूते कथमपि... | मम (धनिकस्य) ... | ५५ |
| राज्ञो विपद्वन्धुवियोग ... | | ७९ |
| राज्यं निर्जितशत्रु ... | रत्नावल्याम् ... | ३६, ८१ |
| राम राम नयनाभिराम ... | वीरचरिते ... | ३५ |
| रामो मूर्ध्नि निधाय कानन ... | उदात्तराघवे ... | ६३ |
| लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्ग ... | मम (धनिकस्य) ... | १०७ |
| लघुनि तृणकुटीरे ... | [कमलायुधस्य] ... | ८५ |
| लज्जापञ्चतपसाहणां ... | | ४३ |
| लाक्षाग्रहानलविषाक्ष ... | वेणीसंहारे ... | ६४, १०८ |
| लाक्षालक्ष्म ललाटपट्ट ... | अमरुशतके... .. | ३९ |
| लालां वक्तासवं वेत्ति ... | | १०७ |
| लावण्यकान्तिपरिपूरित ... | | ९४ |
| लावण्यमन्मथविलास ... | मम (धनिकस्य) ... | ४२ |
| लावण्यामृतवर्षिणि ... | मम (धनिकस्य) ... | १०६ |
| लीनेत्र प्रतिबिम्बितेव ... | मालतीमाधवे ... | ८४ |
| लुलितनयनताराः ... | माधे | ८० |
| वत्सस्याभववारिधेः ... | उदात्तराघवे ... | ८७ |
| वयमिह परितुष्टाः ... | भर्तृहरिशतके ... | ८१ |
| वाताहतं वसनमाकुलमुत्त ... | | ८७ |
| विनिकषणरणत्कठोर ... | | ९० |
| विनिश्चेतुं शक्यो न ... | उत्तररामचरिते ... | ८६, १०६ |
| विरम विरम बहे मुञ्च ... | रत्नावल्याम् ... | ८८ |
| विरोधो विश्रान्तः प्रसरति ... | उत्तरचरिते ... | २३ |
| विवृण्वती शैलसुतापि ... | कुमारसंभवे ... | ९३ |
| विस्मज सुन्दरिः संगम ... | मालविकाग्निमित्रे ... | ५८ |
| विस्तारी स्तनभार एष ... | | ४३ |
| वृद्धास्ते न विचारणी ... | उत्तरचरिते ... | २३ |
| वृद्धोऽन्धः पतिरेष मन्त्रक ... | भोजप्रबन्धे ... | ८२ |
| वेवह सेअदवदनी ... | | ७८ |

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठ । |
|------------------------------|-------------------------|---------|
| व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना | ... [नागानन्दे] | ९९ |
| व्याहृता प्रतिवचो न | ... [कुमारसंभवे] | ४४, १०१ |
| शठोऽन्यस्याः काञ्चीमणि | ... [अमरुशतके] | ३९ |
| शस्त्रप्रयोगखुरलीकलहे | ... वीरचरिते | ५९ |
| शस्त्रमेतत्समुत्सृज्य | | १०९ |
| शास्त्रेषु निष्ठा सहजश्च | ... मालतीमाधवे | ५० |
| शिरामुखैः स्यन्दत एव | ... नागानन्दे | ३७, ४२ |
| शीतांशुर्मुखमुत्पले तव | ... रत्नावल्याम् | १८ |
| शोकं स्त्रीवन्नयनसलिलै | ... वेणीसंहारे | २५ |
| श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः | ... रत्नावल्याम् | १५ |
| श्रीहर्षो निपुणः कविः | ... रत्नावल्याम् | ६४ |
| श्रुताप्सरोगीतिरपि | ... कुमारसंभवे | ५१ |
| श्रुत्वायातं बहिः कान्तं | ... मम (धनिकस्य) | ५५ |
| श्लाघ्याशेषतनुं सुदर्शन | | ९२ |
| सकलरिपुजयाशा यत्र | ... वेणीसंहारे | २६, ६७ |
| सखि स विजितो वीणा | | ४९ |
| सर्वं जाणइ ददुं सरि | ... [गाथासप्तशत्याम्] | ५१ |
| स छिन्नबन्धद्वुत | ... रघुवंशे | ८८ |
| सेततमनिर्वृतमानस | | ६९ |
| सद्यश्छिन्नशिरःश्वघ्न | ... उदात्तराघवे | ८१ |
| सन्तः सञ्चरितोदय | | ६९ |
| संभ्रूभङ्गं करकिसल्या | ... मम (धनिकस्य) | ५६ |
| समारूढा प्रीतिः प्रणय | ... रत्नावल्याम् | १८ |
| संप्राप्तेऽवधिवासरे | | ८४ |
| सरसिजमनुविद्धं शैव | ... शाकुन्तले | ५३ |
| सव्याजं तिलकालकान्वि | ... मम (धनिकस्य) | ५५ |
| सव्याजैः शपथैः प्रियेण | ... रत्नावल्याम् | २३ |
| सहभृत्यगणं सबान्धवं | ... वेणीसंहारे | ११ |
| सहसा विदधीत न | ... किराते | ८६ |
| सालोए विवश सूरै | ... [गाथासप्तशत्याम्] | ५८ |
| सुधाबद्धासैरुपवन | ... विद्धशालभञ्जिकायाम् | १०१ |
| सुधु त्वं नवनीतकल्प | ... मम (धनिकस्य) | १०२ |
| स्वनतदमिदमुत्तुङ्गं | | ४५ |
| स्तम्भावालोक्त्य तन्वङ्ग्याः | | १०१ |
| स्तिमितविकसिताना | ... मालतीमाधवे | १०० |

| श्लोकाः । | कविनाम ग्रन्थनाम वा । | पृष्ठे । |
|---------------------------------|------------------------------|----------|
| ज्ञाता तिष्ठति कुन्तलेश्वर | | ४० |
| स्पृष्टस्त्वयैष दयिते ... | ... रत्नावल्याम्... | १०६ |
| रफूर्जद्वज्रसहस्रनिर्मित ... | ... वीरचरिते ... | ३५, ४१ |
| स्मरदवधुनिमित्तं गूढ ... | ... मम (धनिकस्य) ... | ५५ |
| स्मरनवनदीपूरेणोढाः ... | ... [अमरुशतके] ... | ४४ |
| स्मरसि सुतनु तस्मिन् ... | ... उत्तररामचरिते ... | ९९ |
| स्मितज्योत्स्नाभिस्ते ... | ... मम (धनिकस्य) ... | १०३ |
| स्वगेहात्पन्थानं तत ... | | १०९ |
| स्वमुखनिरमिलाषः ... | ... [शाकुन्तले] ... | ३८ |
| खेदाम्भःकणिकाश्रिते ... | | ४५ |
| हंस प्रयच्छ मे कान्तां ... | ... [विक्रमोर्वेदयाम्] ... | ६८ |
| हरस्तु किंचित्परिलुप्त ... | ... कुमारसंभवे ... | ५२ |
| हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव ... | ... रत्नावल्याम् ... | २२ |
| हसिअमविआरमुद्धं ... | | ४३ |
| हस्तैरन्तर्निहितवचनै ... | | ९९ |
| हावहारि हसितं ... | ... माधे ... | ८५ |
| हृन्मर्मभेदिपतदुत्कटक ... | ... वीरचरिते ... | ८५ |
| हेरम्बदन्तमुसलोऽलिखितै ... | ... वीरचरिते ... | ६० |
| होतपहिअस्स जाआ ... | ... [गाथासप्तशत्याम्] ... | १०४ |
| द्विया सर्वस्यासौ हरति ... | ... रत्नावल्याम् ... | ८० |

